आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा की संरचना का अध्ययन

(सन् १९२५ से १९६० ई० तक)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

डॉ० राम किशोर शर्मा

रीडर

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्ता

संजय कुमार सिंह

सीनियर रिसर्च फेलो

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

वर्ष : १९९५

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

तृतीय अध्याय –

भूमिका

काव्यभाषा की संरचना की दृष्टि से आधुनिककाल काल अत्यन्त वैविध्य-पूर्ण है। इस समय विशेषकर त्रिवेदयकाल (सन् 1925 से 1960 ई० तक) की भाषिक संरचना का क्रम छायावाद से प्रारम्भ होकर नयी कविता तक जाता है। संरचना की दृष्टि से छायावाद से मूलतः इस समृ‌द्ध परम्परा का विकास होना प्रारम्भ हुआ और नयी कविता तक आते- आते यह परम्परा अत्यन्त समृद्ध हो गई। त्रिवेदयकाल से पूर्व हिन्दी काव्यभाषा संरचना का रूप अत्यन्त सीमित था लेकिन आधुनिक काल के कवियों के देश-विदेश के अन्य भाषा के साहित्यों से जुड़ने के कारण हिन्दी काव्यभाषा संरचना में भी अनेक आधुनिक टेक्नीक का प्रवेश हुआ। इस तरह हिन्दी की भाषिक संरचना भी बहुआयामी हो सकी और कवि संरचना के किसी न किसी भाषिक रूप का कलात्मक प्रयोग करके ही कविता का निर्माण करता है। आधुनिक कवियों ने अपनी कविताओं में संवेदना को अधिकतम मात्रा में सम्प्रेषित करने के लिए भाषिक रूपों के साथ-साथ विराम चिह्नादि को भी संघटना का अंग बना लिया है। त्रिवेदयकाल में भाषिक संरचना के सभी नये पुराने रूप एक साथ दिखाई पड़ते हैं।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से शोध-प्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय तीन उपविभागों में विभक्त है। प्रथम के अन्तर्गत् काव्यभाषा संरचना की परिभाषा तथा स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। द्वितीय उपविभाग के अन्तर्गत् विभिन्न पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों एवं आलोचकों की काव्यभाषा विषयक अवधारणाओं पर विचार किया गया है। तीसरे उप-विभाग में संरचना के तत्व (1- व्याकरणिक तत्व, 2- शैल्पिक तत्व, 3-आन्तरिक तत्व) के सभी अंगों को परिभाषित करते हुए उनके भेदों पर प्रकाश डाला गया है ।

द्वितीय अध्याय में भाषिक संरचना की क्रमिकता एवं विकासशीलता को तार्किक ढंग से विश्लेषित एवं निरूपित करने के लिए द्विवेदीकाल से पूर्व की आधुनिक हिन्दी कविता की भाषिक रचना के विविध पक्षों को उजागर करने की चेष्टा की गई है। इस अध्याय में भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग की काव्यभाषा की व्याकरणिक, शैल्पिक एवं आन्तरिक संरचना का विश्लेषण करते हुए द्विवेदीकालीन भाषिक संरचना में उसकी नवीन परिणति को संक्षेप में संकेतित किया गया है।

तृतीय अध्याय में द्विवेदीकाल की आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा की संरचना का व्याकरणिक संरचना के अंगों - शब्द, वाक्य, संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, लिङ्ग आदि की दृष्टि से विश्लेषण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में शैल्पिक संरचना की दृष्टि से काव्यभाषा का विश्लेषण किया गया है। शैल्पिक संरचना के अन्तर्गत - अलंकार, प्रतीक, बिम्ब, मिथ, फैंटसी को क्रमिक रूप में रखते हुए द्विवेदीकालीन कविता का विस्तृत अध्ययन है।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत आन्तरिक संरचना के अंगों लय, व्यंजना, विरोधाभास, विडम्बना की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा का विवेचन है तथा सर्वमान्य विशिष्टताओं को भी स्पष्ट किया गया है।

शोध-प्रबन्ध का अन्तिम अध्याय उपसंहार है। इस अध्याय में सम्पूर्ण अध्ययन का निष्कर्ष है। अन्त में परिशिष्ट के रूप में सहायक ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की गई है।

मेरे निर्देशक आदरणीय डॉ० रामकिशोर शर्मा जी ने इस विषय पर कार्य करने का सुझाव दिया तथा उनके कुशल निर्देशन, एवं असीम स्नेह तथा प्यार के सहारे ही मैं इस कार्य को पूर्णता प्रदान कर सका। अतः उनके प्रति कृतज्ञता अथवा आभार प्रदर्शन मात्र औपचारिकता ही होगी। मेरे पिता प्रो० योगेन्द्र प्रताप सिंह

जी ने अत्यन्त व्यस्त रहने के बावजूद समय- समय पर मेरे कार्य का निरीक्षण कर अनेक बहुमूल्य सहयोग दिया और समस्याओं क्र को सुलझाने में मदद की। उनके स्नेह से मैं जीवन भर उऋण नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त प्रो० राजेन्द्र कुमार वर्मा, प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० प्रेमकान्त टण्डन, श्री दूधनाथ सिंह, डॉ० सत्यप्रकाश मिश्र, डॉ० राजेन्द्र कुमार आदि से प्राप्त सहायता के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ । शोध-प्रबन्ध को श्री भाईराम यादव ने जिस लगन एवं सावधानी से टंकित किया, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ ।

प्रथम अध्याय

काव्यभाषा : स्वरूप और तत्त्व

§क§ संरचना की परिभाषा और स्वरूप – सामान्यतया किसी भी कृति की संरचना का तात्पर्य उस कृति की अन्तः एवं बाह्य रचना- विधान द्वारा निर्मित उसके ढाँचे से होता है। कवि रचना निर्माण प्रक्रिया में शामिल होकर संरचना के तीन अवयवों के सहयोग से कविता का निर्माण करता है। ये अवयव हैं – कविता का भौतिक व्याकरणिक कलेवर, रचना का शिल्पविधान तथा आंतरिक लय। युगानुरूप कविता के स्वभाव एवं भाषा परिवर्तन के साथ उसकी लयात्मक एवं शैल्पिक संरचना भी बदलती जाती है किन्तु कविता की व्याकरणिक संरचना पर परिस्थितियों का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। संरचना के स्तर पर युगानुरूप परिवर्तन कविता एवं भाषा में जीवन्तता बनाये रखता है। कविता के भाषिक, शैल्पिक एवं लयात्मक अंगीभूत घटकों का क्रमविन्यास और उसकी पारस्परिक संगति ही काव्यभाषा संरचना कही जा सकती है।

डॉ० बच्चन सिंह संरचना के सम्बन्ध में कहते हैं कि, "साहित्य के सन्दर्भ में संरचना भाषिक होगी, चित्र के सन्दर्भ में रंगरेखा, नयी समीक्षा में संरचना अंगांगि की औचित्यपूर्ण संगति का नाम है। डॉ० बच्चन सिंह का कहना है कि प्रत्येक घटक-पूर्ण के अंग के रूप में एक आन्तरिक नियम से परिचालित होकर संरचना का संश्लिष्ट अंश बनता है। घटक, अंग और संघटना अंगी दोनों में अंगांगि का सम्बन्ध है। संरचना अपने आप में पूर्ण भी है और एक प्रक्रिया भी है।"[1] वस्तुतः काव्य के सृजन का मूलाधार भाषा है, जो उच्चारण एवं श्रवण द्वारा अर्थ ग्रहण करती है। कविता की संरचना को श्रवणेन्द्रिय के स्थान पर संवेदनशील मन की भी अपेक्षा होती है क्योंकि सहृदय पाठक काव्य की संरचना से निकले सही अर्थ एवं सन्दर्भ को ग्रहणकर उसके साथ न्याय कर सकता है, शुष्क या हृदयहीन आलोचक नहीं क्योंकि उसके

1- आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द : डॉ० बच्चन सिंह, पृ०- 116.

कविता पढ़ने पर आशंका बनी रहती है कि संरचना पर एकान्तिक बल देने के कारण काव्यार्थ छूट न जाय या गौण न हो जाय। इसी सन्दर्भ में क्लींथ ब्रुक्स का कहना है कि "संरचना का मतलब अर्थ, मूल्यांकन और अर्थापन की संरचना है, यहाँ उसका सारा जोर संरचना के विभिन्न घटकों की पारस्परिक अन्विति पर है। .... "घटकों की संगति प्रक्रिया जटिल होती है इसमें परस्पर विरोधी और विसंगत्यात्मक घटक भी सामंजस्यपूर्ण हो जाते हैं।"[1] इसके मूल में आधुनिक कविता है जहाँ प्राचीन रस सिद्धान्त का आस्वाद जरूरी न होकर कविता की समझ जरूरी हो गई है। ऐसी स्थिति में कविता की संरचना को समझना अत्यन्त जरूरी हो गया है। आज भावुकता एवं सहृदयता का स्थान बौद्धिकता एवं समझदारी ने ले लिया है। ब्रुक्स का मानना है कि कविता में भाषिक संरचना के तत्त्वों का अधिकतम संयोजन कविता की उत्कृष्टता का कारण बनती है। उसका कहना है कि, "जो कविता अपने समस्त अंगों में परस्पर अभिन्न अविच्छेद्य सम्बन्ध स्थापित कर लेती है वह महान होती है क्योंकि वह अनेकता का उत्सर्ग किए बिना उस अनेकता के मूल में निहित एकता को उजागर करती है।"[2] उसका मानना है कि काव्य किसी दार्शनिक, वैज्ञानिक, सामाजिक या ऐतिहासिक सत्य की अभिव्यक्ति नहीं बल्कि एक विशिष्ट भाषा संरचना है जिसकी उन्होंने तीन विशेषताएँ मानी हैं -

§1§ वैदग्ध्य :- इस बात की जागरूकता किसी स्थिति विशेष के प्रति कई संभव अभिवृत्तियाँ § Attitudes § हो सकती हैं।

§2§ विरोधाभास :- किसी स्थिति के प्रति परिपाटीगत दृष्टि से अथवा उसके प्रति सीमित तथा विशिष्ट दृष्टिकोण के साथ जैसे - व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक भाषाओं के सन्दर्भ में होती है, अधिक व्यापक वैषम्य निर्धारण की युक्ति।

§3§ वक्रता :- प्रतिबन्धों के द्वारा अभिवृत्तियों की परिभाषा की युक्ति।[3]

1- क्लींथ ब्रुक्स : द वेल रॉट अर्न, पृ0- 190
2- वही, पृ0- 195.
3- वही, पृ0- 239.

इसके अभिप्रेत अर्थ को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि वैदग्ध्य का तात्पर्य किसी एक अभिवृत्ति तक सीमित नहीं है। कविता अपनी तथा अन्य अभिवृत्तियों के संतुलन में से अपनी अभिवृत्ति अर्जित करती है। यह तत्व रचना को सतही, एकांगी तथा भावुकतापूर्ण होने से बचाता है जबकि विरोधाभास ऐसी युक्ति है जो किसी स्थिति के प्रति सीमित दृष्टि तथा अधिक व्यापक दृष्टि के वैदग्ध्य को व्यापित है। वक्रता के सम्बन्ध में वे कहते हैं कि कविता को किसी भी "कथ्य" पर सन्दर्भ का दबाव सक्रिय है और सन्दर्भ के अनुसार उसका अर्थ संशोधित परिवर्तित हो गया है।[1]

टी० एस० इलियट काव्य की आलोचना में काव्यगत शिल्प एवं उसकी संरचना पर बल देते हुए इस क्रम में काव्यभाषा के विशिष्ट महत्त्व को स्वीकार करते हैं और किसी भी कृति को संरचनात्मक रूप में देखने की बात कहते हैं। उनके अनुसार "कलाकृति बिम्बों का महत्त्वपूर्ण संयोजन है, जीवन वृतान्तों अथवा कवि के व्यक्तिगत संवेगों की अभिव्यंजना नहीं। काव्य स्वयं में काल निरपेक्ष अर्थ का विन्यास है, अतएव लेखक के व्यक्तित्व को साहित्य से अलग कर काव्य की भाषा एवं उसके विशिष्ट अस्तित्व पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इस संरचना के सम्बन्ध में भाषिक अभिव्यक्ति ही आलोचना है।[2] जॉन क्रो रैंसम संरचना के क्रम में शब्दविधान और अर्थविधान की बात करता है। उसका कहना है कि, "एक श्रेष्ठ आलोचक का लक्ष्य यह हो जाता है कि वह कविता विशेष का मूल्यांकन अर्थविधान और शब्दविधान के ही सन्दर्भ में करे।"[3]

काव्यभाषा संरचना के स्वरूप निर्माण में बिम्ब, प्रतीक तथा व्याकरणिक अवयवों की मुख्य भूमिका रहती है, अतः संरचना के अध्ययन का आधार भी उन्हें बनाया जाता है और पाठक इन्हीं तत्वों के प्रयोग के परिप्रेक्ष्य में शब्दों

1- क्लींथ ब्रुक्स : आइरनी एज ए प्रिंसिपल ऑफ स्ट्रक्चर, पृ०- 737.
   उद्धृत नयी समीक्षा : सं० नगेन्द्र, पृ०- 17.
2- टी० एस० इलियट : ऑन पोयट्री ऐण्ड पोयट्स, पृ०- 37.
3- जॉन क्रो रैंसम : क्रिटिसिज्म प्योर स्पैकुलेशन, पृ०- 233.

के अर्थ एवं अर्थव्याप्ति पर विचार करता है। डॉ0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव शैली विज्ञान के सन्दर्भ में संरचना पर विचार करते हुए कहते हैं कि संरचना का संबंध किसी सावयव वस्तु {कृति या रचना} के संगीतनिष्ठ साकल्य से रहता है। वह अपने रूप अंगांगि के विभिन्न संघटकों {अंगों} के बीच पाए जाने वाले अन्वय सम्बन्धों के आधार पर ग्रहण करती है। उनका मानना है कि चूँकि संरचना के रूप की प्रकृति अन्वय सिद्धान्त पर आधारित होती है और अन्वय सिद्धान्त संघटकों पर नहीं वरन् उसके प्रकार्य पर आश्रित रहता है और प्रकार्य अपनी प्रकृति में अमूर्त होते हैं इसीलिए संरचना की प्रकृति भी अमूर्त एवं संकल्पनात्मक हो जाती है। उनका विचार है कि, "संरचना स्वयं में प्रेक्षणीय नहीं होती लेकिन उसका ज्ञान प्रेक्षण प्रक्रिया द्वारा ही होता है क्योंकि उसकी प्रकृति अमूर्त एवं संकल्पनात्मक होती है। प्रेक्षण- प्रक्रिया की दो स्थितियाँ होती हैं- {1} भाववादी, {2} वस्तुवादी। भाववादी विद्वान यह मानते हैं कि अमूर्तीकरण की प्रक्रिया मानसिक होने के कारण आत्मगत होती है। अतः जिस संरचना के अमूर्तरूप की चर्चा की जाती है वह वस्तुतः प्रेक्षक {आलोचक} की वस्तु होती है। अगर कृति संगतिनिष्ठ है तो उसके अंगों में निश्चित अन्वय सम्बन्धी व्यवस्था होगी। अतः संरचना कृति की आंगिकता {आर्गेनिसिटी} में प्रच्छन्न रूप से निहित होती है अतः आंगिकता ही कृति को पूर्णता या साकल्य देती है। डॉ0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव शैली विज्ञान की दृष्टि से संरचना के तीन आधारभूत तथ्यों की ओर संकेत करते हैं -

{1} साकल्यता {होलेनेस} :- उसका सम्बन्ध आभ्यन्तर संगति से है जिसका क्षेत्र आंगिकता {आर्गेनिसिटी} है। किसी रचना के संघटक {अंगभूत तत्व} किसी न किसी एक आन्तरिक विधान से बंधे होने के कारण संगतिनिष्ठ पूर्णता को जन्म देते हैं। यह इस सम्पूर्णता का विधान ही है जो अर्थ के धरातल पर संघटकों

1- डॉ0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव : संरचनात्मक शैलीविज्ञान, पृ0- 44.

के इस पूर्ण योग से कुछ अधिक या विशिष्ट अर्थ देने में समर्थ है जो उस संरचना के बाहर रहने की स्थिति में मिलना सम्भव न था। इसीलिए संरचना अंगों के समग्र योग से भिन्न चीज है।"[1] उनका मानना है कि संरचनागत विभेद के कारण शब्द का अर्थ एकदम से बदल जाता है। उदाहरण के लिए रंगीन वस्त्र एवं रंगीन विचार। स्पष्ट है कि दोनों में रंगीन शब्द समान रूप से आया है लेकिन संज्ञा के कारण दोनों के अर्थ एकदम से बदल गए हैं।

§ख§ प्रयोजन § फंक्शन § :- संरचना संघटकों की अपनी स्थिति का परिणाम न होकर उनकी अर्थवत्ता §प्रयोजन§ से सम्बद्ध रहती है। संरचना के संघटक का अपना एक प्रयोजन अथवा मूल्य होता है जो उनके अन्य संघटकों के सम्बन्धों पर आधारित होता है। उदाहरण के रूप में शतरंज के खेल में जो एक संरचनात्मक विधान है, उसके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उसके संघटकों §मोहरों§ का एक मूल्य होता है और संघटक §मोहरे§ अपने बाह्य आकार के आधार से, कहीं अपने निर्धारित मूल्यों के आधार पर पहचाने जाते हैं। इसलिए खेल में अगर कोई संघटक §मोहरा§ खो जाए तो उसे किसी गोटी या कागज के किसी अन्य टुकड़े द्वारा स्थानान्तरित किया जा सकता है।[2] अतः स्पष्ट है कि रचना में प्रयुक्त शब्दों का कोई अर्थ नहीं होता वरन् उसमें अर्थ और संवेदनाएँ उसके प्रयुक्त होने के ढंग एवं स्थान पर निर्भर करती हैं।

§ग§ स्वायत्तता §ऑटोनोमी § :- संरचना इस अर्थ में स्वायत्त होती है कि वह अपनी सत्ता के लिए स्वयं ही मुखापेक्षी है। वह अपने से बाहर किसी अन्य वस्तु पर आधारित नहीं होती। भाषा और साहित्य के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि उसके किसी घटक का अर्थ या मूल्य उस संरचना के बाहर जाकर सिद्ध नहीं होता वरन् अन्य सम्बद्ध घटकों के घात-प्रतिघात के आधार पर निर्धारित होता है।"[3]

1- डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव : संरचनात्मक शैलीविज्ञान, पृ०- 45.
2- वही, पृ०- 45.
3- वही, पृ०- 45.

डॉ० श्रीवास्तव का विचार है कि "स्वायत्तता" की संकल्पना को पूरी तरह समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम "संरचनात्मक साकल्यता" ﴾स्ट्रक्चरल होलनेस﴿ और "संरचना के साकल्य" ﴾होल ऑफ दि स्ट्रक्चर﴿ के अन्तर को ध्यान में रखें। "संरचना का साकल्य" वस्तुतः वह सन्दर्भ होता है जिसके भीतर रखकर कृति विशेष की अर्थवत्ता पर प्रकाश डाला जाता है। यह तथ्य इस ओर संकेत देता है कि किसी पाठ या कृति की व्याख्या अपने ﴾कला﴿ प्रसंग से सन्दर्भ मुक्त नहीं होती। "संरचना के साकल्य" के सन्दर्भ में ही हम किसी साहित्यकार की एक कृति की व्याख्या करते समय उस साहित्यकार की अन्य रचनाओं को सामने लाते हैं और किसी एक साहित्यकार की कृति विशेष का अध्ययन- विश्लेषण करते समय किसी अन्य साहित्यकार की कृति को सन्दर्भवत् स्वीकार करते हैं।

डॉ० भोलानाथ तिवारी भाषा वैज्ञानिक सन्दर्भ को ग्रहण करते हुए कविता में शब्दों की "अर्थ संरचना" में सहायक तत्वों की पाँच कसौटियाँ मानते हैं -

﴾क﴿ सम सन्दर्भता :- जो शब्द एक सन्दर्भ में प्रयुक्त हो सकें।

﴾ख﴿ सम अवयवता :- शब्दों की संरचना में समान एवं समानार्थी अवयवों का प्रयोग हुआ है।

﴾ग﴿ सम उर्वरता :- पर्याय शब्दों में नयी रचना का निर्माण करने की समान क्षमता हो अर्थात् नवनिर्माण में वे समान रूप से उर्वर हों। उदाहरण - सहन - सहिष्णु ।

﴾घ﴿ सम घटकता :- जिन शब्दों के अर्थीय घटक ﴾semantic component﴿ समान हों वे पर्याय होते हैं। उदाहरण :- स्त्री- औरत।

﴾ङ﴿ समविलोमता :- जिन शब्दों के विलोम शब्द आपस में पर्याय हों ।

उपर्युक्त पाँचों कसौटियों में समसम्बर्भता वितरण से सम्बन्धित है तथा सम अवयवता एवं सम उर्वरता संरचना से सम्बद्ध है और केवल शेष दो अर्थात् सम घटकता और समविलोमता ही अर्थ से सीधे सम्बद्ध हैं। कहना न होगा कि पर्याय का सीधा सम्बन्ध अर्थ से ही है वितरण अथवा संरचना से नहीं।" स्पष्ट है कि डॉ० भोलानाथ तिवारी कविता में शब्दों की संरचना के लिए दो तत्वों समअवयता एवं समउर्वरता की अर्थविस्तार के सन्दर्भ में मुख्य भूमिका स्वीकार करते हैं। अर्थ के विस्तार एवं स्पष्टार्थ काव्य का सूक्ष्म पाठानुशीलन अब भाषिक एवं संरचनात्मक विश्लेषण के माध्यम से हमें रचना की सामान्य स्थिति से परिचित कराता है और उसके निर्णायक तत्वों की समझ प्रदान करने में सहायक होता है, लेकिन वह काव्य की पूरी अनुभूति को ग्रहण करा सके यह आवश्यक नहीं, क्योंकि सभी रचनाकारों की संरचना इतनी उत्कृष्ट नहीं होती कि हमें परम्परागत स्रोतों की सहायता लेनी पड़े। कृति के आस्वादन के स्तर पर भाषा वैज्ञानिक विश्लेषण की एक निश्चित सीमा है और विद्वानों का मत है कि कविता की भाषा अपनी विशेष संरचना के फलस्वरूप भाषाविज्ञान की परिधि से बाहर निकल जाती है। वह जिन समस्याओं और तत्वों को हमारे सामने उठाती है उन्हें भाषाविज्ञान के तात्त्विक विश्लेषण से नहीं ढूँढा जा सकता है क्योंकि जिन व्याकरणिक नियमों एवं व्यवस्था के द्वारा भाषा के बोलचाल का रूप बँधा होता है उससे कहीं भिन्न व्यवस्था कविता की भाषा की होती है।

स्पष्ट है कि काव्यभाषा संरचना से तात्पर्य उस पारम्परिक रूप से नहीं है जो कथ्य को अपने भीतर समाए रहता है। उसका अभिप्राय युक्तियुक्त अथवा तर्कसंगत अर्थ भी नहीं है। उसका तात्पर्य यह है कि किसी स्थिति विशेष के प्रति जितनी सम्भव अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं उनमें से भरसक अधिक से अधिक कविता में होनी चाहिए, वे भी जो मुख्य स्वर के विरोध में पड़ती हों तथा अप्रासंगिक

1- डॉ० भोलानाथ तिवारी : हिन्दी भाषा की संरचना, पृ०- 221-222.

और असामंजस्यपूर्ण हों। काव्यभाषा को वक्रतापूर्ण बनाने के लिए कवि को संरचना में इन विपरीत अभिव्यक्तियों के बीच सामंजस्य लाते हुए उसे नाटकीय सांचे में ढालना चाहिए। संरचना का मतलब अर्थों, मूल्यांकनों तथा व्याख्याओं की संरचना से है और वह जिस अन्विति सिद्धान्त से अनुप्राणित है वह लक्ष्यार्थों, व्यंग्यार्थों तथा अर्थों के संतुलन पर आधारित है। यह स्पष्ट है कि कविता की भाषा संघटना की मांग करती है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि कविता की भाषा के संरचनात्मक तत्वों की भी अपनी एक सीमा होती है, क्योंकि काव्यभाषा संरचना के ये तत्व एक सीमा तक जाकर पाठक को बौद्धिक व्यायाम कराने लगते हैं।

{ख} संरचना की विविध अवधारणाएं -

{1} पाश्चात्य आलोचक और संरचना की अवधारणा :-

कविता को संरचना की दृष्टि से मूल्यांकित करने वाले आलोचक कविता को न केवल भाषिक वस्तु के रूप में ग्रहण करते हैं वरन् इसी के द्वारा कविता के स्वरूप को पहचानने और उद्घाटित करने का प्रयत्न करते हैं। पाश्चात्य आलोचक डॉ० एफ० आर० लीविस ने कविता में मात्र "भाषिक संरचना" भर होने की रूढ़ परम्परा का विरोध किया है। उनका विचार है कि कृति की भाषिक संरचना से तात्पर्य उसके अर्थ सौन्दर्य में वृद्धि करना है न कि उसकी मात्र खाना-पूर्ति करना। उनका कहना है कि "साहित्य में कोई भी गम्भीर रुचि केवल साहित्यिक नहीं हो सकती तो उन्होंने साहित्यिक शब्द के अत्यन्त संकुचित अर्थ की ओर संकेत किया। साहित्यिक मूल्यों का यह अर्थ- संकोच इस हद तक हुआ कि साहित्यिक शुद्धता, आलोचनात्मक वस्तुनिष्ठता और दृष्टिकोण की निस्संगता के नाम पर साहित्यिक कृति केवल "भाषिक संरचना" भर होकर रह गयी है और भाषा- शास्त्र के सहारे कृतियों की शैली वैज्ञानिक चीड़- फाड़

विशुद्ध साहित्यिक मूल्यों की पराकाष्ठा समझी जाने लगी।[1] भाषा-वैज्ञानिक भाषिक संरचना के गोचर तत्वों पर वैज्ञानिक दृष्टि से निश्चित नियमों एवं मानदण्डों के अनुसार विश्लेषण करता है जबकि संरचनावादी कविता में निहित भाषा के "डीप स्ट्रक्चर" पर विचार करता है। वहाँ न भाषा के संरचनात्मक तत्व निश्चित नियम के तहत प्रयुक्त रहते हैं, और न उनका विवेचन ही नियमों के तहत होता है। भाषा वैज्ञानिक भाषिक संरचना से अर्थ की तलाश नहीं करते प्रस्तुत उसके आधार पर एक प्रचलित पद्धति की खोज करते हैं, इसके लिए वे भाषिकी के उस मॉडल की बात करते हैं कि जिसे सस्यूर ने तलाशा है। यह मॉडल कितना उपयुक्त है, यह अलग से एक बहस एवं शोध का विषय है।उनका कहना है कि, "भाषकीय संरचना एक सांकेतिक ध्वनि के तहत कार्य करती है। इसके द्वारा एक ही शब्द का अर्थ भिन्न- भिन्न हो जाता है और रचनाकार सृजन के क्षणों में इन्हीं संरचनात्मक ध्वनियों का निर्माण अपनी कविता के द्वारा करता है। साहित्यिक रचना एक तरह से संकेतों की संरचना है जिसके मूल में बिम्बवादी भावना काम करती है। अर्थ- ज्ञापन के निमित्त भाषिक इकाईयाँ बाह्य जगत की वस्तुओं के सन्दर्भों के रूप में कार्य न कर स्वयं एक दूसरे का सन्दर्भ बनकर और एक दूसरे से अपने भेद के द्वारा करती है।"[2]

वस्तुतः साहित्यिक प्रयोजनों के लिए भाषा के ध्वनि स्तर को इसके अर्थ से अलग नहीं किया जा सकता और न ही अर्थ की संरचना का भाषा-वैज्ञानिक विश्लेषण ही किया जा सकता है, कोई भी कलाकृति अनुभव का विषय बन सकती है और उसे व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से ही समझा जा सकता है क्योंकि रचना अनुभव से पृथक नहीं। रेनेवेलेक एवं ऑस्टिन वारेन का मानना है कि भाषा- प्रणाली (व्याकरण सम्मत भाषा) रूढ़ियों एवं

1- डॉ० एफ० आर० लीविस : उद्धृत आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन- डॉ० निर्मला जैन, पृ०- 13.

2- सस्यूर : कोर्सेज इन जनरल लिंग्विस्टिक्स, पृ०- 146.

आदर्शों का एक संग्रह होती है जिसकी क्रिया एवं सम्बन्धों को देख परख सकते हैं। उनका कहना है कि संरचना को परिवर्तित नहीं होना चाहिए और ठीक उसी तरह उसे ज्ञान का विषय होना चाहिए जैसे अन्य विषय का ज्ञान होता है तथा शास्त्र भिन्नतागत कतिपय परिवर्तन तो हर संरचना की अपनी विशेषता है। उनका कहना है कि, "इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इनकी संरचना का एक बुनियादी रूप वही है जो पूरी कालावधि में अपरिवर्तित रहा है फिर भी यह संरचना गतिशील है। यह सारे कालक्रम में पाठकों, आलोचकों एवं अन्य कलाकारों के मानस से गुजरती हुई परिवर्तित होती रहती है। इस तरह मानकों की यह प्रणाली विकसित हो रही है और कुछ अर्थों में इसे कभी भी अंशतः और निर्दोष रूप में नहीं प्रस्तुत किया जा सकेगा। परन्तु इस गतिशील संकल्पना का अर्थ निरा विषयनिष्ठवाद (सब्जेक्टिविज्म) और ज्ञानसापेक्षवाद (रिलेटिविज्म) नहीं है।"[1] ऑस्टिन वारेन एवं रेनेवेलेक संरचना में चयनित वस्तुओं के उपादानों के रखने की बात करते हैं। उनका मानना है कि, "काव्यात्मक अर्थ-विज्ञान शब्द चयन एवं बिम्बविधान आदि समस्याओं को नये और अधिक सतर्क विवरण में पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है। अर्थ की इकाइयाँ, वाक्य और वाक्यों की संरचनाएँ, वस्तुओं का अभिधान करती हैं, इसमें काल्पनिक यथार्थों जैसे प्राकृतिक दृश्यों, भीतरी दृश्यों, चरित्रों, क्रियाओं या विचारों (प्रत्ययों) का निर्माण किया जाता है। इनका विश्लेषण इस तरह किया जाता है कि यह भ्रान्ति न पैदा होने पाए कि वे चीजें भाषागत संरचना से स्वतः जन्म लेती हैं।"[2] अतः स्पष्ट है कि कविता की समस्त सम्भावनाएँ काव्य की भाषिक संरचना द्वारा ही पैदा की जाती हैं। इसीलिए काव्य की भाषिक संरचना को संकेतों की संरचना कहते हैं क्योंकि भाषिक संरचना में हेक संकेत ही उसकी मुख्य इकाई है।

1- ऑस्टिन वारेन एवं रेने वेलेक : साहित्य सिद्धान्त, पृ0- 204.
2- वही, पृ0- 200.

संरचना के सम्बन्ध में क्लींथ ब्रुक्स का कहना है कि "कविता की संरचना बहुत कुछ नाटक के सदृश होती है। दूसरे शब्दों में कविता अनेक विसंवादी संदर्भों से संयुक्त संवादों का अनुक्रम है। कवि के लिए यह जरूरी है कि वह चाहे अनचाहे अनुभूति के ऐकात्म्य को नाटकीय अभिव्यक्ति प्रदान करे। कवि को अनुभूति का सामंजस्य करना होता है और उसके लिए यह एक अनिवार्यता है कि वह अनुभूति के उस सामंजस्य को हमें उसी रूप में लौटा दे। यह सामंजस्य भाषिक सन्दर्भ में एक प्रकार का संतुलन है। जहाँ विज्ञान का विश्वास तथ्य कथन से होता है, वहाँ कविता अभिवृत्तियों, अनुभूतियों और भावार्थों के अतिरिक्त अर्थ का प्रकाशन करती है।[1] उनका मानना है कि संरचनाएँ ही कविता में व्यंग्योक्तियों का निर्माण करती हैं। वे कहते हैं कि, "कविता की अन्विति व्यंग्यात्मक सम्बन्धों की अन्विति है क्योंकि व्यंग्योक्ति "परस्पर विरोधी संवेगों को संतुलन" प्रदान करती है। भाषा विरोधाभास की भाषा है और विरोधाभास और वक्रता उक्ति के संदर्भ पर निर्भर होते हैं।[2] वे विरोधाभास को ही संरचना के मूल में मानते हैं उनका कहना है कि, "विरोधाभास ही संरचना में उत्कर्ष के कारण हैं, कविता में इनका उदय रूपक की वजह से होता है। रूपक सविशेष को अमूर्त नहीं होने देता। वह सामान्य कथनों को नाटकीय अभिव्यक्ति में रूपांतरित कर देता है। कविता की प्रविधि व्यंग्यात्मक एवं अप्रत्यक्ष होती है और यह बिम्बों, रूपकों, प्रतीकों, चरित्रों और स्थितियों के माध्यम से नाटकीय रूप से अर्थ प्रकाशन करती है।[3]

कविता को संरचनात्मक ढंग से विचार करते हुए एलन टेट उसके समग्र प्रभाव को महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि,"कविता का अस्तित्व जिस संतुलन पर स्थित होता है वह उसके बहिरंग संतुलन (extension) और अंतरंग सन्तुलन (intension) के बीच घटित होता है। इनमें से बहिरंग संतुलन का संबंध

1- क्लींथ ब्रुक्स : द वेल राट अर्न, पृ0- 194- 195.
2- वही, पृ0- 191- 92.
3- क्लींथ ब्रुक्स : आधुनिक पोइट्री एंड द ट्रेडिशन, पृ0- 18.

उसके अभिप्रेय पक्ष से है जबकि अन्तरंग संतुलन उसके लाक्षणिक पक्ष से जुड़ा हुआ है। संतुलन (Tension) में इन दोनों शक्तियों का सामंजस्य हो जाने से ही कविता को उसकी अर्थवत्ता प्राप्त होती है। जहाँ बहिरंग संतुलन एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक कविता की युक्तियुक्त गति का विवरण देता है, वहीं अन्तरंग संतुलन का सम्बन्ध कवि के भावावेग और लक्ष्यार्थ- विकास से होता है।" संरचना शब्द की व्याख्या करने में नये समीक्षकों का आपस में मतभेद है। वेलेक की दृष्टि में "रूप और वस्तु तत्व का संयोजन जिस सीमा तक सौन्दर्यगत उद्देश्यों के लिए किया जाता है वहाँ तक संरचना शब्द में इन दोनों का अन्तर्भाव है। उस स्थिति में कलाकृति एक पूर्ण संकेत व्यवस्था या सांकेतिक संरचना का रूप ग्रहण कर लेती है और एक विशिष्ट सौन्दर्यपरक उद्देश्य की पूर्ति करती है।" उन्होंने यह भी कहा है कि वास्तविक कविता के लिए यह अनिवार्य है कि उसकी संकल्पना ऐसे प्रतिमानों की संरचना के रूप में की जाए जो (प्रतिमान) ध्वनि संरचना में, वाक्यात्मक संरचना में और उस कविता में विश्लिष्ट विषयवस्तु में समान रूप से प्रतिबिम्बित हों। ऐसी संरचना का अस्तित्व प्रतिमानों और मूल्यों से अलग नहीं होता।"[2]

भाषा की प्रकृति एवं संरचना के विश्लेषण क्रम में रैंसम, एम्पसन, क्लीथ ब्रुक्स, एलन टेट, आस्टिन वारेन, ब्लैकमूर, सस्यूर का पाश्चात्य आलोचना में महत्वपूर्ण स्थान है। ये वस्तुतः नयी समीक्षा के आलोचक हैं और इनकी मान्यता है कि कोई भी काव्य कृति एक विशिष्ट भाषिक संरचना है। अतः रचना की काव्यात्मक विशिष्टता को भाषिक उपलक्षणों के ही माध्यम से जाना जा सकता है, लेकिन कृति की संरचना के विश्लेषण क्रम में ये आलोचक अलग-अलग समीक्षा पद्धतियों का उपयोग करते दिखाई पड़ते हैं। इनमें से रैंसम शब्द और अर्थविधान को, एम्पसन संदिग्धार्थता को एलन टेट तनाव (संतुलन) को ब्रुक्स विरोधाभास को, वारेन-वक्र उक्ति को, हील राबर्ट अनेकार्थता को ब्लैकमूर भंगिमा को संरचना के मूल में स्वीकार करते हैं।

1- एलन टेट : टेंशन इन पोयट्री, पृ०- 73.
2- रेने वेलेक : थ्योरी पृ०- 141, उद्धृत नयी समीक्षा : प्रो० पी०एस०

§2§ भारतीय आलोचक एवं संरचना की अवधारणा -

§अ§ प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्रीय आचार्य और संरचना :-

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य की भाषिक संरचना पर कहीं अधिक व्यवस्थित एवं साफ- सुथरे ढंग से विचार किया गया है लेकिन विद्वानों का ध्यान उधर नहीं गया है। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकार, गुण, रीति, ध्वनि, एवं वक्रोक्ति सम्प्रदायों में काव्य संरचना की बात कही गई है। इन सम्प्रदायों में वक्रोक्ति एवं ध्वनि सम्प्रदाय भाषिक संरचना के आन्तरिक विधान को स्पष्ट एवं विश्लेषित करते हैं जबकि गुण एवं रीति सम्प्रदाय काव्य की बाह्य बनावट पर प्रकाश डालते हैं। वे काव्य में भाषिक संरचना के तत्वों की उचिततम संगति पर बल देते हैं। काव्य के संरचनात्मक मूल्यांकन में पाश्चात्य आलोचक जहाँ काव्य संरचना के विभिन्न घटकों के सहयोग के अध्ययन पर बल देते हैं वहीं भारतीय काव्यशास्त्र में औचित्य सिद्धान्त के अन्तर्गत काव्य के विभिन्न घटकों के बीच इसी सहयोगपूर्ण सामंजस्य की बात कही गई है। जिसके कारण काव्य का उत्कर्ष निरन्तर बढ़ता है। औचित्य अनुरूपता का वाचक है जो काव्य के विविध तत्वों में समाहित होकर उसमें संतुलन एवं संगति लाता है। अत: यह काव्य की बाह्य संरचना के विवेचन के निमित्त उत्कृष्टतम प्रतिमान है। इसकी परिधि में उन्दयोजना, भाषाप्रयोग, अलंकार, रस, गुण,वक्रोक्ति आदि सभी तत्वों का समावेश होता है और बिना इसकी उचित संगति के काव्य हृदयग्राह्य नहीं बन सकता। आचार्य जब आनन्दवर्धन ने काव्य में बकेहिव औचित्य का महत्व स्वीकार करते हुए अनौचित्य को रसभंग या रसव्याघात का प्रधान कारण माना है। उन्होंने औचित्य को रस का परमगुह्य रहस्य स्वीकारा है -

> अनौचित्यादृतेनान्यद्रसभंगस्यकारणम् ।
> प्रसिद्धौचित्यबंधस्तु रसस्योपनिषत्परा ।।

1- आचार्य आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक, 3/ 14.

काव्य में जो जिसके अनुरूप होता है उसे उचित कहते हैं और कविता में उचित का यही भाव ही औचित्य है -

> उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत् ।
> उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते[1] ।।

भारतीय काव्यशास्त्र में औचित्य की अवधारणा पूर्णरूप से स्वीकृत रही है। काव्य के सभी रूपों, दृश्य एवं श्रव्य में आचार्यों ने औचित्य की आवश्यकता अन्वेषित की है क्योंकि काव्य के सभी तत्वों का औचित्यपूर्ण विधान ही उसके चमत्कार व या सौन्दर्याभिव्यक्ति का साधन है अन्यथा रस, अलंकार, गुण, रीति आदि का अनौचित्यपूर्ण निबन्धन न केवल काव्य को दूषित करता है बल्कि कवि की काव्यप्रतिभा पर भी प्रश्नचिह्न लगाता है। अतः काव्य की उत्कृष्टता के लिए यह आवश्यक है कि उसमें समय, विषय, पात्र एवं अवसर के अनुकूल भाषा, रस, छन्द आदि का उचित समावेश होना चाहिए। काव्य इन्हीं तत्वों के सामंजस्यपूर्ण उचित प्रयोग से आकार ग्रहण करता है। काव्यनिर्माण प्रक्रिया में कवि पद, वाक्य, क्रिया, कारक, लिङ्ग, विशेषण, वचन आदि की सहायता लेता है और इन्हीं तत्वों के साथ काव्य संरचना का निर्माण होता है। काव्यभाषा में इन्हीं तत्वों का कवि चतुरतापूर्ण ढंग से प्रयोग करता है। आचार्य क्षेमेन्द्र का कहना है कि जिस प्रकार ब्र शरीर के किसी एक मर्मस्थल के नष्ट हो जाने पर जीवन समाप्त होवश जाता है, उसी प्रकार काव्य तथा उसके जीवनभूत औचित्य की समाप्ति भी किसी एक औचित्य तत्व के नष्ट हो जाने पर हो जाती है और ये औचित्य तत्व मूलतः काव्यभाषा संरचना के ही तत्व हैं। भारतीय आचार्यों ने इस दृष्टि से विचार करते हुए कुल सत्ताइस तत्वों को स्वीकार किया है जिसके "उचित सामंजस्य" से ही कविता का निर्माण होता है -

---

1- आचार्य क्षेमेन्द्र : औचित्य विचार चर्चा, 7.

पदे, वाक्ये, प्रबन्धार्थे गुणेलंकरणे रसे ।
क्रियायां कारके लिङ्गे वचने च विशेषणे ।।
उपसर्गे निपाते च काले देशे कुले व्रते ।
तत्वे सत्त्वेऽप्यभिप्राये स्वभावे सारसंग्रहे ।
प्रतिभायामवस्थायां विचारे नाम्नयथाशिषि ।
काव्यस्याङ्गेषु च प्राहुरौचित्यं व्यापिजीवितम् ।।[1]

आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य को पद, वाक्य, रस, अलंकार, रीति, गुण, प्रबन्ध आदि में व्याप्त मानकर उसे काव्य का जीवनधारक तत्त्व स्वीकारा है।

विभिन्न सम्प्रदायों ने औचित्य को अपने सन्दर्भ में रखकर अपने सम्प्रदाय के परिप्रेक्ष्य में उसके महत्त्व की ओर संकेत किया है। अलंकारवादियों के अनुसार अलंकार का औचित्यपूर्ण विधान ही उसके सौन्दर्याभिव्यक्ति का कारण बनता है अन्यथा उनका उचित प्रयोग वैरस्य उत्पन्न करने वाला सिद्ध होता है, जबकि वक्रोक्ति के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक इसे वक्रोक्ति का प्राणतत्त्व मानते हैं। उनका कहना है कि काव्य का प्राणतत्त्व वक्रोक्ति है और वक्रोक्ति का प्राणतत्त्व औचित्य। उनके अनुसार क्रिया, लिंग, वचन, रस, पद आदि के उचित प्रयोग के अभाव में सहृदय के हृदय में आह्लादकता उत्पन्न नहीं हो सकती, "उचिताभिधान जीवितत्वात् वाक्यस्याप्येकदेशेऽप्यौचित्यविरहात् तद्विदाह्लादकारित्वहानिः ।"[2] रीतिवादियों ने भी काव्य की संघटना का मूल वक्तौचित्य, वाच्यौचित्य एवं विषयौचित्य कहकर रीति का औचित्यपूर्ण निर्वहन प्रबन्धगत पात्रों की प्रकृति एवं मनःस्थितियों के अनुरूप संघटन में निहित माना। रसवादियों ने रस एवं औचित्य में प्राण एवं आत्मा का सम्बन्ध स्वीकारा है। आनन्दवर्धन के अनुसार अनौचित्य का अन्य कारण नहीं है और रसों का काव्य में औचित्यपूर्ण प्रयोग ही रससिद्ध

1- आचार्य क्षेमेन्द्र : औचित्य विचारचर्चा, श्लोक, 8,9,10.
2- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवितम्, 1/57 वृत्ति ।

का परम रहस्य है। औचित्य के ही अभाव में प्रबन्ध में अंकाऽछेदन, अकाँड-प्रथन, अंगी या अनुसंधान आदि रस सम्बन्धी दोष होते हैं। ध्वनिवादियों ने औचित्य की महत्त्ता को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। यहाँ तक कि कुछ विद्वान् आचार्य आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक को औचित्य सिद्धान्त का आकारग्रन्थ मानते हैं। ध्वनिकार के अनुसार "औचित्य संवलित रसध्वनि ही काव्य का परमतत्त्व है। वस्तुतः औचित्य सिद्धान्त में काव्य संरचनात्मक अवयवों का काव्य में उचिततम सटीक प्रयोग पर बल दिया जाता है और वह मूल रूप से कविता की संरचना पर ही विचार करता है।

काव्यभाषा की संरचना मूलतः शब्दों पर आधारित है। कवि अपनी भावनाओं एवं अनुभूतियों को शब्दों के द्वारा ही मूर्त रूप प्रदान करता है जो कविता कहलाती है। कविता शब्दों की बाह्य संगति पर आधारित होती है। शब्दों की यह संगति व्याकरण पर आधारित होती है जहाँ उन्हें विभिन्न दृष्टियों को ध्यान में रखकर भाव, गुण, क्रिया, द्रव्य के आधार पर बाँटा गया होता है जो भाषा का व्याकरण कहलाता है। भाषा का यह व्याकरण सर्वनाम, संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि के रूप में विभक्त होता है। कवि अपनी कविता में जब अपनी अनुभूतियों को रखता है तो इसके लिए उसे इन्हीं तत्त्वों का सहारा लेना पड़ता है। अतः कविता की संरचना मूलतः शब्दों की व्याकरणिक संघटना पर ही आधारित होती है और कविता की संरचना में उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। भाषिक संरचना के आंतरिक तत्त्व कहे जाने वाले अलंकार बिम्ब, प्रतीक, मिथ आदि भी इन्हीं के सहारे कविता में आते हैं। भाषा का व्याकरण शब्दों पर आधारित है जबकि शब्द की सम्पूर्ण मान्यताएँ एवं विवेचन दर्शन पर आधारित है, जिस पर भारतीय दर्शन में "शब्दप्रमाण" के रूप में विचार किया गया है।

प्राचीन भारतीय दार्शनिक परम्परा को ग्रहण करके आचार्य भामह ने काव्यालंकार में तथा आचार्य वामन ने "काव्यालंकारसूत्र" में काव्य की व्या-

करणिक महत्ता को निरूपित किया है। आचार्य भामह ने अपने ग्रन्थ के "षष्ठम परिच्छेद" में कवि के लिए व्याकरण के महत्त्व पर विचार करते हुए कहते हैं कि "व्याकरण समुद्र है और कोई भी व्यक्ति बिना व्याकरण रूपी समुद्र को पार किए "शब्द" रत्न तक पहुँचने में समर्थ नहीं है क्योंकि शब्द के प्रयोग के पूर्व उसके शुद्ध एवं अशुद्ध का ज्ञान व्याकरण ही कराता है।"[1] इसी सन्दर्भ में वैयाकरण भर्तृहरि कहते हैं कि -

"तत्त्वावबोधः शब्दानां नास्ति व्याकरणादृते ।"[2]

अर्थात् शब्दों का तत्त्वज्ञान व्याकरण को छोड़कर अन्य किसी से नहीं हो सकता क्योंकि व्याकरण ही शब्दों के प्रयोग से व्यक्ति को परिचित कराता है और इसकी सहायता से ही वह शब्दों का उचित प्रयोग करने में सफल होता है। कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दों का उचिततम प्रयोग ही कविता कहलाती है। आचार्य भामह का विचार है कि रचनाकार को किसी भी रचना या रचनाकार को मानदण्ड के रूप में नहीं स्वीकार करना चाहिए अर्थात् किसी भी रचनाकार को यह देखकर कि शब्द के इस ढंग का प्रयोग पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवि ने किया है तो वह उचित ही होगा, अतः वह भी किसी वैसे ही प्रयोग का अनुकरण करें उचित नहीं क्योंकि ऐसे में सदैव भ्रान्ति बनी रहेगी। उनका मानना है कि दूसरों के प्रयोगों पर आश्रित होकर भी कोई काव्य कर सकता है लेकिन वह अनुवाद मात्र होगा और कविता में वर्णित अनुभूति उधार की होगी, ऐसे में रचना पाठक को सूचना देने में ही समर्थ होगी, न कि आह्लाद कराने में। अतः कवि को अपनी सृष्टि स्वयं करनी चाहिए। किसी के भावों एवं प्रयोगों का सहारा नहीं लेना चाहिए।

काव्यभाषा की संरचना की दृष्टि से विचार करते हुए दार्शनिक सन्दर्भ को ग्रहण कर आचार्य भामह ने शब्द के विभाजन का प्रयास किया है जो संसार में प्रचलित शब्दों को संरचना की दृष्टि से विभाजित करता है। उनका यह विभाजन मूलतः शब्द दर्शन पर आधारित है जो शब्द को व्याकरणिक विभाजन से पृथक् विभाजन है -

---

1- आचार्य भामह : काव्यालंकार, 6/ 1,2,3

द्रव्यक्रियाजातिगुणभेदान्ते च चतुर्विधाः ।
यदृच्छाशब्दमित्यन्ये डित्थादिं प्रतिजानते[1] ।।

अर्थात् शब्द चार प्रकार के माने जाते हैं - द्रव्य, क्रिया, जाति एवं गुण। आचार्य भामह का कहना है कि संसार भर में प्रयुक्त शब्द इन्हीं चार वर्गों के अन्तर्गत आ जाते हैं, फिर भी "यदृच्छा" शब्दों की पाँचवीं कोटि की स्थिति है जिसके अन्तर्गत संज्ञावाची शब्द आते हैं। बाद में शब्दों के इसी दार्शनिक विभाजन पर भाषा के व्याकरणिक विभाजन का निर्माण हुआ, और जाति एवं द्रव्यबोधक यदृच्छा बोधक शब्द व्याकरण में, संज्ञावाचक शब्दों में सम्मिलित किए गए। "यदृच्छा" बोधक शब्दों से तात्पर्य ऐसे शब्दों से है जो शब्द वक्ता की इच्छा का अनुगामी हो जैसे कोई पिता अपने पुत्र का नाम देता है तो उसके पीछे तर्क या सार्थकता नहीं होती, "गुणबोधक" शब्द व्याकरण में विशेषण के रूप में निर्दिष्ट किए गए क्रिया का स्थान व्याकरण में क्रिया का ही रहा जबकि द्रव्यबोधक शब्द स्वभाव [कोमल, कठोर आदि] में परिवर्तित हो गए। उपर्युक्त दार्शनिक परम्परा से भिन्न देशकाल में प्रचलित सर्वनाम, अव्यय आदि जो बोधक शब्द भी कविता का भाषिक संरचना में जाए जो व्याकरण के अपने रूप थे। इस प्रकार प्राचीन भारतीय आचार्यों ने शब्द की जो दो व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं उनमें प्रथम- शब्द के दार्शनिक स्वरूप पर और दूसरी शब्द की व्याकरणिक संरचना पर आधारित थी।

आचार्य भामह, आचार्य दण्डी, आचार्य मम्मट, आचार्य आनन्दवर्धन, आचार्य कुन्तक सहित अनेक सिद्धान्तनिरूपक आचार्यों ने कविता में व्याकरण के महत्त्व को स्वीकार करते हुए कविता के निर्माण में भाषिक संरचना की मुख्य भूमिका स्वीकार की है। वे अपनी समीक्षा पद्धतियों द्वारा यह दिशा- निर्देश भी देते हैं कि भाषिक संरचना के विविध रूपों का किसने ढंग से प्रयोग किया जा सकता है जिससे कविता प्रभावशाली बन पड़े। वे भाषिक संरचना की दृष्टि

1- आचार्य भामह : काव्यालंकार, 6/ 21।

से काव्य के मूल्यांकन पर भी बल देते हैं। संरचनात्मक मूल्यांकन की दृष्टि से भारतीय काव्यशास्त्री आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति सिद्धान्त का विकास किया। जबकि दूसरे वर्ग के आचार्यों ने दार्शनिक मान्यता को ग्रहण कर कविता को मनोवैज्ञानिक संवेदनात्मक पक्ष की दृष्टि से अपने समीक्षा सिद्धान्तों को विकसित किया जिसमें रस सिद्धान्त प्रमुख है। दार्शनिक परम्परा से सम्बद्ध आचार्य शब्द को अभिधा तत्त्व के रूप में देखते हैं और उसे काव्य का मुख्य तत्त्व स्वीकार करते हैं, साथ ही लक्षणा एवं व्यंजना को उसके द्वारा ही उत्पन्न मानते हैं। अतः शब्द का दार्शनिक ढंग से किया गया विभाजन काफी हद तक अभिधा का विभाजन है जो कविता के आन्तरिक रचनाविधान से सम्बन्ध रखता है और उसके चार भेद अभिधा के चारों भेद माने जा सकते हैं - (1) यौगिक, (2) रूढ़, (3) योगरूढ़, (4) यौगिकरूढ़ । बाद के भारतीय आचार्यों ने कविता के व्याकरणिक एवं दार्शनिक पक्षों के समन्वित रूप को लेकर समीक्षा सिद्धान्तों को विकसित किया, इसमें आचार्य आनन्दवर्धन का ध्वनिसिद्धान्त प्रमुख है। वे व्याकरणिक आधार को स्वीकार करते हुए कहते हैं -

"प्रथमो विद्वांसो हि वैयाकरणाः ।
ते च श्रूयमाणेषु वर्णेषु ध्वनिरिति व्यवहरन्ति ।।"[1]

अर्थात् वैयाकरण श्रूयमाणवर्णों में ध्वनि का व्यवहार बताते हैं। ध्वनिवादी पतंजलि के इस व्याकरणिक सिद्धान्त को भी स्वीकार करते हैं कि एक बार में एक ही वर्ण उच्चरित होता है - "एकैक वर्णवर्तिनी वाङ् न द्वौ युगपदुच्चारयति"।

वस्तुतः काव्यरचना अपने निर्माण में व्याकरणिक अवयवों का ही सहारा लेती है जो कविता की बाह्य संरचना कहलाती है। कविता के सन्दर्भ में यह कहना कि उसमें व्याकरण की कोई महत्ता नहीं है, उचित नहीं क्योंकि जिसे आलोचक व्याकरण से मुक्त कविता कहते हैं वह वस्तुतः व्याकरण से मुक्त नहीं रहती क्योंकि कविता में कवि द्वारा प्रयुक्त हुए शब्द व्याकरण के ही कोई न

1- आचार्य आनन्दवर्धन : ध्वन्यालोक, 1/13 वृत्ति ।

कोई अवयव होगी और यही कविता के निर्माण में वाक्य विधान का मूल है। काव्यभाषा शब्द एवं अर्थ की आपसी समझ का ही विशिष्ट रूप है। काव्य-भाषा की सक्रियता काव्यानुभूति की माँग के अनुसार काव्यभाषा के विविध उपादानों के साथ रचना के स्तर पर सीधे जुड़ी हुई है। इसीलिए भारतीय काव्यशास्त्रियों ने कविता में शब्द और अर्थ के सौहित्य की बात की क्योंकि शब्द एवं अर्थ का उचिततम प्रयोग ही उत्कृष्ट कविता का निर्माण करता है और काव्यभाषा संरचना में व्याकरणिक उपादानों के अत्यधिक महत्व के कारण भारतीय काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने पाणिनि को प्रथम कवि माना है।

{ब} आधुनिक भारतीय आलोचक और संरचना की अवधारणा :-

आधुनिक भारतीय आलोचकों की संरचना विषयक अवधारणाएं बहुत कुछ पाश्चात्य आलोचकों की संरचना विषयक दृष्टियों पर आधारित है। इन आधु-निक हिन्दी आलोचकों ने एक तरफ पाश्चात्य विद्वानों के कई मतों को मिला कर कब एक पूर्ण स्वरूप प्र स्पष्ट करने की कोशिश की है वहीं कुछ नवीन तथ्य जोड़ने का भी प्रयास किया है। अज्ञेय काव्यभाषा संरचना के मूल में सम्प्रेषण की समस्या को देखते हैं, उनका मानना है कि अर्थ एवं अनुभूति के स्तर पर सम्प्रेषण ही काव्यभाषा की संरचना का साथ देता है और वही संरचना का मूल तत्व है। संरचना की उत्कृष्टता उस साहित्य की उत्कृष्टता है क्योंकि साहित्य एवं भाषा जितनी श्रेष्ठ एवं परिमार्जित होगी, उस भाषा की संरचना भी उतनी ही श्रेष्ठ होगी, और यह श्रेष्ठता उस भाषा के अधिकाधिक उपयोग पर निर्भर करती है। भाषा के निर्माण के लिए रचनाकार को सृजन के स्तर पर संघर्ष करना पड़ता है और प्रत्येक अधीर संघर्ष भाषा की विधि में उसके लिए कुछ नया अविष्कृत करता है। इसमें कुछ नया एवं कुछ सामर्थ्यवान और हर संघर्ष से हम इस बात की प्रतीति बढ़ी है और इस पूरी प्रक्रिया के मूल में सम्प्रेषण की समस्या काम करती है। उनका विचार है कि, "सम्प्रेषण का सवाल सिर्फ भाषा के मुहावरे और व्याकरण सम्मत प्रयोग के साथ ही नहीं जुड़ा है बल्कि घटना की ओर अनु-

भूति की संरचना के साथ भी जुड़ा है। ज्यों ही हम भाषा के मुहावरे से, भाषा की सतह से नीचे जाकर अनुभूति की संरचना और घटना की पकवान की संरचना पर ध्यान देने लगते हैं त्यों ही बात जटिल हो जाती है। हमारे अनुभव की घटना एक तरह से उलटे क्रम में होती है। घटित या परिणाम हमारे अनुभव में पहले आता है और उसका कारण बाद में, जबकि व्याकरण की दृष्टि मुख्यतया ऐतिहासिक क्रम पर रहती है।" डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव भाषिक संरचनाक्रम में वाक्यविन्यास को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि, "काव्यभाषा के गठन के विश्लेषण क्रम में वाक्यविन्यास को महत्त्वपूर्ण इकाई मानकर चलना होगा क्योंकि वाक्य की बनावट में ही दूरियों- अन्तरालों, लयात्मक संरचनाओं या विभिन्नताओं, शब्द- सम्बन्धों की विशेषताएँ निहित होगी। एक शब्द और उसके समीपी [सापेक्ष ही नहीं निरपेक्ष या असम्बद्ध भी] शब्दों का सम्बन्ध कविता की संरचना में अपनी विशिष्टता रखता है, जो वाक्य गठन के आधार पर ही समझा जा सकता है।" वस्तुतः वाक्यगठन कविता की एक सीमित क्षेत्र का ही प्रतिनिधित्व करता है साथ ही यह असंगत भी प्रतीत होता है क्योंकि रचना के निर्माण के समय रचनाकार का जोर वाक्यगठन पक्ष की ओर नहीं रहता है, वह भावों के अनुरूप शब्दों की खोज करता है न कि वाक्यों की। कविता की दृष्टि से वाक्यगठन एक पक्ष है, अर्थ उसका दूसरा पक्ष है। संरचना के निर्माण के क्रम में देखें तो वाक्य से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका शब्द एवं बिम्ब की है।

डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी का विचार है कि भाषाविहीन अनुभूति सम्भव नहीं। कृति का सारा स्वरूप भाषिक संरचना पर ही आधारित होता है। इसीलिए रचनाकार का ध्यान काव्य की भाषिक संरचना पर अधिक रहता है क्योंकि सारी संवेदना और अनुभूति संरचना की संगति पर ही निर्भर है। अतः रचनाकार एवं कवि का सारा जोर रचना या कृति में भाषिक संरचनागत संगति पर अधिक रहता है। उनका कहना है कि "होने और उसके प्रतीति के बीच जितना तनाव एवं वैविध्य है वह भाषिक संरचना के विविध अर्थस्तरों में खुलता जाता है, जहाँ

इस तनाव एवं वैविध्य के अभाव एकरूपता लाने की कोशिश है वहाँ विज्ञान के तात्त्विक अध्ययन हैं और गणित के फार्मूले हैं ----------------------
साहित्य जीवन की प्रति रचना करके उसे विस्तार देकर समग्रता में ग्रहण करता है, विज्ञान और दर्शन में भाषा का प्रयोग निष्कर्षात्मक है, साहित्य की भाषिक संरचना प्रस्तारपरक है, अर्थ के विभिन्न परतों को खोलती हुई और उनकी टकराहट से अर्थ की अन्तहीन सर्जना करती है। इसीलिए साहित्य के अभिधात्मक स्तर पर दिखते अन्तर्विरोधी भाषिक कथन एक दूसरे को सचमुच नहीं काटते।[1] स्पष्ट है कि डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी साहित्य की भाषिक संरचना और वैज्ञानिक या दार्शनिक संरचना के तुलनात्मक सन्दर्भ में इसे देखते हैं। उनका विचार है कि भाषिक अभिधात्मक विरोधाभास काव्य संरचना का एक प्रमुख तत्त्व है जो दोनों संरचनाओं में अलगाव करता है। भाषिक संरचना की यथार्थ के धरातल पर प्रतीत तनाव और वैविध्य की द्वन्द्वात्मकता साहित्यिक संरचना को निरन्तर समर्थ एवं सम्भावनापूर्ण बनाती रहती है और सर्जक अपनी पूरी वैचारिकता एवं एकाग्रता के साथ संरचना के स्तर पर गतिशील रहता है। सामान्य भाषा के निरन्तर बदलते अर्थ साहित्य की भाषिक संरचना से सब टकराकर उसे विकासशील बनाते रहते हैं और ऐसे ही किसी रचना में एक सुनिश्चित अर्थ निक्षिप्त करने के बजाय वहाँ अर्थ की विकासशील प्रक्रिया चलती रहती है जिसके द्वारा शब्द में अर्थों के विविध रूप आते रहते हैं। इसीलिए किसी भी रचनाकार की आरम्भिक भाषा प्रयोग की दृष्टि से अपने में उपकरणात्मकता अधिक होती है। इस सन्दर्भ में वे भाषिक संरचना को काव्य में परिणत हुआ मानते हैं। उनका मानना है कि, "भाषिक संरचना का अपना क्रम ही आगे चलकर कविता ब हो जाता है। पहले कहा गया है कि अनुभव होने का अनुभव होना अनुभूति है और भाषा भी।"[2] स्पष्ट है कि डॉ० चतुर्वेदी यहाँ अनुभूति और भाषा में अन्तर नहीं करते वे भाषा को कवि या रचनाकार के अनुभव

1- डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी : सर्जन और भाषिक संरचना, पृ०- 13।
2- वही, पृ०- 23।

को अधिकतम व्यक्त करने वाला उपकरण मानते हैं जहाँ पाठक के स्तर पर दोनों का नाममात्र का विभेद रह जाता है अन्यथा पाठक अनुभूति के रूप में भाषा को पढ़ता है लेकिन कवि की अनुभूति ही ग्रहण करता है। उनका कहना है कि, "साहित्य का परिपाक फिर देशकाल की अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया में बदलता ही चलता है। भाषिक संरचना में विवृत साहित्यिक कृति मनुष्य के अपने व्यक्तित्व की ही तरह काल के आयाम में जीवन्त और गतिशील रहती है। यह वैशिष्ट्य सिर्फ साहित्य की ही उपलब्धि है, विचार एवं अनुभव के संश्लेष के कारण और काल के आयाम में जुड़े होने के कारण।"[1] वस्तुत: किसी शब्द का कोई एक निश्चित अर्थ नहीं होता और न शब्द अपनी प्रकृति से काव्यात्मक होता है और न कोई भाषा बल्कि काव्य-प्रक्रिया में एक विशेष प्रकार की संरचना के द्वारा ही वह वांछित अर्थ को प्राप्त कर पाता है।संरचना ही उसे अर्थ प्रदान करती है। भाषा में यह बहु युग्मार्थता और अनेक स्तरीयता संरचनागत ~~संरचना~~ "सम्बन्ध-भावना" या संसर्ग के कारण बनती है। अनुभव केन्द्रित संरचना में भाषा के विविध स्तरों का प्रयोग होता है। इसमें भाषा की संकेतात्मकता, चित्रात्मकता, सन्दर्भता आदि मुख्य होते हैं।

डॉ० नामवर सिंह "कविता के नये प्रतिमान" में कृति एवं रचना की समीक्षा के लिए उसकी भाषिक संरचना के महत्त्व को सभी सामयिक विद्वानों द्वारा स्वीकार्य बतलाते हुए इसकी सहायता से कृति के मूल्यांकन के महत्त्व को सर्वप्रथम निराला द्वारा स्वीकृत बतलाते हैं, जहाँ निराला ने "जूही की कली" का हवाला देते हुए लिखा था- "यह ऐसी रचना कि सुक्तरूप इसका एक अंश उद्धृत किया जा सके। मेरी छोटी रचनाएँ {लिरिक्स} और गीत {सांग्स} प्राय: ऐसी ही हैं। इनकी कला इनके सम्पूर्ण में है, खण्ड में नहीं -----------ऐसी कविताओं का खण्डोद्धरण आलोचक का अधूरा सौन्दर्य दर्शन और कवि पर की गयी कृपारूपिणी अकृपा है।"[2] और आगे चलकर निराला आवश्यक सिद्धान्त

1- डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी : सर्जन और भाषिक संरचना, पृ0- 28.
2- डॉ० नामवर सिंह : कविता के नये प्रतिमान, पृ0- 126.

की स्थापना करते हुए प्रतीत होते हैं। डॉ० नामवर सिंह का विचार है कि, "कविता की संरचना जहाँ स्फटिक या "क्रिस्टल" के रूप में होती है वहाँ संरचना के तार्किक और अतार्किक सिद्धान्तों का विभाजन चरमराकर टूट जाता है। यहाँ बुद्धि एवं हृदय का विभाजन नहीं है बल्कि वह मानसिक अन्तर्ग्रन्थन है जिसमें सच्ची कविता कब एक अविभाज्य ठोस बिम्ब के रूप में निर्मित होती है। इसी अर्थ में अज्ञेय ने कहा है कि, "मैं मानता हूँ कि भावना प्रधान कविता छोटी ही हो सकती है, नहीं तो भावों का "पैराफ्रेज" होने लगता है। "जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति - सी छायी" वह एक आँसू बनकर आये जहाँ तक तो ठीक है किन्तु जब वह बरसात की झड़ी सी बरसने लगती है तब वह शायद वही पीड़ा नहीं रहती और घनीभूत तो भला रह ही कैसे सकती है।

स्पष्ट है कि भारतीय आलोचक कविता की संरचना की उपयोगिता मुख्यत उसकी सम्प्रेषणीता में ही देखते हैं। साथ ही कविता की संरचना के बुनियादी रूप में विविध प्रयोग के भी पक्षपाती हैं जिससे सन्दर्भों की जटिलता में भी उसकी गतिशीलता बनी रहे।

निष्कर्ष :- आधुनिक कविता में समीक्षा के उद्देश्य से संरचना के उपयोग करने का सुझाव सर्वप्रथम आई० ए० रिचर्ड्स की पुस्तक "दी मीनिंग ऑफ मीनिंग" में मिलता है। उनकी यह सोच बहुत कुछ उस समय "भाषाविज्ञान" के क्षेत्र में हो रहे महत्वपूर्ण परिवर्तनों एवं नये शाखाओं के कारण विकसित हुई। उस समय रूपवाद, संरचनावाद, शब्दविज्ञान आदि शाखाऐं नयी- नयी विकसित हुई जिनका प्रभाव रिचर्ड्स के आलोचना सिद्धान्त पर पड़ा और उसके बाद नयी समीक्षा के आलोचकों द्वारा काव्यभाषा की संरचना की दृष्टि से कविता को देखने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। आज काव्यभाषा संरचना नयी कविता के अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण समीक्षा पद्धति हो गई है और प्रायः समीक्षकों द्वारा इसका उपयोग हो रहा है।

भारतीय काव्यशास्त्र में कविता को समझने और देखने की शुरूआत ही भाषिक संरचना की दृष्टि से हुई। आचार्य कुन्तक ने अपने "वक्रोक्ति सिद्धान्त" में कविता के व्याकरणिक संरचना को ग्रहण कर कविता को विश्लेषित किया

बाद में आनन्दवर्धन ने इसको और अधिक परिष्कृत करते हुए ध्वनि सिद्धान्त का विकास किया जहाँ शब्द के प्रतीयमान अर्थ की महत्ता पर बल दिया गया। इस तरह काव्यभाषा की दृष्टि से भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षा पद्धति को तुलनात्मक सन्दर्भ में देखें तो स्पष्ट होगा कि पाश्चात्य समीक्षा पद्धति आई० ए० रिचर्ड्स के पहले तक कविता को समझने की दृष्टि से कविता के संवेदनात्मक एवं अनुभूतिपरक भावपक्ष का ही सहारा लेती थी जबकि भारतीय आचार्य प्रारम्भ से ही कविता के व्याकरणिक ढाँचे की महत्ता स्वीकार करके चले हैं। भाषिक संरचना की दृष्टि से कविता के मूल्यांकन पद्धति को विकसित करने में रिचर्ड्स, वारेन, ब्रुक्स आदि पाश्चात्य विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान है। आज भाषिक संरचना की यह विकासमान प्रक्रिया "डी० कान्स-ट्रक्शन" तक पहुँच गयी है। जहाँ तक भारतीय समीक्षकों का प्रश्न है, पहले के आचार्यों की अपनी एक मौलिक विचारधारा थी, लेकिन आज के हिन्दी आलोचक पाश्चात्य समीक्षा पद्धतियों का ही अनुकरण अपने सिद्धान्तों में करते दिखते हैं। जहाँ तक नवीनता का प्रश्न है, वह हिन्दी में पाश्चात्य एवं प्राचीन भारतीय काव्य सिद्धान्तों के समन्वय में ही दिखती है। इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की समीक्षा पद्धति में मुख्य रूप से देखा जा सकता है।

स्पष्ट है कि कविता की समस्त अर्थ सम्भावनाएँ उसकी भाषिक संरचना में ही निहित होती है। भाषिक संरचना विभिन्न समानार्थी एवं विरुद्ध तत्त्वों का संयोजित रूप होती है। भाषिक संरचना के ये विरुद्ध एवं समानार्थी अंग ही कविता को विविध अर्थ देने का काम करते हैं क्योंकि कवि अपनी कविता में अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषिक संरचना के विभिन्न उपादानों

को ही माध्यम रूप में ग्रहण करता है। काव्य संरचना कृति के मूल्यांकन की दृष्टि से अन्य रूपों की अपेक्षा अधिक जटिल होती है और यह जटिलता कविता में कई स्तरों पर दिखाई पड़ती है। यथा शब्दचयन, पदविन्यास आदि की तथा बिम्बविधान, थीम, कथानक आदि की भी। यह जटिलता रचनाकार के अनुभवों की संगति में और भी अधिक जटिल हो जाती है। संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक, मिथक जैसे भाषिक संरचना के उपादानों को काव्यभाषा के अध्ययन का आधार बनाने से तात्पर्य कविता की अर्थरूढ़ एवं प्रयोग के स्तर पर रूढ़ परम्परा को बाधित कर भावानुभूति एवं कविता की बनावट को एक रूढ़मुक्त आकार देना है, साथ ही काव्यभाषा की बाह्य संघटना में क्रिया, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि का उचित एवं सही प्रयोग, छन्द एवं लय के उचित सामंजस्यपूर्ण प्रयोग के साथ उचित सतर्कता भी अपेक्षित रहती है क्योंकि जहाँ इनका उचित सामंजस्य रचना को उत्कृष्टता प्रदान करते हैं, वहीं ब असंतुलन रचना को उपहास के योग्य बनाती है। इनका अधिकतम सामंजस्यपूर्ण प्रयोग रचवा रचनाकार की क्षमता का भी परिचायक होता है।

§3§ व्याकरणिक तत्व :-

2- वाक्य -

काव्यभाषा के गठन के सन्दर्भ में एवं कृति के विश्लेषण क्रम में वाक्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। वाक्य काव्य की भाषिक संरचना के निर्माण में प्रमुख भूमिका अदा करता है, क्योंकि वाक्यों के बनावट के द्वारा ही रचनाकार दूरियों, अंतरालों, लयात्मक रूपों एवं शाब्दिक संगति को नियंत्रित करता है। इस सन्दर्भ में देमेत्रियस अरस्तू के मत को उद्धृत करते हुए कहता है कि, "उपवाक्यों एवं वाक्यांशों के संयोग से जो चीज अस्तित्व में आती है उसे हम वाक्य कहते हैं। औदुम्बरायण के अनुसार भाषा का मूल आधार वाक्य चित्रों का क्षीरसागर में नित्यरूप से रहना मात्र है। मीमांसक कहते हैं कि, अर्थैकत्वादेकं वाक्यं साकाङ्क्षं चेद्विभागे स्यात्" अर्थात् वाक्य ही पूर्णभाव को प्रकट करने में समर्थ हैं। प्रसिद्ध नैयायिक जगदीश के अनुसार वाक्यभाव में गृहीत सार्थक शब्द के ज्ञान से ही शब्द बोध उत्पन्न होता है, केवल शब्द को जानने मात्र से नहीं -

"वाक्यभावमवाप्तस्य सार्थकस्यावबोधतः ।
सम्पद्यते शब्दबोधो न तन्मात्रस्य बोधतः।।"[1]

व्याकरण के अनुसार वाक्य का जो स्वरूप होता है उसमें छह बातें आवश्यक समझी जाती हैं -

1- सार्थकता,
2- योग्यता,
3- आकांक्षा,
4- सन्निधि,
5- अन्वय,
6- क्रम ।

इन्हीं छहों के संयोग से ही वाक्य का निर्माण होता है।

1- आचार्य जगदीश : शब्दशक्तिप्रकाशिका कारिका - 12, पृ0- 63.

काव्यभाषा में वाक्य का अर्थविस्तार के निमित्त कवि लाक्षणिक प्रयोग करता है। भारतीय काव्यशास्त्र में आचार्य कुन्तक काव्य में वाक्य के महत्व को निर्दिष्ट किया है। उनके अनुसार वाक्य वक्रता का दूसरा नाम वस्तु है। वे इसके सम्बन्ध में कहते हैं कि -

> वाक्यस्य वक्रभावोऽन्यो भिद्यते यः सहस्रधा ।
> यत्रालंकार वर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भविष्यति ।।[1]

इस प्रकार वे समस्त अलंकार प्रपंच को वाक्यवक्रता में समाहित कर लेते हैं।उनका मानना है कि वाक्य एवं वाक्य की वक्रता सहस्रों प्रकार की हो सकती है।वक्रता को परिभाषित करते हुए आचार्य कुन्तक कहते हैं कि -

> उदारस्वपरिस्पंद सुन्दरत्वेन वर्णनम् ।
> वस्तुनोवक्रशब्दैक गोचरत्वेन वक्रता ।।[2]

अर्थात् वस्तु का उत्कर्ष युक्त स्वभाव से सुन्दर रूप में केवल शब्दों द्वारा वर्णन अर्थ अथवा वाक्य की वक्रता कहलाती है। अर्थात् वाक्य का इस प्रकार प्रयोग कविता में किया जाय जो हृदय रंजक हो तथा उसके प्रयोग से ही एक नये अर्थ की सृष्टि हो वहाँ वाक्यवक्रता होगी।

वाक्य यद्यपि शब्दों द्वारा निर्मित होता है लेकिन वह शब्दों केवल का अर्थ न देकर एक पृथक अर्थ {जो उसका अपना होता है} देता है। पाश्चात्य आधुनिक विचारक जॉन हास्पर्स का मानना है कि वाक्यों के निर्माण में शर्त यह है कि वाक्य सार्थक शब्दों से बना हो, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वह निरर्थक आवाजों से बना हो, अर्थात् वाक्यों के निर्माण में सार्थक शब्द महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वह कहता है कि, "शब्दों का साधारणतः अकेले

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवितम्, 3/20

2- वही, 3/1.

प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि वाक्यों में और उनसे भी अधिक विस्तृत ऐसे सन्दर्भों में किया जाता है जिनसे वाक्य को समझने वाले व्यक्ति का व्यवहार काफी अधिक समान होता है।[1] अर्थात् वाक्यों के साथ प्रयुक्त होने पर शब्द के सन्दर्भ का ज्ञान होता है और तभी उसका अर्थ भी निकाला जा सकता है। डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव काव्य की भाषिक संरचना में वाक्य को सबसे महत्वपूर्ण तत्व स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि, "काव्यभाषा के गठन के विश्लेषण क्रम में "वाक्यविन्यास" को सबसे महत्वपूर्ण इकाई मानकर चलना होगा। क्योंकि वाक्य की बनावट में ही दूरियाँ- अन्तरालों, लयात्मक संरचनाओं, विभिन्नताओं तथा शब्द सम्बन्धों की विशेषताएँ निहित होंगी। एक शब्द और उसके समीपी (सापेक्ष ही नहीं निरपेक्ष या असम्बद्ध भी) शब्दों का सम्बन्ध कविता की संरचना में अपनी जो विशिष्टता रखता है उसे वाक्य-गठन के ही आधार पर समझा जा सकता है।"[2] वाक्यों की उपयोगिता एवं उसके प्रयोगविधि के अनुसार विद्वानों ने उसका वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। आचार्य कुन्तक ने इसके प्रयोग विधि के अनुसार दो भेद किए हैं - (1) सहजा, (2) आहार्या ।

"सैषा सहजाहार्य भेदभिन्नना वर्णनीयस्य वस्तुनो द्विप्रकारस्य वक्रता।"

सहज के अन्तर्गत वस्तु के स्वभाव का स्वाभाविक रूप से सुन्दर वर्णन आता है। सहज या स्वाभाविक रूप से सुन्दर वस्तु का यथारूप सुन्दर वर्णन, इसमें किसी बाह्य उपादानों का सहारा नहीं लिया जाता जबकि आहार्य व्युत्पत्ति एवं शिक्षाभ्यास से अर्जित होती है अर्थात् इसे काव्य में प्रयुक्त करने के लिए अभ्यास किया जाता है। विद्वानों ने इसे अर्थालंकार भी कहा है। इस

1- जॉन हॉस्पर्स : एन इण्ट्रोडक्शन टू फिलासफिकल एनालिसिस : अनु० गोवर्धन भट्ट, पृ०- 128.

2- डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव : कविकर्म और काव्यभाषा, पृ०- 4.

प्रकार आचार्य कुन्तक काव्यभाषा का सारा चमत्कार वाक्य रचना का चमत्कार मानते हैं, चूँकि क्रिया से ही वाक्य बनता है, इसलिए आचार्य राजशेखर ने क्रिया के आधार पर वाक्य का दस भेद - एकाख्यातम्, अनेकाख्यातम्, आवृत्ताख्यातम्, एकाभिधेयख्यातम्, परिणताख्यातम्, अनुवृत्ताख्यातम्, अध्याहृताख्यातम्, कृदभिहिताख्यातम्, अनपेक्षिताख्यातमिति[1] किया है ।

डॉ० भोलानाथ तिवारी भाषाविज्ञान की दृष्टि से वाक्य के तीन भेद माने हैं -

1- ऐतिहासिक,
2- संवादात्मक,
3- आलंकारिक ।

{1} ऐतिहासिक वाक्य :- ऐतिहासिक वाक्य न तो बहुत अधिक सम्बद्ध होता है और न एकदम असम्बद्ध ही, वरन् उसकी स्थिति दोनों की मध्यवर्ती होती है जिससे वह बहुत अधिक सम्बद्ध होने के कारण कृत्रिम न लगने लगे और सहज विश्वसनीयता से दूर न जा पड़े।

{2} संवादात्मक वाक्य :- संवादात्मक वाक्य वह है जो ऐतिहासिक वाक्य से भी अधिक असम्बद्ध और सरल हो और यह वस्तुतः वाक्य जैसा लगता भी नहीं। यहाँ असम्बद्ध शैली की भाँति उपवाक्यों को एक के ऊपर एक यों ही लाद दिया गया है और अन्त तक पहुँचते- पहुँचते हम एक प्रकार से यह भूल ही जाते हैं कि यह वाक्य था। संवाद के वाक्यों को सम्बद्ध या असम्बद्ध शैली का मध्यवर्ती होना चाहिए।

1- आचार्य राजशेखर : काव्यमीमांसा, अध्याय- 6, पृ०- 57.

§3§ अलंकारिक वाक्य :-

---------------------- अलंकारिक वाक्य बहुत ही सुसम्बद्ध और व्यवस्थित होता है। इसके लिए यह अपेक्षा रहती है कि भाषा सुगठित एवं ऐसी भंगिमा लिए हुए हो जो वाक्य की लय से मेल खाए।

इस प्रकार काव्यभाषा में वाक्य के महत्त्व पर विद्वानों ने बल दिया है। वाक्य ही शब्दों के अर्थ विस्तार एवं सन्दर्भ को उद्घाटित करता है तथा वाक्य में शब्द के महत्त्व को प्रतिपादित करता है बिना वाक्य के शब्द मात्र ध्वनि है, इसकी सार्थकता तभी है जब वह वाक्य में प्रयुक्त हो। इस प्रकार वाक्य काव्य-भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है, इसी के द्वारा रचनाकार कृति में अर्थ एवं सन्दर्भों की योजना करता है।

3- संज्ञा -

संज्ञाएँ काव्यभाषा के प्रयोग में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं, वे काव्यभाषा में वस्तुओं का स्पष्ट तरीके से निर्देश करने के लिए प्रयुक्त होती हैं। संज्ञाओं का कोई तार्किक स्वरूप या आधार नहीं होता, वे हमारे भावों से शब्द के रूप में निकलकर एक आकार ग्रहण करती हैं और बिना संज्ञा का उपयोग किए अथवा सहारा लिए रचनाकार अपनी अनुभूतियों, अपनी संवेदनाओं को आकार नहीं दे सकता। काव्य में अर्थ की दृष्टि से व्यक्तिवाची और नामवाची संज्ञाओं का विशेष महत्त्व है, क्योंकि सभी स्थानों, जातियों आदि के प्रति व्यक्ति एवं जाति की कुछ न कुछ संवेदनाएँ एवं उस नाम के पीछे अभिप्रेत मन्तव्य अवश्य ही छिपे रहते हैं जो काव्य में प्रयुक्त होकर एक नवीन अर्थ की सृष्टि करते हैं, साथ ही वे विशेष धर्म- गुणों का प्रतीक भी बनाती हैं ।

1- अभिव्यक्तिविज्ञान §अनुवाद§ : डॉ० भोलानाथ तिवारी, डॉ० कृष्णदत्त शर्मा, पृ०- 35.

आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति सम्प्रदाय के अन्तर्गत भाषा के व्याकरणिक स्वरूप का काव्य की दृष्टि से उपयोगिता एवं महत्त्व का प्रतिपादन किया है। इस दृष्टि से व्याकरण के "संज्ञापद" पर विचार उन्होंने "पदपूर्वार्धवक्रता" के अन्तर्गत किया है। इसके अन्तर्गत् दो भेद - रूढ़िवैचित्र्यवक्रता और पर्याय-वक्रता को माना है और उसके द्वारा "संज्ञा" के वैचित्र्य को निर्दिष्ट किया है।

§1§ रूढ़िवैचित्र्यवक्रता :- आचार्य कुन्तक इसको परिभाषित करते हुए कहते हैं-

> यत्र रूढ़ेरसंभाव्यधर्माध्यारोपगर्भता ।
> सद्धर्मातिशयारोपगर्भत्वं वा प्रतीयते ।।
> लोकोत्तरतिरस्कारश्लाघ्योत्कर्षाभिधित्सया ।
> वाच्यस्य सोच्यतेकापि रूढ़िवैचित्र्यवक्रता ।।[1]

अर्थात् लोकोत्तर तिरस्कार अथवा प्रशंसा अथवा उत्कर्ष बताने की इच्छा से रूढ़ि के द्वारा असम्भव अध्यारोप के अभिप्राय के भाव, पदार्थ के धर्म आदि के अतिशय को प्रतिपादित करने के अभिप्राय का भाव प्रतीत होता है, वह कोई अलौकिक रूढ़ि शब्द के अलौकिक वैचित्र्य का भाव रूढ़वक्रता होता है। म यह वक्रता वस्तुतः संज्ञा शब्दों पर आश्रित रहती है। इसमें निरन्तर प्रयुक्त संज्ञाएँ जब अर्थ की दृष्टि से रूढ़ हो जाती हैं, ऐसी संज्ञाओं को पुनः अर्थवान् बनाने के लिए कवि रूढ़िवैचित्र्य वक्रता का उपयोग करता है। यह रूढ़वैचित्र्यवक्रता मुख्यतः दो प्रकार की होती है -

> §क§ "यत्र रूढ़िशब्दस्यैव प्रस्ताव समुचितत्वेन वाच्यप्रसिद्ध-धर्मान्तराध्यारोपगर्भत्वेन निबन्धः स प्रथमः प्रकारः[2] ।

अर्थात् जहाँ रूढ़ि शब्द का ही प्रकरण के अनुरूप, वाच्यरूप से प्रसिद्ध धर्म के अध्यारोप को लेकर प्रयोग किया जाय ।

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, 2/ 8-9.
2- वही, पृ०- 64.

[illegible] ढितायः यत्र रूढ़ि शब्दस्य वाच्यप्रसिद्धधर्मस्य ।

लोकोत्तरातिशयाध्यारोपं गर्भीकृत्योपनिबन्धः ।।"[1]

जहाँ रूढ़ संज्ञा शब्द वाच्य रूप से प्रसिद्ध धर्म में लोकोत्तर अतिशय का अध्यारोप गर्भ में रखकर प्रयुक्त किया जाता है।

(2) पर्यायवक्रता :- इसमें अनेक शब्दों में से सन्दर्भ एवं अर्थ के अनुकूल एक शब्द का प्रयोग होता है। आचार्य कुन्तक कहते हैं -

"पर्यायवक्रत्वं" नाम प्रकारान्तरं पदपूर्वार्द्धवक्रतायाः ।

यत्रानेकशब्दाऽभिधेयत्वे वस्तुनः किमपि पर्यायपदं प्रस्तुतानुगुणत्वेन प्रयुज्यते।"[2]

इसमें कवि पर्यायवाची शब्दों के कुशल प्रयोग द्वारा चमत्कार उत्पन्न करता है। ये समानार्थी शब्द अधिकतर गुण अथवा रूप सादृश्य बोधक शब्द होते हैं ।

आचार्य आनन्दवर्धन ने ध्वनि सिद्धान्त में इसी के आधार पर ध्वनि का एक भेद अर्थान्तर संक्रमित ध्वनि माना है जो अविवक्षितवाच्य ध्वनि का उपभेद है।इसमें कवि अपनी प्रतिभा के बल से रूढ़ अथवा परम्परागत अर्थ पर किसी सुन्दर असम्भाव्य (असम्भव) अर्थ का अध्यारोप करता है।

किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान, गुण, भाव आदि के नाम को संज्ञा कहते हैं। व्याकरणिक दृष्टि से संज्ञा के मुख्यतः पाँच भेद माने गए हैं -

(1) व्यक्तिवाचक संज्ञा :- किसी विशेष व्यक्ति या स्थान का ज्ञान कराने वाली संज्ञा को व्यक्तिवाचक संज्ञा कहते हैं।

(2) जातिवाचक संज्ञा :- किसी सम्पूर्ण जाति का बोध कराने वाली संज्ञा जातिवाचक संज्ञा कहलाती है। जैसे :- नदी, पहाड़, गाय, मनुष्य, फल इत्यादि।

(3) भाववाचक संज्ञा :- जिस संज्ञा से व्यक्ति या वस्तु के गुण या धर्म का बोध हो, उसे भाववाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे :- दया, माया, ममता, कड़वापन, मिठास इत्यादि।

(4) समूहवाचक संज्ञा :- जिस संज्ञा से वस्तु अथवा व्यक्ति के समूह का बोध हो उसे समूहवाचक संज्ञा कहते हैं। जैसे :- सेना, सभा, झुण्ड इत्यादि।

(5) द्रव्यवाचक संज्ञा :- द्रव्यवाचक संज्ञा उसे कहते हैं जिससे नापी- तौली जाने वाली किसी वस्तु या पदार्थ का ज्ञान हो। जैसे :- सोना, चाँदी, लोहा, तेल, दूध आदि

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, पृ0- 64.

2- वही, पृ0 - 65.

4- सर्वनाम -

सर्वनाम वाक्यों में संज्ञा शब्द की विशेषता बतलाने के लिए प्रयुक्त होता है। आचार्य कुन्तक अपने वक्रोक्ति सम्प्रदाय में संवृतिवक्रता के अन्तर्गत "सर्वनाम" के काव्य प्रयोजनगत वैशिष्ट्य को स्वीकार किया है। उनका कहना है कि रचना में जहाँ विचित्रता प्रतिपादन की इच्छा से अपूर्वता के प्रतिपादक सर्वनाम आदि के द्वारा पदार्थ को छिपाया जाता है उसे संवृत्तिवक्रता कहते हैं। इसमें वस्तु के स्वरूप की संवृत्ति अर्थात् छिपाने की प्रधानता से ही चमत्कार आता है और वस्तु के छिपाने का यह कार्य सर्वनाम आदि के द्वारा होता है अर्थात् कवि प्रस्तुत के अतिशयोक्ति से बचने के लिए रचनाकार सर्वनाम द्वारा वर्ण्य का छिपाव करता है। अतः यहाँ भी सर्वनाम वर्ण्य उस संज्ञापद के संसूचनार्थ प्रकट होता है।

यत्र संव्रियते वस्तु वैचित्र्यस्य विवक्षया ।
सर्वनामादिभिः कैश्चित् सोक्ता संवृतिवक्रता[1] ।।

उन्होंने सर्वनाम के द्वारा उत्पन्न काव्य उत्कर्ष के कई स्तर माने हैं। आचार्य कुन्तक कहते हैं कि इसके प्रयोग के ढंग से कई भेद हो सकते हैं लेकिन उनमें से वे छह भेद प्रमुख माने हैं -

§1§ जहाँ किसी कही जा सकने वाली उत्कर्ष युक्त वस्तु को साक्षात् कथन के कारण इयन्ता में आछन्न होकर सीमित सी न हो जाय[2]। अर्थात् जब किसी सुन्दर वस्तु का वर्णन साक्षात् न कर या उसका प्रत्यक्ष कथन न कर §क्योंकि उसके साक्षात् कथन में से उसका उत्कर्ष सीमित हो जाएगा§ सर्वनाम आदि के द्वारा उसका गोपन कर दे तो उसमें अधिक सौन्दर्याधान होगा।

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, 2/16.
2- वह वही, पृ० - 228.

§2§ जहाँ अपने स्वभाव के चरमोत्कर्ष के लिए अनिवर्वनीय वस्तु को सर्वनाम द्वारा प्रतिपादित होने की बात करते हैं[1]। अर्थात् जब प्रतिपाद्य विषय स्वभाव सौन्दर्य की चरमसीमा पर पहुँच जाए और उसका वर्णन शब्दों द्वारा असम्भव हो जाए।

§3§ "जब अतिशय कोमल पदार्थ को, कार्य के उत्कर्ष को कहे बिना[2] ही केवल संवरण मात्र से सौन्दर्य की पराकाष्ठा को पहुँचा दिया जाता है।"

§4§ "इस कोटि में किसी स्वानुभवैकगम्य वस्तु को[3] वाणी का अविषय सिद्ध करने के लिए सर्वनाम का कवि सहारा लेता है।" अर्थात् जब कवि अपने अनुभवगम्य वस्तु को वाणी द्वारा अनिवर्वनीय सिद्ध करने के लिए संवरण करे तो यह भेद होता है।

§5§ जब कवि द्वारा अन्य के अनुभवसंवेद्य तथ्य या वस्तु का वर्णन करना सम्भव नहीं है, इसकी सिद्धि के लिए सर्वनामादि के द्वारा इसका गोपन करें[4]

§6§ स्वभावतः अथवा कवि की विवक्षा से किसी दोष से युक्त वस्तु का प्रतिपादन किया जाय[5]। अर्थात् जब कोई पदार्थ स्वभावतः या कवि के वर्णन करने की इच्छा से किसी दोष से युक्त होने के कारण छिपाया जाय या संवृत्ति किया जाय और उसे अकथ्य किया जाय।

आलोचकों का मानना है कि कविता में सर्वनामों का उत्कृष्ट प्रयोग कवि की क्षमता एवं प्रतिभा पर निर्भर करता है। सर्वनामों के प्रयोग के आधार पर पं० कामता प्रसाद गुरु ने छह भेद किया है -

1-	पुरुषवाचक सर्वनाम	=	मैं, तू, आप
2-	निजवाचक सर्वनाम	=	आप
3-	निश्चयवाचक सर्वनाम	=	यह, वह, सो
4-	सम्बन्धवाचक सर्वनाम	=	कहेस, अक्ष जो
5-	प्रश्नवाचक सर्वनाम	=	कौन, क्या
6-	अनिश्चयवाचक सर्वनाम	=	कोई, कुछ[6]

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, पृ०- 229। 2- वही, पृ०- 230।
3- वही, पृ०- 230। 4- वही, पृ०- 231। 5- वही, पृ०- 231।
6- हिन्दी व्याकरण : पं० कामताप्रसाद गुरु, पृ०- 74।

5- क्रिया -

कविता में कवि क्रिया का भी प्रयोग भावों को उत्कर्ष एवं अर्थ की समग्रता के लिए करता है। आचार्य कुन्तक कहते हैं कि जब वक्रता क्रिया के वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग पर आश्रित रहती है तब "क्रियावैचित्र्यवक्रता" की स्थिति होती है। आचार्य कुन्तक का कहना है कि धातु की वक्रता का मूल क्रिया की विचित्रता ही है और इसी के सन्दर्भ में उन्होंने क्रिया के प्रथम प्रकार की चर्चा की है। वे वृत्ति में कहते हैं, "तस्य च {अर्थात् धातुरूपस्य पूर्वभागस्य च} क्रिया वैचित्र्यनिबन्धनमेववक्रत्वं विद्यते। तस्मात् क्रियावैचित्र्यस्यैव कीदृशाः क्रियन्तश्च प्रकाराः सम्भवन्तीति तत्स्वरूपनिरूपणार्थमाह।"[1] आचार्य कुन्तक के अनुसार क्रिया का पहला वैचित्र्यपूर्ण प्रयोग "कर्ता का अत्यधिक अंतरंग होना है।" - "कर्तुरत्यन्तरङ्गत्वम्" {व0 जी0 2/24} आशय यह है कि कवि काव्य में कर्ता के उस क्रियारूप को प्रस्तुत करके जिस सौन्दर्य की सृष्टि करता है, वह किसी अन्य परिस्थिति एवं भाषिक संरचना के किसी अन्य उपादान द्वारा सम्भव नहीं।

2- आचार्य कुन्तक क्रिया का दूसरा भेद- कर्त्रन्तरविचित्रता {2/24} मानते हैं अर्थात् कर्ता की अपने सजातीय दूसरे कर्ता की अपेक्षा विचित्रता। यहाँ कर्ता की विचित्रता यही होती है कि वह अपने अन्य सजातीय कर्त्ताओं की अपेक्षा विचित्र्यस्वरूप वाली क्रिया को ही सम्पादित करता है।

3- आचार्य कुन्तक ने तीसरा भेद "सविशेषण वैचित्र्यम्" {2/24} को स्वीकार करते हैं, यहाँ वे विशेषण के द्वारा आने वाली विचित्रता की बात करते हैं। उनका विचार है कि जहाँ क्रिया- विशेषण के द्वारा ही क्रिया का सौन्दर्य सहृदय हृदयकारी हो जाता है।

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, पृ0- 245.

4- आचार्य कुन्तक "उपचारमनोज्ञता" के रूप में क्रिया का चौथा भेद करते हैं। उपचारमनोज्ञता से कुन्तक का तात्पर्य उपचार के द्वारा काव्य में उत्पन्न होने वाली मनोज्ञता से है। उपचार से यहाँ तात्पर्य सादृश्य आदि सम्बन्ध का आश्रय ग्रहण कर दूसरे धर्म का आरोप कर लायी गयी रमणीयता से है।

5- आचार्य कुन्तक पाँचवा भेद - "कर्मादिसंवृत्ति" [2/25] को मानते हैं। इसमें कविकर्म आदि कारकों के संवरण पर जोर देकर अर्थ की व्यंजना कराता है अर्थात् जहाँ पर वर्णमान पदार्थ के औचित्य के अनुरूप उसके लोकोत्तर उत्कर्ष की प्रतीति कराने के लिए कर्म आदि को सर्वनामादि के द्वारा छिपाकर क्रिया का प्रतिपादन किया जाता है।

क्रिया के सम्बन्ध में मार्जोरी बाउल्टन का कथना है कि, "प्रौढ़ और महान कवि विशेषण की अपेक्षा क्रियापद से ही प्रधानतया अपने काव्य में चमत्कार की सृष्टि करता है। अप्रौढ़ कवि विशेषणों से ही सारा कार्य लेता है।"[1] स्पष्ट है कि इन्होंने विशेषणों की अपेक्षा क्रियापदों को काव्यभाषा के लिए अधिक महत्वपूर्ण माना है। साथ ही क्रियापदों के प्रयोग से कवि के भाषिक सामर्थ्य एवं शक्ति का भी परिचय मिलता है। इसीलिए पाश्चात्य आलोचक डाइडन ने उन रचनाकारों की प्रशंसा की है जो अपने शब्दों का क्रम उलटते- पलटते हुए भी पंक्तियों का अन्त सदा क्रियाओं से करते हैं।

क्रियाओं के मुख्यत: दो भेद होते हैं -

[1] अकर्मक क्रिया :- जो क्रिया कर्मरहित हो, जैसे :- लड़का रोता है।

[2] सकर्मक क्रिया :- जिस क्रिया के साथ कर्म रहता है, जैसे :- मोहन रोटी खाता है।

1- मार्जोरी बाउल्टन : द एनेटमी ऑफ पोयट्री, पृ0- 155,
उद्धृत काव्यभाषा : सियाराम तिवारी

काल के अनुसार क्रियाओं के तीन भेद होते हैं -

§1§ वर्तमानकालिक क्रिया, §2§ भूतकालिक क्रिया, §3§ भविष्यकालिक क्रिया।

क्रिया वस्तुत: पाँच अर्थों में प्रयुक्त होती है -

§क§ निश्चयार्थ क्रिया :- क्रिया के जिस रूप में किसी विधान का निश्चय सूचित होता है। जैसे :- लड़का आता है।

§ख§ संभावनार्थ क्रिया :- सम्भावनार्थ क्रिया से इच्छा, अनुमान, कर्तव्य का बोध होता है, जैसे :- कदाचित् पानी बरसेगा, तुम्हारी जय हो §इच्छा§।

§ग§ सन्देहार्थ क्रिया :- इसमें किसी बात का सन्देह किया जाता है, जैसे:- लड़का आता होगा।

§घ§ आज्ञार्थ क्रिया :- आज्ञार्थी क्रिया में आज्ञा, उपदेश, निषेध आदि का बोध होता है। जैसे :- तुम जाओ, लड़का न जावे ।

§ङ.§ संकेतार्थ क्रिया :- इसमें ऐसे दो घटनाओं की असिद्धि सूचित होती है जिसमें कार्य - कारण का सम्बन्ध होता है । जैसे :- यदि मेरे पास बहुत साधन होता तो मैं चार काम करता ।

6- विशेषण -

संज्ञा एवं क्रिया की अपेक्षा विशेषण में शब्दों का रूप विन्यास तथा उनमें नवीन- अर्थ- सम्भरण की कहीं अधिक सम्भावनाएँ रहती हैं। काव्यभाषा में जब एक ही प्रकार के विशेषण लगातार प्रयुक्त होते रहते हैं तो उनकी बिम्बधर्मिता नष्ट हो जाती है, परिणामतः वे अपनी संवेदना का स्पष्ट संकेत करने में असफल होने लगते हैं। अतः समर्थ कवि ऐसे रूढ़ विशेषणों को स्वीकार न करके और उनके रूप में परिवर्तन करके अथवा उनमें नये अर्थ- संकेतों की सृष्टि कर तथा नये ढंग से कविता में प्रयोग करके अर्थों एवं संकेतों की सृष्टि करता है।

आचार्य कुन्तक ने विशेषण द्वारा काव्य में वक्रता अथवा उत्कर्ष उत्पन्न करने की बात कही है। उनका कहना है कि जब क्रिया अथवा कारक स्वरूप पदार्थ सौन्दर्य उसके विशेषण की महिमा या प्रभाव के कारण प्रस्फुटित हो तो विशेषण वक्रता होती है -

स्वमहिम्ना विधीयते येन लोकोत्तरश्रियः ।
रसस्वाभावालंकारास्तद् विधेयं विशेषणम् ।।[1]

वृत्ति में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य कुन्तक कहते हैं कि इसमें विशेषण का विवेच्य या प्रतिपाद्य विषय {प्रस्तुत- प्रसंग} के अनुकूल और रस, स्वभाव तथा अलंकार का पोषक होना चाहिए। यदि विशेषण रसादि का पोषक नहीं हुआ तो वैसा काव्य भार भारस्वरूप हो जाएगा ।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी विशेषण - विपर्यय के रूप में काव्यभाषा में विशेषण के महत्त्व की ओर संकेत किया है। विशेषणों में भी क्रियावाचक विशेषण का प्रयोग- वैचित्र्य काव्यभाषा में महत्त्वपूर्ण होता है। क्रियावाचक विशेषण

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, 2/15.

विशेष्य की क्रिया को मूर्त रूप देने में सहायक होते हैं। डॉ० सियाराम तिवारी ने अपनी पुस्तक काव्यभाषा में विशेषणों के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है -

1- रूढ़,

2- मौलिक,

3- विशेषण- विपर्यय।

भाषा-वैज्ञानिक संज्ञा को विशेषण द्वारा मर्यादित मानते हैं और वस्तुतः यही मर्यादा ही उसका अनुशासन है। डॉ० सियाराम तिवारी का कथन है कि, "विशेषणों के प्रयोग के सम्बन्ध में एक सामान्य नियम यह है कि उन विशेषणों का प्रयोग नहीं करना चाहिए जिनका अनुमान से काम चल सकता है। यथा - "सुन्दर फूल" में सुन्दर विशेषण अनावश्यक आ है क्योंकि "फूल" शब्द कहने के साथ ही उसके सुन्दर होने की कल्पना स्वतः जग जाती है। अतएव केवल उन्हीं विशेषणों का प्रयोग उचित है जो निश्चित रूप से कार्य, रुचि अथवा अर्थ को उजागर करते हैं। इसीलिए विशेषण के सन्दर्भ में दो बातों का ध्यान रखना परमावश्यक है। यथासम्भव नये विशेषणों की खोज और मितव्ययिता।"

वस्तुतः काव्यभाषा में विशेषणों का महत्त्व दो स्तरों पर दिखाई पड़ता है - प्रथम काव्यभाषा में बिम्बरचना के स्तर पर, द्वितीय उचित सम्प्रेषण के स्तर पर। स्पष्ट है कि काव्य कल्पनाश्रितता के मूल में बिम्ब है जबकि काव्य-भाषा का सम्पूर्ण वैशिष्ट्य [कार्य] उक्ति- सम्प्रेषण द्वारा ही परिचालित होता है। व्याकरणिक दृष्टि से सामान्यतया विशेषण के तीन भेद स्वीकार किए जाते हैं -

1- सार्वनामिक विशेषण,

2- गुणवाचक विशेषण,

3- संख्यावाचक विशेषण।

1- गुणवाचक विशेषण :-

गुणवाचक विशेषण के कई भेद हैं - (क) कालवाचक, (ख) स्थानवाचक, (ग) आकारवाचक, (घ) रंगवाचक, (ङ) दशावाचक, (च) गुणवाचक, (छ) सम्बन्धवाचक, (ज) विशेषलुप्त विशेषण ।

2- संख्यावाचक विशेषण :-

(क) निश्चित संख्यावाचक

(अ) गुणवाचक निश्चित संख्यावाचक विशेषण

(1) पूर्णांकबोधक गुणवाचक, निश्चित संख्यावाचक

(2) अपूर्णांकबोधक ।

(ब) क्रमवाचक,

(स) आवृत्तिमूलक,

(द) समुदायमूलक,

(य) प्रत्येकबोधक ।

(ख) अनिश्चित संख्यावाचक विशेषण,

(ग) परिमाणबोधक संख्यावाचक विशेषण ।

3- सार्वनामिक विशेषण :-

इसके दो भेद होते हैं -

(क) मूल सर्वनाम :- जो बिना किसी रूपान्तर के संज्ञा के साथ आते हैं, जैसे :- यह घर, वह लड़का, कोई नौकर, कुछ काम इत्यादि ।

(ख) यौगिक सर्वनाम :- जो मूल सर्वनाम में प्रत्यय लगने से बनते हैं और संज्ञा के साथ आते हैं। जैसे :- ऐसा आदमी, कैसा घर आदि।

7- लिंग -

कवि कविता में लिंग का भी विशिष्ट प्रयोग करके अर्थ में उत्कृष्टता लाता है। इस सम्बन्ध में आचार्य कुन्तक कहते हैं -

> भिन्नयोर्लिङ्गयोर्यस्यां सामानाधिकरण्यतः ।
> कापि शोभाभ्युदेत्येषा लिंगवैचित्र्यवक्रता[1] ।।

वस्तुतः जहाँ पर पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग के विशिष्ट प्रयोगों के कारण काव्य में रमणीयता आती है। इसे कुन्तक ने तीन प्रकार का स्वीकार किया है। उनका कहना है कि प्रथम प्रकार का -

1- लिंग वैचित्र्य वहाँ होता है जहाँ विभिन्न स्वरूप वाले लिंगों के सामानाधिकरण्य के रूप में प्रस्तुत किये जाने पर सौन्दर्य की सृष्टि हो।[2]

2- दूसरे प्रकार का लिंग वैचित्र्य वहाँ होता है जहाँ कवि किसी विशेष लिंग का प्रयोग जानबूझ कर दूसरे के स्थान पर कर दे। अर्थात् स्त्रीलिंग के स्थान पर पुल्लिंग तथा पुल्लिंग के स्थान पर स्त्रीलिंग आदि।[3]

इस प्रकार के उदाहरण छायावादी कवियों में ~~विशेष~~ विशेष रूप से मिलते हैं।

3- कविता के तीसरे प्रकार का लिंग प्रयोग वहाँ दिखाई देता है जहाँ कविजन वर्ण्यमान पदार्थ के औचित्य के अनुरूप तीनों लिंगों के सम्भव होने पर भी एक विशिष्ट लिंग का ही प्रयोग अर्थ चमत्कार के लिए करते हैं।[4]

यह लिंग की वैचित्र्यता कवि के अनुभवशक्ति पर अधिक निर्भर करता है।

वस्तुतः लिंग प्रयोग की उत्कृष्टता छायावादी कवियों में विशेषकर प्रसाद एवं पंत में अधिक दिखलाई पड़ती है। जिन्होंने अर्थ को भिन्न-भिन्न आयाम देने के लिए लिंगों को वैविध्यपूर्ण ढंग से प्रयोग में लाया है।

हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से लिंग दो प्रकार के होती हैं - (1) पुल्लिंग, (2) स्त्रीलिंग ।

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, 2/21।
2- वही, पृ0- 241।
3- वही, पृ0- 242।
4- वही, पृ0- 244।

3- कारक -

आचार्य कुन्तक कारक द्वारा अकिञ्चन काव्य में कैसे चमत्कार उत्पन्न करते हैं, इस सम्बन्ध में वक्रोक्ति सिद्धान्त पर विचार करते हुए कहते हैं -

यत्र कारक सामान्यं प्राधान्येन निबध्यते ।
परियोषमितुं कान्चिद्भंगीमणितिरम्यताम् ।।

कारकाणां विपर्यास सोक्ता कारकवक्रता ।।

अर्थात् यहाँ प्रधान की गौणता का प्रतिपादन करने से एवं {गौण में} मुख्यता का आरोप करने से किसी अपूर्व भंगिमा द्वारा कथन की रमणीयता को प्रमाणित करने के लिए कारक सामान्य का प्रधान रूप से प्रयोग किया जाता है और इस प्रकार के कारकों के परिवर्तन से युक्त कथन को कारकवक्रता कहा गया है। इसमें कारकों की विलोमता अर्थात् साधनों का विशेष परिवर्तन रहता है। इस प्रधान कारक को गौण करके अथवा गौण कारक को प्रधान करके वैचित्र्य उत्पन्न किया जाता है।

हिन्दी के आचार्य कामता प्रसाद गुरू के अनुसार संज्ञा या सर्वनाम जिस रूप से उसका सम्बन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ प्रकाशित होता है उस रूप को कारक कहते हैं। उन्होंने इसके आठ भेद मानते हैं -

1- कर्त्ता कारक {ने} क्रिया के जिस वस्तु के विषय में विधान किया जाता है, उसे सूचित करने वाले संज्ञा के रूप को कर्त्ता कारक कहते हैं।

2- कर्मकारक {को} जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है उसे सूचित करने वाले संज्ञा के रूप को कर्म कारक कहते हैं ।

3- करण कारक {से} करण कारक संज्ञा के उस को कहते हैं। जिससे क्रिया के साधन का बोध होता है ।

4- सम्प्रदान (के लिए) - जिस वस्तु के लिए कोई क्रिया की जाती है उसकी वाचक संज्ञा के रूप को सम्प्रदान कहते हैं ।

5- अपादान (से) - इसके द्वारा क्रिया के विभाग की अवधि सूचित होती है अर्थात् जब कोई वस्तु या व्यक्ति किसी से अलग होती है। जैसे - वृक्ष से पत्ते गिरते हैं ।

6- सम्बन्ध कारक (का, के, की)- संज्ञा के जिस रूप से उसकी वाच्य वस्तु का सम्बन्ध किसी दूसरी वस्तु के साथ सूचित होता है उस रूप को सम्बन्ध कारक कहते हैं । जैसे :- राजा का महल, राम की पुस्तक आदि ।

7- अधिकरण (में, पर) - संज्ञा का वह रूप जिससे क्रिया के आधार का बोध होता है अर्थात् यह कर्त्ता एवं कर्म का आधार होता है।

8- सम्बोधन कारक (हे, अरे, अहो) - संज्ञा के जिस रूप से किसी को पुकारना सूचित होता है उसे सम्बोधन कारक कहते हैं । जैसे :- हे नाथ ।

1- हिन्दी व्याकरण : आचार्य कामता प्रसाद गुरू, पृ0- 220- 221.

9- काल -

काल की काव्यविषयक उपयोगिता के सम्बन्ध में आचार्य कुन्तक कहते हैं कि -

> औचित्यान्तरतम्येन समयो रमणीयताम् ।
> याति यत्र भवत्येषा कालवैचित्र्यवक्रता ।।

जहाँ पर औचित्य का अत्यन्त अंतरंग होने के कारण समय रमणीयता को प्राप्त कर लेता है वह काल वैचित्र्यवक्रता है। वस्तुतः इसमें वर्तमान, भूत, भविष्य आदि कालों का चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रयोग किया जाता है। यहाँ वर्ण्य विषय ओचित्य का अत्यन्त अंतरंग होने के कारण अर्थात् उसके उत्कर्ष को व्यक्त करने वाला वैयाकरणों में प्रसिद्ध लट् आदि प्रत्ययों द्वारा वाच्य वर्तमान आदि काल रमणीयता को प्राप्त करता है। इसी को रचनाकार फ्लैशबैक स्वप्न आदि के रूप में अपनी रचनाओं में उपयोग करता है।

व्याकरण के अनुसार काल तीन प्रकार के का होता है -

1- वर्तमान काल

2- भूतकाल

3- भविष्यकाल ।

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, 2/ 26.

10- वचन -

आचार्य कुन्तक वक्रोक्तिजीवित में वचन के सम्बन्ध में कहते हैं कि -

कुर्वन्ति काव्यवैचित्र्यविवक्षापरतन्त्रिताः।
यत्र संख्या विपर्यासं तां संख्यावक्रतां विदुः [1] ।।

अर्थात् जहाँ पर कविजन काव्य में विचित्रता के प्रतिपादन करने की इच्छा से पराधीन होकर वचनों का परिवर्तन कर देते हैं। उसे संख्या अथवा वचनवक्रता कहते हैं। अर्थात् रचनाकार जानबूझ कर चमत्कार के निमित्त वचनों के प्रयोग में परिवर्तन कर देते हैं अर्थात् जैसे :- एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग और उसका विपरीत भी ।

आचार्य कामता प्रसाद गुरु के अनुसार संज्ञा और दूसरे विकारी शब्दों के जिस रूप से संख्या का बोध होता है उसे वचन कहते हैं। हिन्दी में दो वचन होते हैं -

(1) एकवचन,
(2) बहुवचन ।

एकवचन :- संज्ञा के जिस रूप से एक ही वस्तु का बोध होता है। उसे एक-वचन कहते हैं ।

बहुवचन :- संज्ञा के जिस रूप से अधिक वस्तुओं का बोध होता है, उसे बहुवचन कहते हैं [2] ।

1- आचार्य कुन्तक : वक्रोक्तिजीवित, पृ0- 2/ 29.
2- हिन्दी व्याकरण : आचार्य कामताप्रसाद गुरु, पृ0- 204- 205.

11- प्रत्यय -

किसी शब्द या धातु के अर्थ में परिवर्तन लाने के लिए प्रत्यय जोड़े जाते हैं। प्रत्यय प्रायः शब्दान्त में ही प्रयुक्त होते हैं। प्रारम्भ में प्रत्ययों का एक स्वतन्त्र अर्थ था किन्तु अब ऐसा नहीं है। वस्तुतः जो मूल शब्द हमें जुड़कर अर्थ की स्पष्ट प्रतीति कराये उसे प्रत्यय कहते हैं, ये शब्दों के बाद में जुड़ते हैं। प्रत्यय के दो प्रकार होते हैं -

1- कृत प्रत्यय :- क्रिया या धातु में लगने वाले प्रत्यय को कृत प्रत्यय कहते हैं और इनसे जो शब्द बनता है उसे कृदन्त कहते हैं। जैसे :- वृर + अ = वीर।

2- तद्धित प्रत्यय :- क्रिया से भिन्न संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि में लगने वाले प्रत्यय तद्धित प्रत्यय कहलाते हैं। इस प्रत्यय से जो शब्द बनता है उसे तद्धितान्त कहते हैं।

3- विदेशी प्रत्यय :- हिन्दी शब्दों के साथ कई विदेशी प्रत्ययों का भी प्रयोग हुआ है।

§1§ उर्दू- फारसी के प्रत्यय :- जैसे - आना, कार, दान, दाँ, दार, बन्द, बाज, साज आदि।

12- उपसर्ग -

उपसर्ग शब्द का निर्माण उप + सृज + क्ज् से हुआ है, जिसका अर्थ है पास छोड़ा हुआ । किसी शब्द में अर्थ का परिवर्तन लाने के लिए उपसर्ग को उस शब्द के पूर्व जोड़ा जाता है। प्रत्यय और उपसर्ग में मुख्य अन्तर यही है कि उपसर्ग शब्द के पूर्व जुड़ता है किन्तु प्रत्यय शब्द के बाद ।

1- संस्कृत के उपसर्ग :- संस्कृत के प्र आदि कुल 22 उपसर्ग होते हैं।

2- हिन्दी के उपसर्ग :- ये हिन्दी के तद्भव शब्दों के साथ जुड़ते हैं जैसे :- अजान, अनमोल, कपूत, सपूत आदि ।

3- विदेशी उपसर्ग :- विदेशी शब्दों के साथ अधिकतर विदेशी उपसर्ग प्रयुक्त होते हैं जैसे :- कमजोर, गैरहाजिर, बदचलन आदि ।

1- हिन्दी भाषा का विकास तथा वाक्य रचना : डॉ० रामकिशोर शर्मा, पृष्ठ - 92.

13- समास -

दो या दो से अधिक शब्दों का जो संयोग होता है, उसे समास कहते हैं। हिन्दी में इसके कुल छह भेद माने गए हैं -

1- अव्ययीभाव समास :- अव्ययीभाव का अर्थ है, अव्यय हो जाना। इसमें पहला अथवा दूसरा पद अव्यय होता है। संज्ञा, विशेषण तथा अव्ययों की पुनरुक्ति यदि क्रिया- विशेषण तथा अव्ययों की पुनरुक्ति के रूप में हो उसे भी अव्ययीभाव समास माना जाता है। जैसे :- निडर, रातोंरात आदि।

2- तत्पुरूष समास :- जिस समास में दूसरा पद प्रधान रहता है उसे तत्पुरूष समास कहते हैं जैसे :- राजपुरूष आदि ।

3- कर्मधारय समास :- कर्मधारय समास में एक अथवा दोनों पद विशेषण रहते हैं। उदाहरणतया - महापुरूष, चन्द्रमुख आदि ।

4- द्विगु समास :- इसमें पूर्वपद संख्यावाची होता है । जैसे :- त्रिभुवन, नवरत्न, आदि ।

5- बहुव्रीहि समास :- इस समास में न तो पूर्व पद प्रधान होता है और न उत्तरपद बल्कि अन्य पद की प्रधानता रहती है। आप, तपोधन आदि ।

6- द्विन्द्व समास :- जिस समास में दोनों पद प्रधान होते हैं उसे द्वन्द्व समास कहते हैं । जैसे :- खान- पान आदि ।

[ब] शैल्पिक तत्व

1- अलंकार :-

कविता द्वारा एक विशिष्ट अर्थ का अनुभव कराना तथा अपनी संवेदना को दूसरे की संवेदना का अंग बनाना कवि का मूल उद्देश्य होता है। कविता की भाषिक संरचना में अलंकार एक मुख्य तत्व होता है जिसका सहारा लेकर कवि कविता में सौन्दर्य रखने की कोशिश करता है। अलंकारों द्वारा रचनाकार भाषा के बाह्य एवं आन्तरिक क्षमताओं का उपयोग कर काव्यभाषा में उक्ति एवं वाक्यगठन की विविध अर्थ सम्भावनाओं को जन्म देता है। रचनाकार अलंकारों का उपयोग रचना में साधन के रूप में करता है, यदि वह इसे साध्य के रूप में ग्रहण करने का प्रयास करता है तो कृति में अनेक विसंगतियाँ उठ खड़ी होती हैं। इस प्रकार अलंकार काव्यभाषा के उत्कर्ष एवं उसके अर्थ- सामर्थ्य को बढ़ाने वाला सहायक तत्व है। मूलत: अलंकार शब्द "अलं" संज्ञापद से ही बना है। अलम् + कृ + घञ् प्रत्यय जिसका अर्थ है, "अलंक्रियते अनेन इति अलंकार:" यहाँ तृतीय विभक्ति अर्थात् अलंकरण के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है जिसकी ओर आचार्य वामन ने अलंकार की परिभाषा देते हुए संकेत किया है -

"करणव्युत्पन्ना पुनरलंकार शब्दोऽयम् उपमा उपमादिषु वर्तते"
- वामनवृत्ति, 1/1/2

अलंकार शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति है - भाव के अर्थ में यह शब्द "अलंकृति अलंकार:" के रूप में स्वीकार किया जाता है। आचार्य वामन ने इस व्युत्पत्ति की ओर भी संकेत किया है -

अलंकृतिरलंकार: अर्थात् अलंकृति ही अलंकार है।

"अलंकार" शब्द की एक तीसरी व्याख्या "अलंकरोति इति अलंकार:" के रूप में की गयी है जो समग्र शब्दार्थ वैचित्र्य के पर्याय के रूप में है[1]।

1- भारतीय काव्यशास्त्र : डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ0- 156.

इस प्रकार प्राचीन भारतीय आचार्यों ने अलंकार पर व्यापक रूप से विचार किया है। कुछ आचार्य इसे काव्य का मुख्य तत्व स्वीकार करते हैं तो कुछ आचार्य गौण। आचार्य दण्डी, जिनमें अलंकार विवेचन का प्रारम्भिक रूप मिलता है, अलंकार को काव्यभाषा का समग्र रूप और अन्य रूपों को उसके अंग के रूप में स्वीकार करते हैं। आचार्य दण्डी यद्यपि "शोभाकरान् शब्दान्" के पूर्व कोई विशेषण नहीं देते फिर भी उनके अन्य उक्तियों से स्पष्ट है कि, "काव्य से सम्बन्धित समग्र सौन्दर्य विधायक तत्व अलंकार की श्रेणी में आते हैं। साथ ही वे महाकाव्यादि के वैशिष्ट्य एवं कथ्यात्मक तत्वों एवं अभिप्राय को अलंकार में रखते हैं। यही नहीं उन्होंने नाटक के अन्तर्गत पंचसन्धियों एवं चौंसठ सन्ध्यंगों आदि को भी अलंकार के अन्तर्गत समाविष्ट किया है -

यच्च सन्ध्यङ्गवृत्त्यङ्ग लक्षणाद्यागमान्तरे।
व्यावर्णितमिदं चेष्टमलंकारतयैव नः ।।

साथ ही उन्होंने रस, भाव आदि को भी प्रकारान्तर से अलंकार के अन्तर्गत समाविष्ट कर लिया है -

प्रेयः प्रियतराख्यानं रसवद् रसपेशलम् ।
ऊर्जस्वि रूढाहंकारं युक्तोत्कर्षं च तत् त्रयम् ।। 561454

इसके अतिरिक्त कुछ आचार्य भंगिमापूर्ण अर्थ का विन्यास जो अभिधेयार्थ से पृथक् है, को अलंकार मानते हैं। इसके प्रमुख आचार्य भामह हैं।

तीसरे वर्ग के आचार्य अलंकार का गौण महत्व स्वीकार करते हैं। आचार्य आनन्दवर्धन ने अलंकार को काव्य का, शब्दार्थ का आभूषण धर्म कहा -

"अंगाश्रितास्त्वलंकाराः मन्तव्याः कटकादिवत् ।"[1]

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार शब्दार्थ के अस्थिर धर्म जो काव्यशोभा में अतिशयता की वृद्धि करते हुए रसादि को प्रकाशित करते हैं, वे अलंकार हैं -

---

1- ध्वन्यालोक : आचार्य आनन्दवर्धन, 2/6.

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥*

अलंकार वस्तुतः काव्यभाषा का उत्कर्ष विधायक तत्त्व है जिसका उपयोग रचनाकार काव्यभाषा के साधन के रूप में करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का विचार है कि कवि को अपनी भाषिक क्षमता में विस्तार तथा अर्थ के उत्कर्ष के लिए अलंकारों का प्रयोग करना पड़ता है। [अलंकारों के सम्बन्ध में उनका मानना है कि, "वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूपरंग या गुण की भावना उसी प्रकार के और रूपरंग मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्म वाली और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है। कभी-कभी बात को भी घुमा फिराकर कहना पड़ता है। इस तरह के भिन्न-भिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस बात को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया है कि [यह कविता साध्य तत्त्व नहीं साधन ही है। उनका कहना है कि अलंकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु योजना के रूप में [जैसे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि में] चाहे वाक्यवक्रता के रूप में [जैसे अप्रस्तुतप्रशंसा, परिसंख्या, व्याजस्तुति, विरोध इत्यादि में] चाहे वर्णविन्यास के लिए हो।"[1]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अलंकारों को कविता की भाषा के लिए उसके महत्त्व को रेखांकित करते हुए उसे सबसे प्रभावित करने वाला तत्त्व मानते हैं, जिसका प्रयोग पाठक को संगीतात्मकता, ध्वन्यात्मकता, उक्तिवैचित्र्यगत चमत्कार, अर्थसन्दर्भ आदि कई तत्त्वों की एक साथ अनुभूति कराता है।[2]

---

* साहित्यदर्पण आचार्य विश्वनाथ 10/1

1- रसमीमांसा : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0- 49.

2- आलोचना [पत्रिका] अक्टूबर 1963, पृ0- 13.

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी काव्य में अलंकार की भागीदारी को महत्व-पूर्ण तथा मानते हुए उसे कविता का आत्मतत्व मानते हैं। उनके अनुसार-"काव्य यदि अभिव्यंजना है तो अलंकार उसके अभिव्यक्ति स्वरूप के लक्षण हैं। काव्य को देखने पर सर्वप्रथम उसका व्यक्त स्वरूप ही हमारे समक्ष आता है। उसे काव्य की आत्मा मानना अतः काव्य के विशिष्ट स्वरूप की ही प्रतिष्ठा करना है।"[1] प्रो० योगेन्द्र प्रताप सिंह यद्यपि अलंकार को कविता का मूल तत्व मानने से सह-मत नहीं हैं फिर भी वे काव्यभाषा के स्तर पर अलंकार रचना की बात करते हैं जिसके द्वारा चमत्कृति की सृष्टि न होकर अर्थ का फैलाव, स्पष्टता एवं आवेगमूलकता का व्यापक प्रभाव सृजित होता है। उनका कहना है कि "आलं-कारिक सृष्टि काव्यभाषा में एक तार्किक व्यवस्था को जन्म देती है और वैचारिकता, स्पष्टता उसका मूलाधार है।"[2] वस्तुतः अलंकारविधान भाषिक अर्जना से सम्बद्ध कवि के अनुभव विस्तार का एक अनिवार्य रूप है। व रचनाकार जब रचना में शब्दों का प्रयोग करता है तो उसका उद्देश्य मात्र अलंकार प्रस्तुत करना ही नहीं होता वरन् वह शब्दों के विशिष्ट प्रयोग द्वारा अनेक (कलागत या भावगत) वैशिष्ट्य को रखने का प्रयास करता है। रमेशचन्द्र शाह इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "कोई भी शब्द महज अलंकरण नहीं होता। प्रत्येक शब्द उसके अन्तर्जीवन (और बहिर्जीवन) में गोता लगाकर बाहर आता है।"[3]

यद्यपि बिम्ब आदि के विविध प्रयोगों के कारण उत्पन्न हुए अभिव्यक्ति रूपों के अतिरिक्त अभी भी कविता में अलंकारों का व्यापक प्रयोग होता है, अर्थात् बिम्ब आदि अभी इतने अधिक सामर्थ्यशाली नहीं हुए हैं कि कविता में अलंकारों की पूरी प्रक्रिया को अमान्य ठहरा दें। जहाँ तक अलंकार की व्यापकता

1- आलोचना (पत्रिका) अप्रैल, अंक - 1959, पृ०- 23.
2- अलंकार रचना और काव्यभाषा की समस्यायें : प्रो० योगेन्द्र प्रताप सिंह, पृ०- 63.
3- छायावादी प्रासंगिकता : डॉ० रमेशचन्द्र शाह, पृ०- 37.

का प्रश्न है - अलंकार के भेद - कल्पनाप्रवण सादृश्यविधान के अन्तर्गत बिम्ब को लाया जाता है, इसी तरह प्रतीक आदि की स्थिति है।

डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव का विचार है कि, "अलंकार और काव्यभाषा का सम्बन्ध उस कवि-चिन्ता से जुड़ा हुआ है जिसके अनुसार वस्तु को सीधे अभि-धेय रूप में, नाम से ही सम्बोधित करने का अर्थ है कि कविता के निगूढ़ अर्थ या आनन्द का क्षय।[?]

कविता की भाषिक संरचना के विवेचन के बाद अलंकार को कविता का साध्य तत्व नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि आज की कविता के लिए अलं-कार अधिक उपयोगी नहीं रह गए हैं। कविता में कवि अब पुराने कवियों की तरह अलंकार का वह सायास विधान नहीं करता। रचनाकार प्रत्यक्षतः कविता में अनुभूति का प्रकाशन करता है और अनुभूति का प्रकाशन करने वाला वाक्य स्वयं सामर्थ्य से युक्त होता है तथा वह अर्थ के सन्दर्भ के साथ-साथ कवि की पूरी अनु-भूति प्रकट करने में सक्षम होता है और वह वाक्य विविध अर्थच्छायाओं को एक साथ बिना किसी आभास के संकेतित करता है। अर्थ का यही संकेतित तत्व ही काव्यभाषा का अलंकार तत्व है। अतः आज कविता में अलंकार प्राचीन अलंकार श्लेष, अनुप्रास, रूपक, उपमा ही आदि न रहकर अब वह काव्यभाषा में शब्द एवं अर्थ के उचित संयोजन की प्रक्रिया है। और इसका उचित संयोजन कविता में अलं-कारों की सफलता एवं असफलता सिद्ध करता है।

आधुनिक काव्यशास्त्रियों में डॉ० नगेन्द्र ने स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, जिज्ञासा, कौतूहल आदि मनोवैज्ञानिक तत्वों को आधार रूप में ग्रहण करके अलं-कारों का वर्गीकरण किया है, जो सबसे अधिक मान्य है। उन्होंने अलंकारों के छह भेद किए हैं और प्रत्येक का एक मनोवैज्ञानिक हेतु स्वीकार किया है -

1- साधर्म्यमूलक (मानसिक स्पष्टता)
2- अतिशयप्रधान (विस्तार)
3- वैषम्यप्रधान (आश्चर्य)

? परमानन्द श्रीवास्तव, कविता और काव्यभाषा पृ० 23

4- औचित्यप्रधान {अन्विति}

5- वक्रताप्रधान {जिज्ञासा}

6- चमत्कारप्रधान {कौतूहल}

डॉ० नगेन्द्र ने उपर्युक्त छहों वर्गों में समस्त अलंकारों को समाहित कर लिया है।

आधुनिक हिन्दी कविता के कवियों में अलंकारों की रूढ़ सम्प्रेषणीयता के कारण इससे दूर रहने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इसलिए कवियों ने अपनी कविताओं में सादृश्यमूलक अलंकारों को छोड़कर अन्य वर्गों के अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त कम किया है। इन सादृश्यमूलक अलंकारों के प्रयोग में भी कवियों ने निम्नलिखित तत्वों के उपयोग के लिए किया है -

1- चमत्कृति के लिए,

2- अर्थोत्कर्ष के लिए,

3- भावोत्कर्ष {स्पष्टता} के लिए,

4- विस्तार के लिए,

5- आश्चर्य के लिए,

6- जिज्ञासा के लिए,

7- कौतूहल के लिए।

2- प्रतीक -

आधुनिकता बोध की कविताओं में प्रतीक की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका है। वह काव्यभाषा का एक महत्वपूर्ण अंग है। कविता में कवि प्रतीक पद्धति द्वारा ही शब्दों से अर्थ सन्दर्भ को उभारता है। यह सन्दर्भ मात्र न होकर उस वस्तु का जीता जागता चित्र होता है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में प्रतीक के संबंध में कहा गया है कि, "कोई ऐसा दृश्य पदार्थ जो मन में आश्चर्य और अप्रमेय

वस्तु की अनुभूति जिसमें सहचरित भावना की इस अनुभूति को उत्पन्न करने की शक्ति हो।"[1] बालगंगाधर तिलक अपनी पुस्तक "गीतारहस्य" में प्रतीक विषयक अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, "अभिव्यक्ति की संक्षिप्तता प्रतीक है। प्रतीक शब्द प्रति + इक् से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है अपनी ओर झुका हुआ। जब किसी वस्तु का कोई भाग पहले गोचर होता है फिर आगे उस वस्तु का ज्ञान हो तब उस वस्तु को प्रतीक कहते हैं।"[2] वस्तुतः प्रतीक का सहारा काव्य में अगोचर एवं अप्रस्तुत वस्तु के प्रतिविधान के लिए किया जाता है।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान् लैंगर ने प्रतीक को धारणाओं का वातायन कहा है। उनका विचार है कि प्रतीक का कार्य भिन्न- भिन्न अनुभूतियों, कल्पनाओं का जन्म देना है और नवीन अनुभूतियों का प्रकाशन प्रतीक के द्वारा ही होता है। उनका कहना है कि, "प्रतीक वस्तु के स्थानापन्न {प्राक्सी} नहीं है बल्कि वस्तु की धारणा के लिए वाहिये का कार्य करते हैं। उनके सर्जन में मानव मस्तिष्क ट्रान्समीटर का ही नहीं ट्रान्सफार्मर का भी काम करता है।"[3] प्रतीक को अर्थवान् बनाने के लिए कवियों को सन्दर्भ का विशेष ध्यान रखना पड़ता है।जातीय अनुभव की शक्ति, व्यवहारगत निश्चित अर्थ परम्परा तथा भावविन्यास के मान्य स्तर आदि वे तत्त्व हैं जिन पर प्रतीक का प्रतीकत्व आधारित होता है। अर्थात् ये तत्त्व प्रतीक को सन्दर्भवान् बनाते हैं।

प्रतीकों का साहित्य में प्रमुख कार्य अपने में निहित संकेतों द्वारा अर्थ को नवीन विस्तार और सन्दर्भ देना है। जार्ज हेगले प्रतीक को एक विशिष्ट प्रकार का रूपक मानते हैं। इसको रूपक मानने के मूल में प्रतीक में दिखाई पड़ने वाली विशेषतायें हैं। वे रूपक की लगभग सभी विशेषतायें प्रतीक में देखते हैं। उनका मानना है कि प्रतीक स्वतः किसी वस्तु का परिचायक नहीं होता वरन् वह

1- इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, खण्ड - 26, पृ0- 284.
2- गीता रहस्य : बालगंगाधर तिलक, पृ0- 415.
3- सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व : कुमार विमल, पृ0- 236- 37.

विविध सम्बन्धों का सन्दर्भ सूचक होता है। उनका कहना है कि- "प्रतीक विशिष्ट प्रकार का रूपक है और विषय रूपक की क्रिया में शामिल होने वाला प्रतीकों का समुच्चय। जिस प्रकार रूपक के उद्भव के मूल में वैचारिक टकराहट, द्वन्द्व, सुलझाव और केन्द्रीकरण का भाव निहित रहता है, उसी प्रकार प्रतीक निर्माण में भी ये विशेषतायें विद्यमान होती हैं। प्रतीक स्वतः किसी वस्तु का पर्यायवाचक नहीं होता। वह तो केवल विविध सम्बन्धों का सन्दर्भसूचक होता है। उसकी अर्थवत्ता उसी सन्दर्भ में सुखापेक्षी होती है।"[1] सामान्यतः प्रतीक का प्रयोग अभिव्यक्ति के साधन के रूप में साहित्य में किया जाता है। काव्य में प्रयुक्त होने वाले प्रतीक सामान्य प्रतीकों की अपेक्षा अधिक जटिल होते हैं। ये साहित्यिक प्रतीक मात्र कविता के साधन तत्व ही नहीं होते अपितु भावों का प्रतिबिम्बन भी करते हैं। डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव का विचार है कि "काव्य संसार के प्रयोग में आने वाले प्रतीक जटिल एवं संश्लिष्ट होते हैं क्योंकि जिन संकल्पनाओं और अनुभवखण्डों के स्थान पर वे आते हैं वे [प्रतीकवत् होने के पूर्व] अनिर्धारित एवं धुंधले से होते हैं। इन प्रतीकों को संश्लिष्ट इसलिए होना पड़ता है कि मात्र प्रतीक रहकर अपने से भिन्न किसी अन्य वस्तु के लिए प्रयुक्त संकेतार्थ को अधिक ध्वनित ही नहीं करता वरन् उससे आगे बढ़कर काव्यसंसार के उपादान के रूप में मूर्तिमान भी बनना पड़ता है। काव्य प्रतीक मात्र शीशा या खिड़की के समान नहीं होता जिसके सहारे बाहर के संसार को देखा या समझा जाना सम्भव है, वरन् वह दर्पण के समान होता है जिसके भीतर उसका संसार स्वयं प्रतिबिम्बित होता रहता है।"[2]

1- पोयटिक प्रोसेस : जार्ज व्हेले, पृ0- 165.
2- संरचनात्मक शैलीविज्ञान : डॉ0 रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, पृ0- 242-43.

भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतीक का उल्लेख व्यंजना व्यापार के एक विभेद के रूप में ही प्राप्त होता है और इस सम्बन्ध में प्रतीक का कहीं स्वतन्त्र वर्ग भारतीय काव्यशास्त्र में नहीं हुआ है। प्रतीक का व्युत्पत्तिपरक अर्थ यह लिया जाता है कि जब वस्तु जो अन्य वस्तु का बोध कराये - प्रतीयते प्रत्येति वा इति प्रतीक: "अतीन्द्रिय यथार्थ को उद्बुद्ध करने में जितना सहायक हो सकता है उतना अन्य वस्तु में नहीं।"[1] साहित्यकोश में आगे प्रतीक के व्युत्पत्तिपरक अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि, "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त, अदृश्य, अश्रव्य, अप्रस्तुत विषय का प्रतीक, प्रतिविधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य, प्रस्तुत विषय द्वारा करती है।"[2] साहित्यिक प्रतीक एवं अन्य प्रतीक दोनों को समाज एवं शास्त्रों से ग्रहण किया जाता है, लेकिन शास्त्रीय प्रतीक तथा साहित्यिक प्रतीक में अन्तर यह है कि शास्त्रीय प्रतीकों या संकेतों में अर्थ की निश्चितता होती है जबकि साहित्यिक प्रतीकों में अर्थ की ऐसी निश्चितता नहीं होती। साहित्यिक प्रतीकों का संकेत एवं अर्थ निरन्तर बदलता रहता है।

प्रतीकों की मुख्य रूप से दो विशेषतायें व दृष्टिगत होती हैं, प्रथम यह कि वे सदैव किसी न किसी मध्यस्थ प्रकार के व्यापार का प्रतिनिधि होता है। इसका तात्पर्य यह है कि सभी प्रतीक संवेदनाओं से गहरे स्तर तक जुड़े होते हैं जिन्हें केवल अनुभव के द्वारा ही जाना जा सकता है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रतीक काव्य शक्ति को घनीभूत कर देता है। प्रतीक की सूक्ष्मता और उसके

1- हिन्दी साहित्यकोश, पृ0- 398 : डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा
2- हिन्दी साहित्यकोश, पृ0- 398 : डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा

द्वारा निर्दिष्ट वास्तविक महत्त्व के परिणाम से कोई सम्बद्ध नहीं होता।
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी प्रतीक को काव्यभाषा संरचना का महत्त्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं। उनका कहना है कि, "अतः सच्ची परख वाले कवि अप्रस्तुत या उपमान के रूप में जो वस्तुएँ लाते हैं उनमें प्रतीकत्व होता है।"[1] अन्यत्र कहते हैं कि - "प्रतीक किसी विषय की विशद व्याख्या, स्वीकृति प्राप्त पलायन, पथ-निर्माण, गुप्त एवं दमित भावनाओं का उद्घेलन एवं उद्घाटन करते हैं।"[2]

अज्ञेय प्रतीक के लिए उपमानों के सम्बन्ध में नयेपन की माँग के अतिरिक्त नये प्रतीक सृजन को काव्य के लिए आवश्यक मानते हैं। उनका मानना है कि जब तक कोई काव्य साहित्य प्रतीकों की सृष्टि करता रहता है, तब तक स्वस्थ रहता है। जब वैसा करना बन्द कर देता है तो जड़ हो जाता है। प्रतीक अनिवार्यतः अनेकार्थ सूचक होते हैं, अर्थ के जितने अधिक स्तर एक साथ संकेत करें प्रतीक उतने ही अधिक प्रभविष्णु होते हैं।[3] प्रतीक सुविधानुसार भावाभिव्यक्ति को संक्षिप्तता प्रदान करता है। प्रतीकों की विशिष्टता यह भी है कि वे प्रत्येक काल के प्रयोग में सामाजिक सन्दर्भों के अनुसार बदलाव लिए चलते हैं। प्रत्येक काल में प्रतीकों के प्रयोग के ढंग में भी भिन्नता आ जाती है। प्रयोग की दृष्टि से प्रतीकों का सबसे अधिक उपयोग नयी कविता के कवियों ने किया है। आज के कवि अनुभूतियों एवं संवेदनाओं को व्यक्त करने की इसकी उपयोगिता से पूरी तरह परिचित हैं, अतः वे भावाभिव्यंजन के लिए इसका अधिकतम उपयोग करते हैं। उनका मानना है कि कविता में साधारण वक्तव्यों की अपेक्षा प्रतीकों के द्वारा सत्य को अधिक प्रभावोत्पादक, मार्मिक एवं संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जा सकता है।

1- चिन्तामणि, भाग - 2 : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0- 111
2- सूरदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0- 69.
3- आत्मनेपद : अज्ञेय, पृ0- 42.

प्रतीकों की काव्य में भूमिका के सम्बन्ध में प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं कि, "वस्तुतः प्रतीक जो काव्यभाषा के सबसे तेजस्वी तत्त्व जान पड़ते हैं, एक सीमा के बाद उत्पात करने लगते हैं। प्रतीकों की बड़ी संख्या यदि भावचित्रों के रूप में संक्रान्त नहीं हो पाती तो उनमें से अधिकांश प्रतीक केवल कथानक रूढ़ि या अभिप्राय बनकर रह जाते हैं। ...... इस प्रकार के लावारिस प्रतीक किसी भी काव्यभाषा और अन्ततः साहित्य के लिए बड़े खतरनाक साबित होते हैं, क्योंकि उनका रूप वैसा ही जड़ एवं निश्चित हो जाता है जैसाकि सामान्य शब्दों का होता है। प्रतीक का चरम तत्त्व यही है कि उसके माध्यम से किसी शब्द के सम्पूर्ण और चरम अर्थ के स्थान पर उसके इच्छित आंशिक तत्त्व को ही ग्रहण किया जाये।"[1]

वस्तुतः काव्य रचना में उतारे जाने के लिए प्रतीक जैसे भाषिक संरचना के तत्वों का उपयोग करता है। इन प्रतीकों के सहारे रचनाकार भाषा का प्रभावी ढंग से कृति में उपयोग कर पाता है। ये प्रतीक मूल रूप से अपनी संस्कृति एवं समाज से निकले होने के कारण एक रूढ़िगत संवेदना से जुड़े रहते हैं। इसीलिए वे काव्य में प्रयुक्त होकर अपनी संस्कृति एवं समाज का प्रतिनिधित्व भी करते हैं। रचनाकार सृजन के क्षण में प्रतीक का उपयोग कर अनुभूतियों में विस्तार तथा सम्प्रेषण में संक्षिप्तता लाता है। सही प्रयोग कविता को बहुत अधिक विस्तार देता है अन्यथा वह कविता में केवल असंतुलन ही पैदा करता है।

प्रतीकों के विभाजन के सन्दर्भ में कई धारणाएँ साहित्य में दिखाई देती हैं। इनमें पाश्चात्य दृष्टि, भारतीय दृष्टि एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किये गये विभाजन प्रमुख हैं। पाश्चात्य विद्वानों में पॉल एल्मर मोर ने चार भेद – (1) गूढ़ार्थ, (2) स्मरणात्मक, (3) औपम्यमूलक, तथा (4) वस्तुगर्भ माने हैं।

1- भाषा और संवेदना : रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ०- 29-30.

कुछ विद्वानों ने अभिव्यक्ति के विभिन्न आधारों की दृष्टि से – {1} प्राणिवाद-मूलक, {2} औपम्यमूलक, {3} सादृश्यमूलक, {4} बिम्बमूलक भेदों का निरूपण किया, जबकि मार्शल अर्बन ने उनका भेद तीन भागों में किया है –

{1} ऐच्छिक प्रतीक,

{2} अभिनात्मकमूलक प्रतीक,

{3} सूक्ष्म अन्तर्दर्शी प्रतीक ।

रेने वेलेक एवं ऑस्टिन वारेन का विचार है कि प्रतीक दो प्रकार के होते हैं – निजी प्रतीक विधान और परम्परागत प्रतीक विधान ।

हिन्दी के आलोचकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रतीक के दो भेद माने हैं। इनमें से एक मनोविकारों को जगाते हैं और दूसरे भावनाओं को भावना या कल्पना जगाने वाले प्रतीकों के साथ भाव या मनोविकार भी प्रायः लगे रहते हैं।

हिन्दी साहित्यकोश में भी प्रतीक के दो भेद माने गए हैं – "प्रतीक के दो प्रकार होते हैं – सन्दर्भीय और संघनित। सन्दर्भीय प्रतीकों के वर्ग में वाणी और लिपि से व्यक्त शब्द, राष्ट्रीय पताकाएँ, तारों के परिवहन में प्रयुक्त होने वाली सीटियाँ, रासायनिक तत्वों के चिह्न आदि हैं। संघनित प्रतीकों के उदाहरण धार्मिक कृत्यों में और स्वप्न तथा अन्य मनोवैज्ञानिक विकृतियों जन्य प्रक्रियाओं में मिलते हैं।[1]

डॉ० नगेन्द्र मनोवैज्ञानिक आधारों को ग्रहण करते हुए उसके मूल में भावना को रखकर उसे तीन भागों में विभाजित करते हैं – {1} सृजन के प्रतीक, {2} ध्वंस के प्रतीक, {3} काम या शृंगार के प्रतीक।[2]

1– हिन्दी साहित्यकोश , भाग – 1 : धीरेन्द्र वर्मा, पृ०– 399·

2– देव और उनकी कविता : डॉ० नगेन्द्र, पृ०– 203·

प्रतीकों का उपर्युक्त वर्गीकरण ध्यान में रखें, और प्रतीकों के विशिष्ट गुणों को नजरंदाज न करें तो वस्तुतः प्रतीक के दो प्रमुख भेद माने जा सकते हैं-

{1} मूर्त प्रतीक या स्थूल प्रतीक,

{2} अमूर्त प्रतीक या सूक्ष्म प्रतीक।

1- मूर्त या स्थूल प्रतीक :- इस वर्ग के प्रतीकों में काव्यभाषा के सौन्दर्य-विधायी तत्वों को सामान्यतः ग्रहण किया जाता है, जो वस्तुतः अप्रस्तुत विधान के अधिक निकट हैं , इन्हें कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

{क} सादृश्यगर्भ प्रतीक,

{ख} साधर्म्यमूलक प्रतीक,

{ग} बिम्बमूलक प्रतीक,

{घ} विरोधगर्भमूलक प्रतीक,

{ङ•} वाक्यमूलक प्रतीक,

{च} कारण- कार्य मूलक प्रतीक,

{छ} अपह्नवमूलक प्रतीक,

{ज} लक्षणामूलक प्रतीक,

{झ} व्यंजनामूलक प्रतीक ।

2- सूक्ष्म प्रतीक :- इनमें विचारों के सूक्ष्म मानसिक तत्वों को ग्रहण करके उनके आधार पर प्रतीकों का निर्माण तथा उनका आश्रय भी लिया गया। इस प्रकार के प्रतीकों के निर्माण में कवि की चिन्तन की प्रौढ़ता का विशेष योगदान रहता है और कवि की अनुभूतिगत एवं चिन्तनगत प्रौढ़ता ही इस तरह के प्रतीकों का निर्माण करती है। अतः इस कोटि के प्रतीक कवियों की प्रौढ़ावस्था की ही रचनाओं में प्राप्त होते हैं अन्यथा प्रारम्भ में मूर्त प्रतीकों का ही प्रयोग होता है।

3- बिम्ब

"बिम्ब" अंग्रेजी के "इमेज" शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। बिम्ब किसी अमूर्त विचार अथवा भावना की पुनर्निर्मिति है। बिम्ब का सम्बन्ध मूलतः इंद्रियों के विषयों से है। मन इन्द्रियों के माध्यम से बिम्ब को ग्रहण करता है। इमेज का कोशगत अर्थ है - मूर्त रूप प्रदान करना, चित्रण करना, प्रतिच्छायित करना, प्रतिबिम्बित करना।[1] मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ में "बिम्ब" इन्द्रियबोध से अनिवार्यतः सम्बद्ध है। सी० डी० लिविस ने बिम्ब को प्रतिष्ठा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की, उनका कहना है कि, हर बिम्ब उपादान की पुनर्रचना ही नहीं करता अपितु वह उसकी अनुभूति के सन्दर्भ को भी प्रस्तुत करता है। इस तरह जो भी उपादान प्रस्तुत रहता है, उसका सम्बन्ध परिवेश से होता है। यह सम्बन्ध बिम्ब का प्रमुख उपस्कारक भी होता है।[2] इस दृष्टि से रूपक को सम्पूर्ण संसार का सहज ज्ञान माना जा सकता है। रूपक की तरह बिम्ब को भी मानव के अनन्त प्रकार का परिचायक माना जा सकता है। इस दृष्टि से काव्यबिम्ब मानव मस्तिष्क के साथ ही हर सजीव वस्तु का परिचायक होता है। के० लैंगर बिम्ब के सम्बन्ध में कहते हैं कि, "बिम्ब ऐन्द्रिय माध्यम द्वारा आध्यात्मिक अथवा बौद्धिक सत्यों तक पहुँचने का मार्ग है।"[3] आई० ए० रिचर्ड्स ने प्रिंसिपल्स ऑफ क्रिटिसिज्म" में अत्यन्त संतुलित निष्कर्ष निकालते हुए कहा है कि, "बिम्बों की ऐन्द्रिय विशेषताओं को सदा से बहुत अधिक महत्व दिया जाता रहा है। बिम्ब अपनी अस्पष्टता के कारण उतने प्रभावशाली नहीं होते जितने किसी मानसिक घटना से और विशेषतः संवेदन से जुड़े होने की प्रकृति के कारण। ये प्रभावशाली तभी होते हैं जब ये संवेदन के "अवशेष" या "प्रतिकृति" होते हैं।"[4]

1- आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी, वॉल्यूम- 1, पृ०- 253.
2- पोयटिक इमेज : सी० डी० लिविस, पृ०- 22.
3- प्रॉब्लम्स ऑव आर्ट्स : सुजान के० लैंगर
4- साहित्य सिद्धान्त : रेने वेलेक एवं आस्टिन वारेन, पृ०- 224.

वस्तुत: बिम्ब का भाषा से अलग कोई महत्व सम्भव नहीं। लेकिन उसका सम्बन्ध भाषा के सर्जनात्मक रूप से है। अत: काव्यभाषा में उसकी उपेक्षा सम्भव नहीं। कवि की सामान्य भाषा को अनुभव की भाषा बनाने की जिम्मेदारी के तहत बिम्ब मुख्य भूमिका निभाता है। बिम्ब की सच्ची सार्थकता ही यह है कि वह बोलचाल की भाषा को जो अति प्रयोग के कारण घिस-पिट जाती है, इस घिसी या रूढ़ हुई भाषा को रचनाकार बिम्बों के सहारे नये संवेदना में रूपांतरित कर अपनी अनुभूति को पाठक की अनुभूति में स्थानान्तरित कर देता है। बिम्ब मात्र चित्र नहीं है अपितु कवि की संवेदनात्मक अनुभूति की पूँजी है। बिम्ब का महत्व एवं उसकी पूर्णता तभी है जब वह कवि के अनुभव को ग्रहण करे और उसे सम्पूर्ण जटिलता एवं अन्तर्विरोधों के साथ पूरे अर्थ विस्तार को पाठक के सामने उजागर करे।

डॉ० नगेन्द्र कविता में बिम्ब के निर्माण में भावतत्व को प्रमुख मानते हैं। उनका कहना है कि बिम्ब के सृजन में यही मुख्य भूमिका अदा करता है। उनका कहना है कि, "काव्यबिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस छवि है जिसके मूल में भावों की प्रेरणा रहती है। काव्यबिम्ब का प्रेरक तत्व है भाव। भाव के संस्पर्श के बिना काव्यबिम्ब का अस्तित्व सम्भव नहीं।[1] इसी को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि, "स्पर्श सम्बन्धी बिम्ब इन्द्रिय बोध का सबसे स्थूल स्तर है। इस बिम्ब में स्पर्शजन्य संवेदनों के समन्वय से बिम्ब का निर्माण होता है। पेशल या कोमल, कर्कश, कठोर आदि विशेषण इस प्रकार के स्पर्श बिम्बों के वाचक शब्द हैं, जिनके बिम्बात्मक रूप अतिप्रयोग के कारण जड़ बन गए।"[2] डॉ० नगेन्द्र बिम्ब को कविता का माध्यम मानते हैं। उनके इस विचार का खण्डन करते हुए डॉ० नामवर सिंह कहते हैं कि, "बिम्ब को कविता का माध्यम मानने वाले डॉ० नगेन्द्र नयी कविता के बिम्बों का स्वरूप नहीं समझते क्योंकि कलात्मक अनुभूति

1- काव्यबिम्ब : डॉ० नगेन्द्र, पृ०- 5-6.
2- वही, पृ०- 9.

की समस्त प्रक्रिया ही बिम्बमयी होती है, इस प्रकार बिम्ब स्वतः अनुभूति का प्रमाण है, केवल प्रभावी माध्यम नहीं।"[1] वस्तुतः काव्यबिम्ब वही श्रेष्ठ माना जा सकता है जिसमें अभिव्यक्तिगत नवीनता भावसघनता, भावोत्तेजन की क्षमता, उर्वरता, परिचितता और औचित्य जैसे गुणों का समावेश हो। इन गुणों के कारण ही सम्प्रेषण प्रभावी हो सकता है। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने बिम्बों के निर्माण में दो तत्वों को महत्वपूर्ण माना है। उनका विचार है कि बिम्ब कवि की अनुभूति एवं संवेदना को स्पष्ट करता है और पाठक के बीच में बिम्ब ही अनुभूति एवं संवेदना की पहचान कराते हैं।[2]

केदारनाथ सिंह के विचार से बिम्ब की व्यापक चर्चा नयी कविता के आगमन के पश्चात् आरम्भ हुई। तीसरा सप्तक के एक कवि ने घोषित किया कि प्राचीन काव्य में जो स्थान चरित्र का था वही आज काव्य में "इमेज" या बिम्ब का हो गया है।

प्रो० रामस्वरूप चतुर्वेदी बिम्ब को कविता का सबसे महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। उनका विचार है कि रचना में विविध अर्थ स्तरों को सक्रिय करने का एक दक्ष उपाय बिम्ब प्रक्रिया है। उनका मानना है कि आधुनिक कविता में ही बिम्बों का सबसे उचित प्रयोग हुआ है। हालाँकि वह मध्यकालीन काव्य में भी व्यापक रूप से प्रयुक्त होना प्रारम्भ हुआ है। इसका कारण वे वर्तमान जीवन की जटिलताओं और बहुमुखी परिस्थितियों की काव्यभाषा के नये पहिचाने आयाम के द्वारा सम्भव मानते हैं। वे बिम्ब को कविता का केन्द्रीय तत्व स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि - "कविता की भाषा का केन्द्रीय तत्व भावचित्रों अथवा बिम्बों का विधान है।"[3] उनका आरोप है कि बिम्ब का दृश्यपक्ष उसका आरम्भिक स्तर है और सारे

1- कविता के नये प्रतिमान : डॉ० नामवर सिंह, पृ०- 22.
2- नये प्रतिमान पुराने निकष : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ०- 37.
3- भाषा और संवेदना : डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ०- 24.

आलोचक बिम्ब के सन्दर्भ में इसी आलोचना पर बल देते हैं, जबकि बिम्ब के माध्यम से अर्थ विकास की सूक्ष्म एवं रहस्यमय प्रक्रिया को उन्होंने परिलक्षित नहीं किया, जबकि आधुनिक रचनाकार काव्य में शब्द का सम्पूर्ण अर्थ न लेकर उसके अर्थ विस्तार की सजगता उत्पन्न करते हुए उसकी किसी आंशिक वैकल्पिक छाया की ओर संकेत करते हैं। डॉ० रामचन्द्र तिवारी बिम्ब की कई परिभाषाओं के सन्दर्भ में रखते हुए कहते हैं कि सारी परिभाषाएँ उसे भाषामूलक सिद्ध करती हैं, साथ ही यह भाषा प्रयोग- विधि से अनेक प्रकार से सम्बन्ध स्थापित करती है। भाषा का निमित्त है साथ ही उससे शक्ति भी अर्जित करती है और भाषा स्वतः बिम्ब का समूह होती है। अतः काव्य में अलग से बिम्बों का सृजन करना आवश्यक नहीं। बिम्ब भाषा एवं प्रभाव के बीच का सम्पर्क है, भाषा सामाजिक मन में पहले बिम्बों का उदय करती है और फिर प्रभाव का उन्मेष। इसी कारण से कविता को बिम्बों की बार- बार आवश्य- कता पड़ती है।

सामान्य रूप से हम बिम्ब का स्वरूप निर्धारित करते हुए यह कह सकते हैं कि काव्यभाषा में कवि की अनुभूति को पाठक तक सम्प्रेषित करने वाले अन्य सभी अवयवों [रूपों] में बिम्ब विशिष्ट होता है। बिम्ब रचनाकार की अनुभूति के सन्दर्भों से परिचित कराते हैं। उत्कृष्ट बिम्ब रचनाकार की अनुभूति एवं उसके मौलिक ज्ञान के परिचायक होते हैं। बिम्ब निर्माण अधिकतर स्वतः प्रेरित होते हैं और अधिकतर पुनर्निर्माण के परिचायक होते हैं।

पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र में मुख्यतः बिम्बों के वर्गीकरण के तीन आधार स्वीकार किए गए हैं -

[1] अभिव्यंजनापद्धति की दृष्टि से,

[2] स्वरूपगत विशेषताओं की दृष्टि से,

[3] ऐन्द्रिय बोध की दृष्टि से ।

1- अभिव्यंजना पद्धति के आधार पर बिम्बों को दो भागों में विभाजित किया गया है -

(क) लक्षित बिम्ब,

(ख) उपलक्षित बिम्ब ।

2- स्वरूपगत विशेषताओं की दृष्टि से बिम्बों के निम्नलिखित वर्ग मिलते हैं -

(क) संक्षिप्त और सांकेतिक बिम्ब तथा अनिबद्ध और प्रस्तुत बिम्ब,

(ख) सरल बिम्ब, जटिल बिम्ब, तात्कालिक बिम्ब, अमूर्त बिम्ब, और उन सबके सहयोग से बने संयुक्त अमूर्त बिम्ब और जटिल अमूर्त बिम्ब आदि ।

(ग) रचनाविधि के सहारे प्रतीकात्मक, रूपात्मक, अभिधानात्मक तथा प्राथमिक, माध्यमिक और व्युत्पन्न बिम्ब आदि।

डॉ० सी० डी० लिविस ने बिम्बों को दो भागों में विभाजित किया है-[1]

1- ऐन्द्रिय बिम्ब,

2- मानस बिम्ब ।

मनोवैज्ञानिक बिम्ब- प्रक्रिया में वस्तुगत रूप का सम्बन्ध मन तथा भाव रूप के साथ रहते हैं। डॉ० नगेन्द्र सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक आधार को ग्रहण कर बिम्बों का विभाजन प्रस्तुत किया। उनके अनुसार यह वर्गीकरण दो प्रकार का होता है - प्रत्यक्ष अनुभव से सम्बद्ध बिम्ब (रूप, नाद, गन्ध, स्वाद, स्पर्श आदि) तथा परोक्ष अनुभव से सम्बद्ध बिम्ब और इसे तालिका द्वारा स्पष्ट किया है -

---

1- सी० डी० लिविस : पोयटिक इमेज, पृ०- 90·
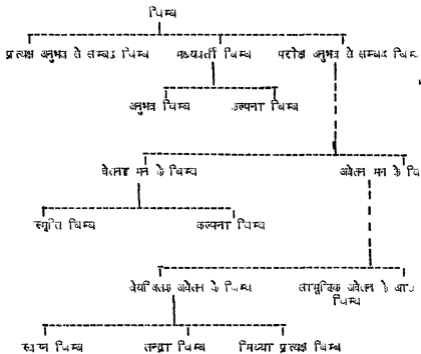
स्पष्ट है कि डॉ० नगेन्द्र के उपर्युक्त वर्गीकरण में काव्य की दृष्टि से कम मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का अधिक सहारा लिया गया है।

उपर्युक्त विभाजनों पर ध्यान से विचार किया जाय तो बिम्ब को तीन भागों में बाँटा जा सकता है —

(1) ऐन्द्रिय बिम्ब,

(2) मानस बिम्ब,

(3) आद्य बिम्ब।

इन्हें भेदोपभेद में इस प्रकार रखा जा सकता है -

बिम्ब
आप्त बिम्ब
ऐन्द्रिय बिम्ब
मानस बिम्ब
धर्म सम्बन्धी
लोक संबंधी
इतिहास संबंधी
दृश्य बिम्ब
अन्य संवेद्य बिम्ब
वस्तु बिम्ब
व्यापार बिम्ब
स्पर्श
घ्राण
श्रवण
आस्वाद
भाव बिम्ब
अनुभव संवेद्य बिम्ब
विचार
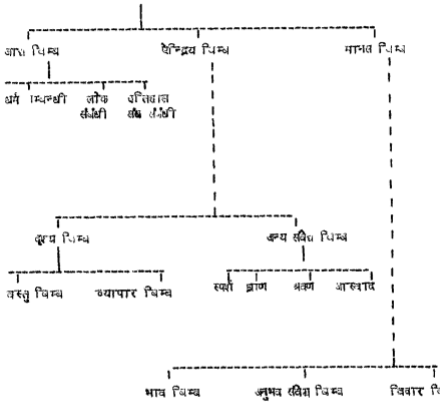
"मिथ" यूनानी शब्द "माइथोस" से निकला है। "माइथोस" का अर्थ है "अतर्क्य आख्यान" अर्थात् इसमें व्यक्त भावनाओं, विचारों एवं घटनाओं के संबंध सूत्र अत्यधिक उलझे हुए तर्केतर और गड्डमड्ड होते हैं। मिथक आदिम मनुष्यों की भाषा है। इसके माध्यम से वह जीवन और प्रकृति के रहस्यों के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं के अलौकिक गाथाओं के रूप में अभिव्यक्त करता था। वह आदिम यथार्थ के प्रति सामूहिक अवचेतन मन का सहज स्फूर्त बिम्बात्मक सृजन है।" मिथ अन्य आव्यरूपों की तरह हिन्दी में अंग्रेजी से आया। इसके लिए हिन्दी में अन्य नाम भी आए जैसे :- दन्तकथा, पुरावृत्त, धर्मगाथा और पुराख्यान जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया। ये सारे के सारे नाम एक विशेष मनः संरचना की ओर संकेत करते हैं जो निश्चित रूप से प्राचीन ऐतिहासिक सूत्र को लोगों की मनः संवेदना के स्तर पर कहीं न कहीं अवश्य छूते हैं। इसके लिए अब मिथक शब्द सर्वमान्य हो गया है। संस्कृत में मिथक शब्द के निकटवर्ती दो शब्द हैं - "मिथस् या मिथ:" जिसका अर्थ है परस्पर और मिथ्या जो असत्य का वाचक है। मिथक का सम्बन्ध "मिथस्" से जोड़ने पर इसका अर्थ हो सकता है - सत्य और कल्पना का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध अथवा ऐकात्म्य । मिथ्या से सम्बन्ध जोड़ने पर मिथक का अर्थ "क्पोल कथा" बन सकता है।

उपर्युक्त सन्दर्भों से स्पष्ट है कि मिथक "अतर्क्य आख्यान" है जहाँ भावनाओं, विचारों और घटनाओं के सम्बन्ध सूत्र अत्यन्त उलझे हुए तर्केतर एवं गड्डमड्ड होते हैं। निश्चित रूप से कविता में प्राचीन आख्यान की परम्परा होती है, जो बहुत कुछ परम्परामूलक, कथात्मकपरक है जो संस्कृति के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी आती है जहाँ मन के भावनाओं की प्रधानता होती है न कि तर्क की और मिथक के द्वारा कवि उन्हीं कथा रूपों को ग्रहण कर मानव मन की आधुनिक भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयास करता है।

"मिथ" शब्द का प्रयोग अरस्तू के पोयटिक्स (काव्यशास्त्र) में कथानक, कथाबन्ध, गल्पकथा के रूप में हुआ है जिसका विलोम एवं पूरक शब्द है, "लोगस" (तर्क)। तार्किक संलाप या विवृत्ति के विपरीत "मिथ" आख्यात्मक होता है। रेने वेलेक एवं ऑस्टिन का विचार है कि, "यह भावुकतापूर्ण अन्तःप्रज्ञा से संबद्ध होता है, इसके अन्तर्गत धर्म, लोकसाहित्य, मानवविज्ञान, समाजविज्ञान, मनो-विश्लेषण तथा ललित कलाएँ सब आ जाते हैं। जिन शब्दों को इसका विपरीता-र्थक माना जाता है वे हैं इतिहास, विज्ञान, दर्शन रूपकहीन का सत्य।"[1]

कुछ विद्वान् मिथक को मनोवैज्ञानिक अवचेतन मन की प्रतीकात्मक अभि-व्यक्ति कहते हैं। फ्रायड का मानना है कि, "मनोशास्त्र का मूलाधार दमित यौन भावनाएँ होती हैं और यह मिथक भी आदिम मनुष्यों की दमित यौन भावना को विरेचित करने का प्रयास होता है जबकि "युंग" मन के तीन स्तरों का उल्लेख करता है - चेतन, वैयक्तिक अवचेतन, और सामूहिक अवचेतन अत्यंत गम्भीर एवं व्यापक होता है। जिसे वह "डीप स्ट्रक्चर" भी कहता है। इसमें देश, काल, परिस्थिति और मानव के संस्कारिक समाहित होते हैं। इसे वह "आदिमबिम्ब" भी कहता है। यही प्राकृतिक सामूहिक अवचेतन का "आदिम बिम्ब" मिथक कहलाता है।

समाजशास्त्री मिथक का मनोवैज्ञानिक अवधारणा से भिन्न एक पृथक् स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। फ्रांसीसी समाजशास्त्री "डर्कहीम" मिथक का सम्बन्ध प्रकृति से नहीं समाज से मानते हैं। उनका प्राकृतिक उद्देश्य समाज के शुभ उद्दे-श्यों को उद्घाटित करना है। मलिनोव्सकी का विचार है कि मिथक न तो विगत के प्रति चामत्कारिक प्रतिक्रिया है न विगत का आलेख। उसका उद्देश्य केवल सामाजिक व्यवस्था का संरक्षण एवं संकलन है जिसके मूल में मानवतावादी

1- रेने वेलेक एवं ऑस्टिन वारेन : साहित्यसिद्धान्त, पृ0- 243.

अवधारणा ग्रहण करती है। इस दृष्टि से समाजशास्त्री सामाजिक मन की एक सम्पूर्ण अभिव्यक्ति को मिथक कहते हैं। जिसके मूल में मानव मूल्यों के संरक्षण की बात निहित रहती है। वह पूरे समाज के बौद्धिक एवं सामाजिक विकास दोनों में सहायक होती है। संक्षेप में मिथक प्राचीन संस्कृतियों का एक संश्लिष्ट सांकेतिक रूप है।

भाषा के सन्दर्भ में मिथकीय समस्या कोविको, हरडर, लैंगर आदि ने उठाया है। विको इस सन्दर्भ में कहता है कि, "भाषा की उत्पत्ति सांकेतिक अभिव्यक्ति से हुई, मिथक भाषा विकास की एक मंजिल है।"[1] उडबाथ कैसिरर भाषा एवं मिथक का उद्गम एक ही स्वीकार करते हैं, जबकि मैक्समूलर मिथक की उत्पत्ति भाषा से मानता है और मिथक को "भाषा का रोग" कहता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि भाषा एवं मिथक का विकास साथ-साथ हुआ। डॉ० शम्भुनाथ का कहना है कि, "आदिम समाज में भाषा और मिथक दो पृथक् तत्त्व नहीं थे क्योंकि उस समय सामाजिक वास्तविकता का स्वरूप ~~समस्त~~ समग्रतः मिथकीय था।[2]

मिथक की भाषा के लिए सर्जनात्मक उपयोगिता बतलाते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि, "मिथक तत्त्व मूलतः भाषा का पूरक है। सारी भाषा ही उसके बल पर खड़ी है। आदि मानव के चित्त में संचित अनेक अनुभूतियाँ मिथक के रूप में प्रकट होने के लिए व्याकुल होती हैं, परन्तु भाषा के माध्यम से जब वह प्रकट होती है तो ऊपर से एकांगी तर्कहीन तथा मिथ्या जान पड़ती हैं किन्तु गहराई से देखने पर वे मनुष्य के अन्तर्जगत को अभिव्यक्त करने का एकमात्र साधन है।------- प्रस्तुत को अप्रस्तुत विधान के द्वारा उप-भोग्य बनाने की प्रक्रिया वस्तुतः मिथक तत्त्व द्वारा चालित होती है।"[3]

1- उद्धृत हिन्दी कविता के बीज शब्द : डॉ० बच्चन सिंह, पृ०- 73.
2- डॉ० शम्भुनाथ : मिथक और आधुनिक कविता, पृ०- 10.
3- आलोचना { साहित्य सर्जना और विवक्त अभिभाषा : डॉ० हजारी प्रसाद

मिथकीय अवधारणाओं से जुड़े हुए पात्र, वस्तु, घटना भाव इत्यादि अपना प्रतीकार्थ तो रखते ही हैं। वे मानव जाति के विश्वास, अतीत के प्रति अनुराग, किसी व्यापक सत्य या आदर्श के प्रति आस्था आदि को भी व्यक्त करते हैं। अज्ञेय का मानना है कि, "प्राय: प्रतीक के मूल में मिथक हुआ करता है।"[1] व्यक्ति की अवधारणा ही किसी वस्तु, भाव, घटना या व्यक्ति के प्रतीकार्थ को नियोजित करती है, व्यक्ति की इन अवधारणाओं का सम्बन्ध किसी विश्वास, आस्था एवं मनुष्य के अतीतानुरागी स्वप्न से होता है। जो दूसरे कोटि के मिथक हैं, ऐसे मिथकों से किसी अमूर्त, आदर्श आदि को स्थापित किया जाता है।

मिथक, काव्य और काव्यमिथक - यानि सम्पूर्ण रचनाशीलता को अन्त:प्रेरित करने वाला यह अवचेतन जातीय एवं मानवीय संस्कारों का अधिष्ठान है। इसके माध्यम से अतीत हममें जीवित रहा करता है। मिथक का संसार अवचेतन का संस्कार है। यह रचनाकारों को मूल से जोड़ने का कार्य करता है। डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव का विचार है, "मिथकों में परिलक्षित होने वाली वास्तविकतावादी विचारशैली (पोजिटिविस्टिक थिंकिंग) जो आदिमानस की खास विशेषता रही है। साहित्य में अप्रयुक्त मानवीयकरण- पद्धति की जन्मदात्री उहरती है।"[2]

मिथक के कल्पनात्मक एवं प्रतीकात्मक सन्दर्भ को ग्रहण कर तथा उसके उपजीव्य तत्वों को ध्यान में रखकर विद्वानों ने मिथकों के कई भेद किए हैं -

1- देश सम्बन्धी मिथक,

2- अवतार सम्बन्धी मिथक,

3- कथा सम्बन्धी मिथक,

1- अज्ञेय : भवन्ती, पृ०- 104.

2- डॉ० जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव : मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, पृ०- 43, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी - 1985.

4- इतिहासधर्मी चरित्र प्रतीक मिथक,

5- धारणा- प्रतीक- उपकरणात्मक एवं अनुभंग प्रतीक मिथक ।

वस्तुतः मिथक मानव की स्वप्नसदृश कल्पनात्मक बिम्बावलियों का अभिव्यक्ति रूप है। इसमें कवि ऐतिहासिक, पौराणिक सन्दर्भों को ग्रहणकर अपनी भावनाओं को मूर्त रूप देता है। इसके महत्त्व का कारण यह है कि मिथक अधिकतर ऐतिहासिक एवं धार्मिक सन्दर्भों को ग्रहण कर आधुनिक समस्याओं एवं विसंगतियों को ही रेखांकित करते हैं। साथ ही मिथकीय समीक्षा में मत-वैभिन्य के लिए काफी गुंजाइश रहती है। परिणामतः इसका भिभिन्न आलोचक एक ही रचना में मिथकों के अलग- अलग सन्दर्भों को ग्रहण करते हैं, परिणामतः इसका स्वरूप कुछ आनुमानिक एवं अस्पष्ट हो जाता है।

5- फन्टासी

"फैंटेसी" मनोविज्ञान का शब्द है, इसका सम्बन्ध स्वप्न एवं अचेतन मन में घटित होने वाली घटनाओं की विघटित एवं बेतरतीब बिम्बावलियों से है। साहित्य या काव्य में यह एक टेकनिक के रूप में प्रयुक्त की जाती है। इसमें भी बिम्बों, प्रतीकों, मिथकों आदि को अतर्कानुमोदित पद्धति पर उपस्थित किया जाता है। फन्टासी में तर्क का आश्रय न ग्रहण करके बिम्बों एवं प्रतीकों को अतर्कतर एवं गड़बड़ ढंग से बेतरतीब ही प्रयुक्त करते हैं। उसमें अधिकतर प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत तत्त्व ऊपरी तौर से असम्बद्ध ही प्रतीत होते हैं, इन्हीं सब विशिष्टताओं के कारण फन्टासी की सीमायें निश्चित करने के लिए कोई व्यवस्थित एवं सर्वसामान्य तथा स्वीकृत कसौटी नहीं। अधिकतर विद्वान् इस बात पर सहमत प्रतीत होते हैं कि किसी वस्तु विषय का गल्पात्मक रूप फन्टासी की श्रेणी में आ सकता है, यदि वह कवि विशेष की वस्तुगत एवं आह्लाद करने के निमित्त ही निर्मित हुई है।

1- डॉ० बच्चन सिंह : आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, पृ०-68-69।

जिस किसी भी कविता में फैंटसी के प्रयोग में अधिकता हो तो टेक्चर और स्ट्रक्चर का स्वरूप अधिक सघन हो जाता है। क्योंकि यहाँ सबके टेक्चर में काफी भिन्नता होती है। एक टेक्चर दूसरे टेक्चर का विपरीतार्थक या विसंगत्यात्मक कुछ भी हो सकता है। क्योंकि फैंटसी केवल मानसिक शक्ति नहीं है, उसकी बिम्बात्मक और निगूढ़ अवस्था उसके चित्रण एवं चित्रांकन पद्धति में निहित होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल फैंटसी को स्वप्नाभास कल्पना कहते हैं कि - "उसके द्वारा (छायावाद के द्वारा) हिन्दी के काव्य- क्षेत्र में दो बातों का समावेश बड़ी प्रचुरता के साथ हद से ज्यादा भी कह सकते हैं, हुआ है। स्वप्नाभास कल्पना का और लाक्षणिक वक्रोक्ति का।"[1] अर्थात् काव्य सिद्धान्तों के अनुशासन से सर्वथा मुक्त स्वप्निल स्मृतियों के सहारे रचनात्मक कल्पनाशक्ति के आधार पर मनोनुकूल शब्दचित्ररचना का प्रयोग किया जाता है।

ऐरिक क्लिंगर के मतानुसार आन्तरिक अनुभवों के अन्तर्गत कथा-निर्मितियाँ योजना निर्माण, अतीतानुचिन्तन, बीती हुई घटनाओं का विश्लेषण, आगामी स्थितियों की पूर्वकल्पना स्वप्नानुभव आदि इसके घटक हो सकते हैं। यह जानने का दावा कोई भी नहीं करता कि किसी फन्टासी का निश्चित रूप से कहाँ अन्त होता है।[2] फ्रॉइडीय मनोविज्ञान ने फैंटसी के अध्ययन को नयी दिशा दी। जहाँ वे स्वप्नगत फैंटसी को जीवनगत अनुभवों का विघटित रूपांकन मानते हैं और इनका अध्ययन मन की अतल गहराइयों की खोज निकालने का प्रयास है। इंगलिश ऐण्ड इंगलिश में फैंटसी की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि, "किसी जटिल वस्तु या संघटना की बिम्बरूपात्मक ठोस प्रतीक कल्पना, चाहे स्वयं उन प्रतीकों और बिम्बों का अस्तित्व हो या न हो फन्टासी है

1- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : सूरदास : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं0- 2030.

2- क्लिंगर ऐण्ड स्ट्रक्चर ऐण्ड फंक्शन्स ऑफ फैन्टसी, 1971, पृ0- 7.

1

जैसे कि दिवास्वप्न ।" फन्टासी की प्रवृत्ति आमतौर से निर्बाध होती है कुछ आकस्मिक परिस्थितियों को छोड़कर ।

मुक्तिबोध, कामायनी एक पुनर्विचार में फन्टासी को विवेचित करने का प्रयास किया है जहाँ वे फन्टासी के निरूपण में अवचेतन तत्व पर अधिक बल दिया है, वे उसके भीतर जीवन तथ्यों की उपस्थिति अक्षय मानते हैं। फन्टासी की रचना प्रक्रिया में अवचेतन की प्रदेयता को नकारा नहीं जा सकता और जहाँ तक मुक्तिबोध की जिज्ञासाओं का प्रश्न है फैंटसी उसका मूल तत्व है, उन्होंने उसी के द्वारा अर्थ एवं सन्दर्भ को उभारा है। वे फैंटसी के सन्दर्भ में कहते हैं कि, "फैंटसी में मन की निगूढ़ वृत्तियों का, अनुभूत जीवन समस्याओं का, इच्छित विश्वासों और इच्छित जीवन स्थितियों का प्रक्षेप होता है। यहाँ कल्पना का मूल कार्य मन के निगूढ़ तत्वों को प्रोद्भासित करते हुए विभिन्न रंगों में उन्हें अपने समस्त सौन्दर्य के साथ उद्घाटित करना बाहता है। ---------------- फन्टासी के प्रयोग से "जीवन ज्ञान" को कल्पना के रंगों में प्रस्तुत किया जा सकता है और "वास्तविकता के प्रदीर्घ चित्रण" से बचा जा सकता है।[2] समसामयिक परिवेश एवं सन्दर्भों के अतिरिक्त इतिहास, पुराण की घटनाओं को भी फन्टासी के कथावस्तु के रूप में ग्रहण किया जाता है। फन्टासी का संसार मनोरचना का संसार है। मन की ही तरह फन्टासी की रचनाशीलता जटिल कौतूहलपूर्ण और आकस्मिक हुआ करती है।

1- डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव : मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य, पृष्ठ - 41.

2- मुक्तिबोध : कामायनी : एक पुनर्विचार, पृ0- 14.

[ख] आन्तरिक तत्त्व

1- लय

[अ] छन्दविधान और लय :- छन्द कविता का परम्परागत तथा अतिरिक्त अलंकार मात्र न होकर कविता के निर्माण में सहायक उसकी संरचना का महत्त्वपूर्ण अंग है। छन्द काव्य सम्प्रेषण का अनिवार्य माध्यम है। जीवन्ट ने छन्द को काव्य- सम्प्रेषण का अनिवार्य माध्यम न मानने वालों की धारणा को "गलात्मक भ्रान्ति" घोषित करते हुए कहा कि कविता के लिए छन्द इसलिए अनिवार्य है कि काव्यात्मकता की पूर्णता उसकी माँग करती है। इसी सन्दर्भ में यह भी स्पष्ट है कि लय छन्द की आत्मा है अर्थात् लयात्मकता छन्द की अनिवार्य शर्त है। कविता की प्रकृति एवं कवि की संवेदना ही छन्द की लयात्मकता का निर्धारण करती है। लय के अभाव में छन्द की परिकल्पना सम्भव नहीं। लय के सम्बन्ध में इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में उद्धृत है कि - "लय से अभिप्राय विविध कालावधियों के मध्य आविर्भूत होने वाली वस्तुओं की गति एवं गति विषयक ऐसे समानुपात करते हैं जो इन्द्रियबोध्य हों।"[1] अतः लय का छन्द में मुख्य उद्देश्य उसे इन्द्रियबोध के योग्य बनाना है, जिससे पाठक कवि की भावनाओं सम्वेदन एवं अनुभूतियों को सहजतापूर्वक ग्रहण कर सके। अरस्तू ने काव्य की दो मूल प्रेरणाएँ मानी हैं -

1- अनुकरण की प्रवृत्ति,

2- संगीतात्मक लय।

उनके अनुसार छन्द स्पष्टतः लय का ही रूप विधायक अंग है। लय अपने आप में एक इन्द्रिय संवेद्य किन्तु अमूर्त तत्त्व है जो शब्दबद्ध होकर छन्द का रूप

1- इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका - 23, पृ0- 96।

धारण कर लेता है। इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट है कि कविता में लय छन्द का अनुगामी नहीं प्रत्युत छन्द ही लय का आधार लेकर खड़ा होता है। छन्द लय को काट- छाँट कर एक नियम के अन्तर्गत लाता है, अतः एक दृष्टि से छन्दात्मकता कविता को उसके स्वच्छन्द लय से हटाती ही है। पाश्चात्य विद्वान् एडवर्ड सपीर का मानना है कि प्रत्येक शब्द एवं प्रत्येक अक्षर की अपनी संकेत-शक्ति एवं लय होती है। उनका कहना है कि- "प्रत्येक शब्द में भाषा या वाक्य के रूप में ध्वनियों का अनुक्रम ही अंकित होता है। किसी शब्द या शब्दांश या शब्दसमूह में प्राप्त होने वाली ध्वनियों का अनुक्रम ही सामान्य रूप से भाषाओं का सांकेतिक तत्त्व है।"[1]

काव्य की यथार्थ गति और उसके सृजन के लिए छन्द ज्ञान की आवश्यकता होती है। छन्द निर्माण की प्रक्रिया में सामान्यतः दो प्रकार की समस्याएँ कवि के सामने आती हैं - प्रथम, काव्य की रचना- प्रक्रिया और छन्द निरूपण तथा दूसरा काव्य का सहज स्वभाव । ये दोनों तत्त्व छन्दों के निर्माण के गहरे स्तर तक प्रभावित करते हैं । छन्द के स्वरूप निर्धारण का प्रयास हिन्दी शब्दकोश में इस प्रकार किया गया है - "अक्षर, अक्षरों की संख्या एवं क्रम, मात्रा, मात्रा-गणना तथा यति- गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना छन्द कहलाती है। "छन्द" शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख "ऋग्वेद" में मिलता है। इसकी व्युत्पत्ति छद् धातु से मानी गयी है, जिसका अर्थ आवृत्त करने या रक्षित करने के साथ- साथ प्रसन्न करना भी होता है। प्रसन्न करने के ही अर्थ में"निघंटु" में "छद" धातु भी मिलती है। कुछ विद्वानों का मत है कि इसी से छन्द धातु को सम्बद्ध मानना अधिक युक्तिसंगत है ।

छन्द का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कॉलरिज महोदय छन्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहते हैं, "छन्द का मूल स्रोत मन की उस असंतुलित

1- उद्धृत नयी समीक्षा, सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ०- 78.

आस्था में निहित है जो भावों के आवेश को नियंत्रित करने के लिए कवि के मन में सहज रूप से उत्पन्न प्रयास का परिणाम होती है। छन्द का मुख्य कार्य लय को रूप देना नहीं है अपितु वह साधारण बोलचाल में प्रयुक्त गद्य को नियमित करता है अर्थात् साधारण गद्य को जब हम कविता के रूप में रखते हैं तो लय का सहारा लेते हैं। आई० ए० रिचर्ड्स का मत है कि, "छन्द कवि और पाठक दोनों को सम्भावित लयों के अनिश्चित एवं विस्तृत संसार में एक सुदृढ़ आधार तथा अभिविन्यास का एक निश्चित बिन्दु देता है।"[2] इस प्रकार रिचर्ड्स लय को छन्द का विशिष्टीकरण मानते हैं, जहाँ भाषा की प्राकृतिक लयों के बीच छन्द एक लय योजना है जो कविता के छन्द को निकट ले जाती है। पाश्चात्य विचारक रैंसम कविता को अभिप्रेत अर्थ और अभिप्रेत छन्द के अनुकूलतम रूपों के मध्य समझौते की परिणति मानते हैं। छन्द किसी ऐसी वस्तु की ओर संकेत करता है जिसका सम्बन्ध किसी शब्द, किसी पंक्ति या पदांश की ध्वनि से होता है।[3]

कविवर सुमित्रानन्दन पंत पल्लव की भूमिका में छन्द के सम्बन्ध में कहते हैं कि - "छन्द हमारे प्राणों का संगीत है, छन्द हृत्कंपन, कविता का स्वभाव ही छन्द में लयमान होना है।[4] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भाषा के प्रवाह धर्म को छन्द मानते हैं और व्यापक परिप्रेक्ष्य में चूँकि गद्य में भी किसी न किसी प्रकार का प्रवाह रहता है अतः वहाँ भी छन्द रहता है जबकि नगेन्द्र छन्द को "श्रौत बिम्बविधान" के रूप में देखते हैं तो भी वे उसके व्यापक अर्थ की ओर संकेत करते हैं। वे श्रौत बिम्बविधान का नाम रूढ़ शब्दावली में छन्द है[5] मानते हैं।

1- वर्ड्सवर्थ और कोलरिज : समीक्षा सिद्धान्त : डॉ० विक्रमादित्य राय, पृ०- 59- 60•
2- प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म : आई० ए० रिचर्ड्स, पृ०- 231•
3- जान क्रो रैंसम : द न्यू क्रिटिसिज्म, पृ०- 229•
4- सुमित्रानन्दन पंत : पल्लव की भूमिका, पृ०- 21•
5- आलोचक की आस्था : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ०-14•

अज्ञेय छन्द को काव्यभाषा का प्रमुख तत्त्व स्वीकार करते हैं लेकिन वे छन्द की प्राचीन रूढ़ब्द्ध मात्रिक परिपाटी को नहीं स्वीकार करते हैं। सामान्यतः अक्षरों की संख्या, मात्रा अथवा वर्णगणना एवं यति- गति आदि से सम्बन्धित विशिष्ट नियमों से नियोजित पद्य रचना छन्द कहलाती है किन्तु अज्ञेय का मानना है कि, "छन्द का अर्थ केवल तुक या बँधी हुई समान स्वर मात्रा या वर्ण संख्या नहीं है ------------ छन्द योजना का ही नाम है। जहाँ भाषा की गति नियन्त्रित है वहाँ छन्द है।"[1]

लय को आज के कवि न केवल स्वीकार करते हैं प्रत्युत उसे काव्य का एक महत्त्वपूर्ण गुण भी मानते हैं। लय उत्पन्न करने में सर्वाधिक सहायता स्वरों से मिलती है, नये कवियों ने स्वरबोध को साधने की चेष्टा की है। स्वयं अज्ञेय ने स्वर योजना को छन्द का एक आवश्यक गुण माना है,[2] अज्ञेय ने कविता में अनुभूति के साथ भाषा एवं लय की संगति रखने का प्रयास किया है जो कवितायें गद्यात्मक हैं वहाँ भी स्वर ध्वनियों से आन्तरिक लय उत्पन्न कर लिया गया है। लय उत्पन्न करने के साधनों में नादात्मक, अनुरणात्मक एवं स्फोटात्मक शब्दों का सहारा लेने के साथ-साथ कवि ने काकु की भी मदद लिलेह ली है।

वस्तुतः आधुनिक छन्दों में लय की बढ़ती महत्ता ने पुराने रूढ़ि विधान को खण्डित किया है लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि आधुनिक कवियों ने लय के प्रति बढ़ते मोह में पड़कर पुराने छन्दों को एकदम तिरस्कृत कर दिया है वे अपनी भाषिक क्षमता के अनुसार आज भी अपनी कविता की सम्प्रेषणीता में विस्तार लाने के लिए विभिन्न रूपों एवं स्तरों पर उसका उपयोग कर रहे हैं।

1- जोगलिखी : अज्ञेय, पृ०- 190.
2- भवन्ती : अज्ञेय, पृ०- 27.

(ख) अर्थ लय :-

------------- नयी कविता की उद्भावना के साथ उसके प्रवर्तकों ने कविता में अर्थ लय की बात की है। डॉ० जगदीश गुप्त पद्य को कविता की सबसे बड़ी और पुरानी रूढ़ि मानते हैं। उनके मत से हिन्दी साहित्य में इसलिए हाहाकार मच गया है कि नयी या प्रगतिवादी कविता इस रूढ़ि को भंग कर आगे बढ़ गयी है। वे कविता के लिए लय को अनिवार्य तो मानते हैं पर उनका यह भी कहना है कि, "लय शब्द की ही नहीं अर्थ की भी होती है।"[1] इस प्रकार वे नयी समीक्षा के अन्तर्गत अर्थ की लय विषयक मान्यता का प्रतिपादन करने का उपक्रम करते दीखते हैं किन्तु वे अर्थ की लय धारणा के प्रतिपादन के लिए जिन महानुभावों को उद्धृत करते हैं वे सभी निरापद रूप से अर्थ की लय की ओर संकेत न करके काव्य पर केवल अर्थ की महत्ता पर ही प्रकाश डालते हैं। डॉ० जगदीश गुप्त आई० ए० रिचर्ड्स के विचारों में, "अर्थ की लय" का सम्यक् आधार ढूँढ़ने की चेष्टा करते हैं। आई० ए० रिचर्ड्स का कथन है कि, "काव्य में लय केवल शब्द तक सीमित नहीं है। पढ़ने वाले पर उसका प्रभाव अर्थ के साथ संयुक्त होकर पड़ता है, अतः बिना अर्थ का विचार किए अच्छी- बुरी लय का अन्तर कविता में नहीं किया जा सकता।"[2] रिचर्ड्स का आग्रह शब्द और अर्थ की सम्पृक्तता और तज्जन्य लय की प्रभविष्णुता पर है। उनका यह मत कदापि नहीं है कि, "अर्थ की लय" जैसी कोई सत्ता है। उनका अभिप्राय केवल यह है कि शब्द और लय के संयोजन- मात्र से काव्य की सृष्टि नहीं होती, अपितु काव्य की पूरी अभिव्यक्ति अर्थ के सम्यक् समावेश पर ही दी जा सकती है। रिचर्ड्स आगे लिखते हैं कि, "शब्द की लय विचार करने पर अन्ततः अर्थ और भाव की समष्टि में ही पहचानी जाती है जिसमें हमारी मानसिक चेतना की लय समाहित ह रहती है।"[3]

1- नयी कविता : अंक - 2, सम्पादक जगदीश गुप्त

2- प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म : आई० ए० रिचर्ड्स, पृ०- 227.

3- प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म: आई० ए० रिचर्ड्स, पृ०- 229.

साथ ही वे इलियट तथा हर्बर्ट रीड का उदाहरण अपने मत को पुष्ट करने के लिए देते हैं। डॉ० जगदीश गुप्त आई० ए० रिचर्ड्स के मत का सहारा अपने मत प्रतिपादन के लिए करते हैं। डॉ० जगदीश गुप्त कहते हैं कि, "[कलाकृतियों में] अपने विशेष संस्पर्श से भावना को उद्दीप्त करने की क्षमता रहती है। सूक्ष्म अध्ययन के द्वारा लय तत्त्व का जीवन से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध प्रमाणित होता है। उसकी व्याप्ति चेतना के क्षेत्र में बहुत गहरी है। हृदय गति, श्वास-प्रश्वास ऋतु-चक्र आदि का अनुभव तो क्रमिक रूप में तो होता ही है, जीवविज्ञान में जैविक शक्ति के साधारण क्रियाकलाप में भी वैज्ञानिकों को लयात्मक रूप "पैटर्न" की स्थिति परिलक्षित होती है। मानव मस्तिष्क की प्रक्रिया भी लययुक्त सिद्ध हुई है।"[1] स्पष्ट है कि वे इसमें भी लय की महत्ता प्रतिपादित कर उसकी सार्वभौमिकता की ओर संकेत कर रहे हैं। उनका मानना है कि कविता में लय की अतिशय संगति इसलिए होती है क्योंकि कविता मानव हृदय की गहराई और भावसंवेगों की विशिष्ट क्षमों में आन्तरिक लय रूप से परिलक्षित गति का प्रतिफलन है। इस प्रकार वे निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं कि, "उपर्युक्त मान्यता से से सही होने पर गहराई से युक्त गतिशीलता का स्वरूप उस शब्दार्थ में अवश्य ही लक्षित होना चाहिए जो उसका अनिवार्य धारक है।"[2] लेकिन केवल अर्थ ही "गहराई से युक्त गतिशीलता का धारक नहीं होता अपितु उसे प्रकट करने के लिए उचित एवं सार्थक शब्दों की भी आवश्यकता पड़ती है। बिना शब्द के जैसे अर्थ एवं उसके संकेतों की उद्भावना नहीं होती उसी प्रकार उसमें प्रवाह की गतिशीलता भी नहीं आती। डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव इस बात से सहमत हैं कि, "भाषा की प्रकृति लयवती है। प्रत्येक उच्चरित शब्द वायु में विशेष कम्पन उत्पन्न करता है और इसी कम्पन की लहर से हमारे श्रवणेन्द्रिय का स्पर्श होता

1- नयी कविता, अंक - 3 : सं० जगदीश गुप्त, पृ०- 7
2- वही, पृ०- 7·

है। ----- उच्चारण वास्तव में शब्द एवं अर्थ को लय समन्वित करने का साधन है। ----- भाषा की लक्षणा व्यंजना आदि शक्तियाँ शब्द ध्वनि के उतार-चढ़ाव में ही व्यक्त होती हैं।"[1]

अर्थ की लयात्मकता का यह तात्पर्य नहीं कि आधुनिक कवियों ने लय के प्रति बढ़ते मोह ने पुराने छन्दों को एकदम तिरस्कृत कर दिया हो। आधुनिक कवियों में जो भी अच्छे एवं समर्थ कवि हुए उन्होंने अपनी कविताओं में पुराने छन्दों का परिष्कार करके हुए उसे नया रूप देने की कोशिश की है। आज की कविताओं में पुराने छन्दशास्त्र के बरवै, कवित्त, वीर, हरिगीतिका, रोला, मालिनी आदि छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। छन्दशास्त्र के पुराने नियमों के नष्ट हो जाने के कारण आज कविता में इनका प्रयोग कवि की सामर्थ्य एवं उसकी भाषिक क्षमता पर निर्भर करता है।

स्पष्ट है कि आज के कवि छन्द के नियमों में कविता को नहीं ढालते वरन् छन्द को साधने का प्रयास करते हैं और उसी के अनुरूप अर्थात् उस सिद्ध छन्द की लय के अनुरूप ही कविता की लयात्मकता को ले जाते हैं। छन्दों के नियमों में कविता करना तथा छन्द को साधने में ठीक वही अन्तर है जो मन्त्र पाठक और मन्त्रद्रष्टा में। आज छन्द के प्राचीन परम्परागत नियमों के बन्धन में कविता का निर्वाह नहीं होता है। कवि केवल छन्द की प्रकृति एवं लय को ही कविता में अपने साथ रखता है।

1- कवि कर्म और काव्यभाषा : डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव, पृ०- 80.

2- व्यंजना

यह शब्दशक्ति शब्द के मुख्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ को पीछे छोड़कर उसके मूल में छिपे हुए अकथित अर्थ को द्योतित कराती है। शब्दशक्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं - अभिधाशब्दशक्ति, लक्षणाशब्दशक्ति तथा व्यंजनाशब्दशक्ति। व्यंजना को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है कि -

> यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणासमुपास्यते
> फलेशब्दैकगम्येऽत्र व्यंजनान्नापराक्रिया ।।
> नाभिधासमया भावात् हेत्वभावान्न लक्षणा । [1]

अर्थात् इसकी प्रतीति कराने के लिए लाक्षणिक शब्द का आश्रय लिया जाता है। शब्द से केवल गम्य (प्राप्य) उस (फल) के विषय में व्यंजना के अतिरिक्त शब्द का कोई व्यापार नहीं हो सकता। संकेतग्रह न होने से वह अभिधा भी नहीं है और मुख्यार्थ बाधादि हेतुत्रय के अभाव में वह लक्षणा भी नहीं है, इस प्रकार इन दोनों से भिन्न व्यंजना नामक व्यापार है। साहित्य दर्पणकार पण्डितराज विश्वनाथ के अनुसार -

> विरतस्वाभिधाद्यासु ययार्थो बोध्यते परः ।
> सा वृत्ति व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च [2] ।।

अभिधा तथा लक्षणा अपने अर्थ का बोध कराकर जब विरत हो जाती हैं तब जिस शब्दशक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ प्राप्त होता है। उसे व्यंजना व्यापार कहते हैं। व्यंजना शब्द पर ही नहीं वरन् अर्थ पर भी आधारित रहती है अर्थात् वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ भी व्यंजना कराया करते हैं, वे भी व्यंजक बन जाते हैं।

व्यंजना व्यापार के दो भेद होते हैं -
(1) शाब्दी व्यंजना, (2) आर्थी व्यंजना ।

1- काव्यप्रकाश : आचार्य मम्मट, 2/12
2- साहित्यदर्पण : आचार्य विश्वनाथ, पृ0- 39.

शाब्दी व्यंजना के दो भेद किए जाते हैं -

[क] अभिधामूला- शाब्दी व्यंजना :- जहाँ श्लेष के माध्यम से प्राकरणिक एवं अप्राकरणिक अर्थ की प्रतीति बिना मुख्यार्थ बाधा के कराई जाए वहाँ अभिधा-मूला शाब्दी व्यंजना होती है ।

> अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते ।
> संयोगाद्यैरवाच्यार्थ धीकृद् व्यापृतिरंजनम् ।।[1]

अर्थात् संयोग आदि के द्वारा अनेकार्थ शब्दों के वक्क वाचकत्व के [किसी एक अर्थ में] नियंत्रित हो जाने पर [उससे भिन्न] अवाच्य अर्थ की प्रतीति प्रतीति कराने वाला शब्द का व्यापार अभिधामूला व्यंजना है ।

[ख] लक्षणामूलाशाब्दी व्यंजना :- इसको परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट का कहना है कि -

> यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणासमुपास्यते ।
> फले शब्दैक गम्येऽत्र व्यंजनान्नापरा क्रिया ।।[2]

अर्थात् जिस प्रयोजन की प्रतीति कराने के लिए लाक्षणिक शब्द का आश्रय लिया जाता है, केवल शब्द से गम्य उस फल[ज्ञान] के विषय में व्यंजना के अति-रिक्त और कोई व्यापार नहीं हो सकता। अर्थात् लक्षणा में शब्द का मुख्यार्थ बाधित रहता है। यह अर्थ बाधा किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए वक्ता द्वारा जानबूझ कर उपस्थित की जाती है ।

2- आर्थी व्यंजना - आर्थी- व्यंजना को तीन भागों में विभक्त किया जाता है-

[क] वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना :- सामान्य अभिधेयार्थ के पश्चात् भी जब वाक्य विशेष में निर्दिष्ट अर्थ स्फुट होकर प्रतीत नहीं होता तो जिस शक्ति का

1- काव्यप्रकाश : आचार्य मम्मट, 2•19

2- वही, 2• 14•

उपयोग करके तथा वाक्य में निर्दिष्ट किसी पद के आधार पर वक्ता, सम्बोध्यादि को माध्यम बनाकर अर्थ की प्रतीति कराई जाती है।

{5} लक्ष्यसम्भवा आर्थी व्यंजना :- मुख्यार्थ की बाधा के पश्चात भी जब अर्थ में स्पष्टता नहीं रही तब जहाँ वस्तु बोधव्य, काकु आदि को आधार बनाकर जिस अन्य अर्थ की प्रतीति कराई जाए, उसे लक्ष्यसम्भवा आर्थी व्यंजना कहते हैं।

{ग} व्यंग्य सम्भवा आर्थी व्यंजना :- व्यंग्यार्थ की प्रतीति जहाँ अपने में निहित अर्थ को स्पष्ट करने में असमर्थ हो, वहाँ उसी को आधार बनाकर वक्ता, बोधव्य, काकु आदि के माध्यम से निहित व्यंग्यार्थ को स्पष्ट किया जाए,वहाँ व्यंग्यसम्भवा आर्थी व्यंजना होती है ।

3- विरोधाभास

आधुनिक आलोचना में विरोधाभास विसंगति एवं विरोध का अर्थ समाहित करके प्रयुक्त हुआ है। डॉ० बच्चन सिंह के अनुसार नयी आलोचना में जिसे पेराडाक्स कहते हैं और जिसका अनुवाद विसंगति किया जाता है वह एक तरह से संस्कृत का"विरोधाभास" अलंकार ही है - "अविरोधेऽपि विरूद्धत्वेन यद्वः:" अर्थात् जहाँ विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति हो अत: इसमें असंगति एवं विरोध को अन्तर्मुक्त किया जा सकता है।" आधुनिक आलोचना में इसके अर्थ को विस्तार दे दिया गया है। अलंकार से बाहर निकालकर यह विचलन के सम्पूर्ण क्षेत्र को अपने में समेट लेता है। दूसरे शब्दों में इसे वक्रोक्ति कहा जा सकता है।"[1]

1- आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द : डॉ० बच्चन सिंह, पृ०-92-93.

4- विडम्बना

आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द में डॉ० बच्चन सिंह ने इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि, "आज के जटिल जीवन बोध को अभिव्यक्त करने की एक सशक्त साहित्यिक प्रविधि है। व्यंग्य, विनोद, कटूक्ति, हास्य आदि को इसमें समाहित तो किया जा सकता है पर विडम्बना इनसे अधिक व्यापक व एवं गम्भीर है। इसमें शब्दों का कौतुकपरक ऐसा संयोजन होता है जिसमें शब्द एवं सन्दर्भ में दूरी दिखाई पड़ने लगती है। यह क्रीड़ापरक भी होता है और गम्भीर भी। लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार इसमें शब्दों, बिम्बों और उनके साथ स्थितियों के चयन और संयोजन में, "शरारतपूर्ण सह- संयोजन" होना चाहिए। वे पुनः लिखते हैं कि जब शब्दों के प्रति पूजा का भाव हो, बिम्बों के प्रति मोह हो, स्थितियों को जानने के प्रति तथ्य दृष्टि न हो और अर्थों के प्रति व्यामोह हो तो इनसे उबरने के लिए कुछ शरारतें करनी चाहिए और निजी सन्दर्भ से शब्दों की दूरी समाप्त हो जायेगी। ऐसी स्थिति में काव्य की संरचना में हलकापन आ जाएगा जो मूल्य का भी हलकापन है।[1]

1- आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द : डॉ० बच्चन सिंह, पृ०- 32.

द्वितीय अध्याय

काव्यभाषा संरचना तथा आधुनिक हिन्दी कविता : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

(ख) भारतेन्दु युग : काव्यभाषा की संरचना -

भारतेन्दु युग खड़ी बोली काव्यभाषा के प्रयोग का युग है। भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों ने खड़ी बोली को गद्य की भाषा के रूप में बिना किसी विवाद के स्वीकार कर लिया किन्तु दुर्भाग्य से कविता के क्षेत्र में ऐसा नहीं हो सका। इसका प्रमुख कारण एक तरफ जहाँ काव्यभाषा के रूप में ब्रज की भक्ति एवं रीतिकाल से चली आ रही प्रतिष्ठा थी वहीं दूसरी तरफ इसके पूर्व काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली की सुदीर्घ एवं समृद्ध परम्परा का न होना भी था। इसीलिए भारतेन्दु- युग में खड़ी बोली काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने के लिए लगातार संघर्ष करती हुई दिखाई पड़ती है और इसके बाद भी वह ब्रज के प्रभावों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो सकी है। इसका एक प्रमुख कारण तत्कालीन कवियों की विषयवस्तु है। इन कवियों ने विषयवस्तु के रूप में रूढ़ प्रसंगों को ही ग्रहण किया है और उसके लिए ब्रजभाषा की एक सहज स्वाभाविक परम्परा पहले से ही थी, ऐसे में खड़ी बोली का प्रयोग तत्कालीन कवियों के लिए अस्वाभाविक प्रतीत हुआ। लेकिन इन्हीं कवियों ने जब- जब विषयवस्तु के रूप में समसामयिक सन्दर्भों को ग्रहण किया वहाँ उन्हें खड़ी बोली ही काव्यभाषा के रूप में उपयुक्त प्रतीत हुई । प्रारम्भ में यद्यपि इन कवियों ने आधुनिकता के बढ़ते हुए प्रभाव को ब्रजभाषा में कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा आदि के माध्यम से व्यक्त करने की कोशिश की पर उन्हें अपेक्षित सफलता न मिल सकी, क्योंकि सामन्ती परिवेश में विकसित हुई ब्रजभाषा में राष्ट्रीयता एवं अन्य ज्वलन्त समस्याओं को व्यक्त करने की सामर्थ्य नहीं थी। डॉ० कपिलदेव सिंह का मानना है कि "भारतेन्दु युग के कविगण नवीन भावनाओं से उद्बुद्ध हो ब्रजभाषा में रचनाएँ करते रहे किन्तु "गोकुल के गोरस से पली खिली" ब्रजभाषा आधुनिक युग के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि तापों को

वहन करने में असमर्थ थी। इसी से विवश होकर उसको अपना स्थान खड़ी बोली के लिए रिक्त करना पड़ा ।"[1] इस तरह भारतेन्दुयुगीन कवियों के महत्वपूर्ण योगदान के बलते आगे चलकर खड़ी बोली काव्यभाषा के रूप में पूर्णरूप से प्रतिष्ठित होने में सफल रही। भारतेन्दुयुगीन काव्यभाषा संरचना का संक्षिप्त विवेचन निम्नवत् है -

व्याकरणिक संरचना :-

व्याकरणिक संरचना आलंकारिक तथा लयात्मक संरचना की अपेक्षा स्थिर होती है। इसके रूप में विशेष बदलाव की गुंजाइश नहीं रहती। फिर भी भाषा के विकासशील प्रक्रिया तथा सामाजिक प्रचलन के कारण समय-समय पर अनेक ज्ञात परिवर्तन होते रहते हैं। प्रयोग के स्तर पर इस तरह के बदलाव काव्यभाषा की व्याकरणिक संरचना को प्रभावित करते हैं। भारतेन्दुयुगीन कवियों ने ब्रजभाषा के पारम्परिक रूप को परिष्कृत करके सामसामयिक आवश्यकताओं से सम्बद्ध कर दिया। बंगला, गुजराती, पंजाबी, राजस्थानी, उर्दू, संस्कृत आदि भाषा में काव्यरचना करके इन कवियों ने अपने भाषिक ज्ञान और रचनाशक्ति का परिचय दिया है। भारतेन्दुयुगीन काव्यभाषा के व्याकरणिक संरचना के अंगों का संक्षिप्त रूप निम्नवत् है -

1- वर्णयोजना :-

भारतेन्दुयुगीन कविता में वर्णों की योजना शब्दालंकारों की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इन कवियों को चित्र एवं भाव के अनुरूप वर्णों के संयोजन में विशेष सफलता मिली है। उन्होंने वर्ण ध्वनियों के द्वारा वातावरण का सजीव चित्र भी प्रस्तुत किया है। ध्वनियों के माध्यम से "रात की भयानकता" और वर्षा ऋतु के चित्र सजीव हो उठे हैं -

> सन सन करके रात सनकती झींगुर झनकारें ।
> कभी- कभी दादुर रटकर जिय व्याकुल कर डारें ।।
> साँप अण्डहर पर ठनकारें ।
> गिरें करारे टूट टूट के नदी छलक मारें ।।[2]

1- ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली, पृ0- 10·
2- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग- 2, पृ0-439·

ये सम्पूर्ण ध्वनियाँ अपनी गूँज के साथ अभिष्ट चित्र को स्पष्ट कर देती हैं। कहीं- कहीं ओजपूर्ण भावचित्रों की रचना में इस वर्णयोजना के चलते क्रियात्मक शक्ति भी आ जाती है। भारतेन्दुयुगीन कवियों के काव्य में सरलता एवं भावाभिव्यंजना को अनुकूलतमता प्रदान करने के लिए वर्णमैत्री का प्रयोग बड़े सहज ढंग से हुआ है -

> ठेलन में झुकि झूलें झुलनियाँ ।
> पेंगिया लाल- लाल रँग सारी कारी लट लटकाए नगिनियाँ ।।
> गावे हँसे बजाइ रिझावे गात हुलावे अपनी छिगुनियाँ ।
> हरीचन्द रंग मस्त पिया के फिरै प्रेम- माती मतजिनियाँ ।।[1]

यहाँ झुकि झूले झुलनियाँ, गावे हँसे बजाइ रिझावे, माती मतजिनियाँ आदि शब्द गूँज संगीत के मधुर गूँज पैदा करते हैं। इस तरह भारतेन्दुयुगीन कवियों ने वर्णों का काव्यभाषा की व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से प्रभावी उपयोग किया है ।

2- शब्द- योजना :- भारतेन्दुयुगीन कवियों की कविताओं में शब्दों का अत्यधिक वैविध्यपूर्ण प्रयोग दिखाई पड़ता है। जिसका प्रमुख कारण काव्यभाषा के रूप में किसी भाषा का रूप स्वीकार न होना है। किन्तु काव्यरचना के लिए ब्रजभाषा को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया है,इसलिए इन कवियों का अधिकांश काव्यसाहित्य ब्रजभाषा में ही उपलब्ध है। ब्रजभाषा के अतिरिक्त इन कवियों ने तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी आदि सभी जगहों से शब्दों को ग्रहण किया है ।

(क) तत्सम शब्दावली :- भारतेन्दुयुगीन कवियों ने संस्कृत की तत्सम शब्दावली के प्रयोग के प्रति विशेष रुचि नहीं दिखलाई है। इसका कारण यह है कि

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग - 2, पृ0- 385.

उन्हें जन एवं व्यवहारिक भाषा के माध्यम से काव्य से विमुख होती हुई जन आकांक्षाओं को आकर्षित करना था, फिर भी भक्ति सम्बन्धी पदों में तत्सम शब्दावली की अधिकता देखने को मिलती है -

> जयति आनन्द रूप परमानन्द कृष्णमुख ,
> कृपानिधि देवि उद्धारकारी ।
> स्मृति मात्र सकल आरति हरन सुख,
> गुन भागवत अर्थ लीनो विचारी ।।[1]

तत्सम शब्दों में भी इन कवियों ने कोमल वर्णों को रखकर कविता का प्रवाह सुरक्षित रखने की कोशिश की है ।

(ख) तद्भव शब्दावली :- भारतेन्दुयुगीन कवियों की शब्दसम्पदा का मूल स्रोत तद्भव शब्द ही है। ये कवि भाषा को व्यावहारिक रूप देने के लिए काव्य में तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है जिसके कारण उनके काव्य की सम्प्रेषणीता बढ़ गई है। इन कवियों ने सामान्यतः जोग, अब अछूत, अवरज, संजोग, समरथ, गुन, परसाद, प्रीतम, पूरन, पन, अरविन्द, जुवती, फागुन, विरहिन, रितु आदि तद्भव शब्दों का प्रयोग किया है ।

(ग) विदेशी शब्द :- हिन्दी, उर्दू के अतिरिक्त इस समय अंग्रेजी भाषा और साहित्य का भी कवियों पर पर्याप्त प्रभाव था। इसीलिए इस समय के कवियों की रचनाओं में इन तीनों भाषाओं के शब्दों का व्यापक रूप में प्रयोग दिखाई पड़ता है -

> वकील तोप सलामी की औअल दर्ज का काम सभी ।
> क्लास, थाथ, स्टार हुए महाराज बहादुर नाम सभी।।
> जग अस पाया मुलक कमाया किया खूब आराम सभी ।
> सार न जाना रहा भुलाना राम बिना बेकाम सभी ।।[2]

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग- 2, पृ0- 714.
2- वही, पृ0- 865.

विदेशी शब्दों की दृष्टि से इस समय सामान्यतः अरबी- फारसी तथा अंग्रेजी के शब्दों को ग्रहण किया गया है। लेकिन ये शब्द प्रचलित शब्द हैं जो लोगों द्वारा सामान्य बोलचाल के रूप में प्रयुक्त होते थे। उदाहरण के रूप में -
[1] अरबी- फारसी = बेपर्दा, बेफिक्र, बेहया, बेमज़हब मशहूर रहे।"[1]
[2] अंग्रेजी शब्द -

> पहिरि कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर।
> माखु वरदी वरचि लैंडर की लगाई फिर[2]।।

3- मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ -
------------------------ भारतेन्दुयुगीन काव्य में मुहावरों तथा कहावतों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। इसका प्रमुख कारण यह है कि ये तत्त्व इस समय काव्यभाषा संरचना के महत्त्वपूर्ण रूप थे। इनके प्रयोग से ये कवि कविता में कथ्य की अभिव्यक्ति में तीव्रता, तथा भाषा एवं भाव में सजीवता लाने की कोशिश की है -

> हरीचन्द अंगहु हवाले परे रोगन के
> सोगन के भाले परे तन बल हसके।
> पगन में छाले परे नाँघिबे को नाले परे
> तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के[3]।।

मुहावरों के अतिरिक्त दैनिक जीवन में प्रचलित होने वाली कहावतों का प्रयोग भी इस समय की कविताओं में दिखाई पड़ता है। कवियों द्वारा प्रयुक्त अधिकांश कहावतें भावों की तीव्रता को ही स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त की गई है, कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

---

1- प्रताप लहरी, पृ0- 75.
2- अम्बिकादत्त व्यास : भारतधर्म, पृ0- 75.
3- भारतेन्दु ग्रन्थावली : भाग- 2, पृ0- 170.

{1} प्रीतम पियारो नन्दलाल बिनु हाय यह,
सावन की रात किधौं द्रौपदी की सारी है।"

{2} साँचो भई कहनावति वा अरी ऊँची दुकान की फीको मिठाई।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग में हिन्दी खड़ी बोली काव्यभाषा की व्याकरणिक संरचना का रूप अत्यन्त लचीला है। इसे उस युग के कवियों की शब्द- प्रयोग में विशेष रूप से देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन कवियों ने काव्यभाषा के व्याकरणिक ढाँचे को समृद्ध करने के लिए वर्णयोजना एवं मुहावरों तथा कहावतों का भी सुन्दर एवं कलात्मक प्रयोग किया है।

{ख} शैल्पिक- संरचना -

भारतेन्दुयुगीन कवियों के साथ रीतिकालीन काव्यपरम्परा का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। इसलिए इस युग की शैल्पिक संरचना का रूप परम्परागत ही रहा है। कविताओं की विषयवस्तु श्रृंगार एवं प्रकृति वर्णन की ही है साथ ही स्वच्छंदता भी पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा इन कवियों की कविताओं में अधिक दिखाई पड़ती है। शैल्पिक संरचना की दृष्टि से भारतेन्दुयुगीन कवियों का विश्लेषण निम्नवत् रूप में देखा जा सकता है -

1- अलंकार :- भारतेन्दुयुगीन कवियों की कविताओं में अलंकारों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक है। अलंकार इस युग की शैल्पिक संरचना का सबसे प्रभावी तत्त्व है। ये कवि अपनी कविता में चमत्कृत लाने के लिए दोनों प्रकार के अलंकारों {शब्दालंकार एवं अर्थालंकार} का प्रयोग किया है।

शब्दालंकार :- इस युग के कवियों ने शब्दालंकारों का प्रयोग प्रायः कविता में संगीतात्मकता उत्पन्न करने के लिए किया है जिससे श्रवण एवं पठन के स्तर

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग- 2, पृ0- 159.
2- वही, पृ0- 171.

पर ही आ जाता पाठक या श्रोता पर अपना प्रभाव डाल सके। इसमें कवियों ने वर्णों के उचित संयोजन से कविता में विशिष्ट प्रकार का चमत्कार एवं कौतूहल की सृष्टि वृष्टि की है -

दामिनी दमक दसो दिसि दावत,
छुटि ज्वत छित छोर ।
मन्द मन्द मारुत मन मोहत,
मत्त मधुप गन सोर ।

यहाँ द, छ, म आदि कोमल वर्णों की कलात्मक आवृत्ति द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने की कोशिश है जो अनुप्रास के माध्यम से कविता में प्रयुक्त हुआ है। शब्दालंकार में अनुप्रास के अतिरिक्त इन कवियों ने यमक अलंकार का भी प्रयोग किया है जो कविता में पाठक के स्तर पर चमत्कृति एवं रंजन के लिए है -

1- जरी माधवी कुन्ज में माधव अति बेहाल ।
मधु ऋतु माधव मास में तो बिनु व्याकुल बाल ।।[2]

2- प्रभा प्रकृति प्रगटाती है अम्बर का अम्बर फाड़- फाड़[3]

प्रथम में "माधव" शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है जहाँ पहली जगह कृष्ण एवं दूसरी जगह बसन्त ऋतु का अर्थ दे रहा है, इसी तरह दूसरे उदाहरण में प्रथम अम्बर- आकाश का दूसरा वस्त्र का द्योतक है। अतः यहाँ यमक अलंकार है। इसी तरह श्लेष एवं काकु वक्रोक्ति के भी प्रयोग दिखते हैं लेकिन ये शब्दालंकार कवियों द्वारा बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं ।

अर्थालंकार - भारतेन्दुयुगीन कवियों ने अर्थालंकारों में विशेषकर सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है। इन सादृश्यमूलक अलंकारों में भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि ही प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं -

---

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग - 2, पृ0- 125.
2- वही, पृ0- 784.
3- प्रेमघन सर्वस्व, पृ0- 523.

वर्णों के उचित संयोजन से कविता में विशिष्ट प्रकार का चमत्कार एवं कौतूहल की वृद्धि सृष्टि की है -

दामिनी दमक दसों दिसि दावत,
छुटि ज्वत पित छोर ।
मन्द मन्द मारूत मन मोदत,
मत्त मधुप गन सोर ।

यहाँ द, छ, म आदि कोमल वर्णों की आत्मक आवृत्ति द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने की कोशिश है जो अनुप्रास के माध्यम से कविता में प्रयुक्त हुआ है। शब्दालंकार में अनुप्रास के अतिरिक्त इन कवियों ने यमक अलंकार का भी प्रयोग किया है जो कविता में पाठक के स्तर पर चमत्कृति एवं रंजन के लिए है -

1- जरी माधवी कुन्ज में माधव अति बेहाल ।
मधु ऋतु माधव मास में लौ बिनु व्याकुल बाल ।।[2]

2- प्रभा प्रकृति प्रगटाती है अम्बर का अम्बर फाड़- फाड़[3]

प्रथम में "माधव" शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है जहाँ पहली जगह कृष्ण एवं दूसरी जगह बसन्त ऋतु का अर्थ दे रहा है, इसी तरह दूसरे उदाहरण में प्रथम अम्बर- आकाश का दूसरा वस्त्र का द्योतक है। अतः यहाँ यमक अलंकार है। इसी तरह श्लेष एवं काकु वक्रोक्ति के भी प्रयोग दिखते हैं लेकिन ये शब्दालंकार कवियों द्वारा बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं ।

अर्थालंकार - भारतेन्दुयुगीन कवियों ने अर्थालंकारों में विशेषकर सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग अधिक किया है। इन सादृश्यमूलक अलंकारों में भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि ही प्रमुख रूप से प्रयुक्त हुए हैं -

---

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग - 2, पृ0- 125.
2- वही, पृ0- 784.
3- प्रेमघन सर्वस्व, पृ0- 523.

1- उपमा :- उपमा अलंकार में उपमानों की योजना परम्परागत ही है। ये उपमान अधिकतर रूपसाम्य, प्रभावसाम्य एवं गुणसाम्य को ही आधार ग्रहण करके आए हैं और सामान्यतया ये उपमान प्रकृति से ही ग्रहण किए गए हैं -

> नागरी रूप जग की सोहै ।
> कमल सो बदन पल्लव से कर पद देखत ही मन मोहै ।।
> अलसी- कुसुम सी बनी नासिका जलज पत्र से नयन ।
> बिम्ब से अधर कुन्द दन्तावलि मदन- बान सी सयन।।[1]

यहाँ भारतेन्दु ने रूप सौन्दर्य के चित्रण में विभिन्न परम्परागत उपमानों को लाकर उपमालंकार की योजना की है ।

2- रूपक :- रूपक की योजना भी सामान्यतया परम्परागत ही रही है और उपमान मूलरूप से प्रकृति से ही ग्रहण किए गए हैं -

> आजु लन आनन्द- सरिता बाढ़ी
> निरखत मुख प्रीतम प्यारे को प्रीति तरंगिनि काढ़ी ।।
> लोकवेद दोउ कूल सरोवर गिरे न रहे सम्हारे ।
> चाव भाव के भरे सरोवर चहे चोवके नारे[2] ।।

> शुभ आशा- सुगन्ध फैलाता,
> मन- मधुकर ललचाता[3] ।

यहाँ आनन्द-सरिता, प्रीति- तरंगिनि, लोकवेद दोउ कूल सरोवर, चाव भाव के भरे सरोवर, आशा- सुगन्ध और मन- मधुकर आदि अमूर्त भाव एवं स्थितियों को व्यक्त करने के लिए रूपकों की योजना की गयी है।

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग- 2, पृ0- 456.
2- वही, पृ0- 116.
3- प्रेमघन सर्वस्व, भाग-1, पृ0- 373.

3- उत्प्रेक्षा :-
---------- यहाँ भी भारतेन्दुयुगीन कवियों ने रूढ़ एवं परम्परागत अप्रस्तुतों का ही चयन किया है, परन्तु कहीं- कहीं नवीन कल्पनाओं की भी उद्भावना दिखती है -

(I) श्याम सरस मुख पर अति शोभित लनिक अबीर सुहाई ।
नील कुंज पर अरुन किरिन की मनहुँ परी परछाईं[1] ।।

(II) आँधी चन्दन धूरि की सी उड़ी है,
धारा मानों दूध की है बरसती ।।

दोनों उद्धरणों में उत्प्रेक्षागत कल्पनाएँ अत्यन्त मनोहारी एवं हृदय-ग्राही है ।

4- सन्देह :-
---------- इस समय की कविता अपनी वर्णन परिपाटी में रीतिकालीन काव्य से अधिक प्रभावित होने के कारण भारतेन्दुयुगीन कवियों ने शृंगारपक्ष में कौतुक लाने के लिए सन्देह अलंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है -

(I) मोहि मोहि मोहन- मई री मन मेरो भयो,
हरिचंद भेद ना परत कछु जान है ।
कान्ह भये प्रानमय प्रान भये कान्हमय
हिय में न जाने परै कान्ह है कि प्रान है[2] ।

(II) इन्द्र या इन्द्र का क्षत्र या ताज या,
स्वर्ग गजराज के भाल का साज या[3] ।

स्पष्ट है कि भारतेन्दुयुगीन अर्थालंकारों का उद्देश्य भावों एवं अनुभूतियों को तीव्रता प्रदान करना था और ये कवि इसमें सफल भी हुए हैं लेकिन साथ ही रीतिकालीन प्रभाव के चलते इनकी रचनाओं में चमत्कार एवं कौतूहल उत्पन्न करने की प्रवृत्ति प्राधान्य हो उठी है। ये उपमान अधिकांशत: प्रकृति

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग- 2, पृ0- 394 ·
2- वही, पृ0- 146 ·
3- श्रीधर पाठक : काव्य संग्रह, पृ0-17 ·

से ग्रहण किए हुए परम्परागत उपमान हैं। ये और ये अपनी स्वदु संवेदना के कारण नयी अनुभूति को उभारने में सफल नहीं हो सके हैं, फिर भी इन कवियों की अलंकारयोजना प्रतिपाद्य के अनुकूल मधुर एवं प्रभावशाली सम्प्रेषणीयता से युक्त स्वाभाविक एवं सजीव है।

2. प्रतीक :- भारतेन्दु- युग में प्रतीक प्रभावशाली अभिव्यंजनाप्रणाली के रूप में विकसित नहीं हुआ था। लेकिन आध्यात्मिक एवं श्रृंगारिक वर्णन के प्रसंग में इनका परम्परा से उपयोग होता रहा है। अतः इस समय के कवियों ने आध्यात्म एवं श्रृंगार के वर्णन में परम्परागत प्रतीकों का उपयोग किया है। आध्यात्मिक प्रतीक जहाँ भक्तिकालीन काव्यपरम्परा {विशेषकर निर्गुण काव्य परंपरा} से आए हैं वहीं श्रृंगारिक प्रतीक रीतिकालीन कविताओं से ग्रहण किए गए हैं। इसके अतिरिक्त भारतेन्दुयुगीन कवियों ने कहीं- कहीं नये ढंग के प्रतीकों का भी प्रयोग किया है जो राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हैं और तत्कालीन शासन एवं शासक पर व्यंग्य है।

{क} आध्यात्मिक प्रतीक :- ईश्वर, ब्रह्म, जीव, जगत आदि को लेकर ही इन कवियों ने आध्यात्मिक प्रतीकों की योजना की है -

> बिरह प्रगट करि जोति से मिलाई जोति ।
> करि पतंग- नेम धरम लाज- ओट डारि छोरि ।।[1]

यहाँ "जोति से मिलाई जोति" ब्रह्म एवं जीव के मिलन का संकेत करता है जबकि पतंग- जीव का प्रतीक है।

{ख} श्रृंगारिक प्रतीक :- नायक, नायिका, प्रतिनायक आदि के मनोगत स्वभावों को रखने के लिए ही श्रृंगारिक प्रतीकों का उपयोग हुआ है -

> भौंरा के रस के लोभी तेरा का परमान ।
> तू रस मस्त फिरत फूलन पर करि अपने मुख गान ।।[2]

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग- 2, पृ०- 82.
2- वही, पृ०- 191.

(ग) नये प्रतीक (राष्ट्रीय प्रतीक) :- अंग्रेजों की कपटपूर्ण शासन पद्धति और देश की अवस्थाओं को व्यक्त करने के लिए इन कवियों ने नये प्रकार के प्रतीकों का उपयोग किया है -

> घोत सिंह की नाद जौन भारत- वन मांही,
> तहँ अब ससक सियार स्वान खर आदि लखाहीं ।
> जहँ झूसी, उज्जैन, अवध, कन्नौज रहे वर,
> तहँ अब रोवत सिवा चहूँ दिसि लखियत खँडहर ।।

यहाँ सिंह वीरों का प्रतीक, ससक सियार- निर्बल एवं कायरों का प्रतीक, स्वान- चाटुकारों का प्रतीक, खर- मूर्खों का प्रतीक, खँडहर - वैभवहीनता का प्रतीक है।

3- बिम्बयोजना :- भारतेन्दुयुगीन कवियों में उत्प्रेक्षा अलंकार के वर्णन में या अतिशयोक्ति अलंकार के वर्णन में बिम्बों की योजना दिखाई पड़ती है। ये बिम्ब अधिकांशतः सांस्कृतिक धरातल पर ही प्रतिष्ठित हैं -

> तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये ।
> झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये ।।
> किधौं मुकुर में लखत उझकि अब निज- निज सोभा।
> कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ।।
> मनु आतप वारन तीर कौ सीमिटि सबै छाये रहत ।
> कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत[1]।।

यहाँ हरि सेवा हित झुकि वृक्षों से अर्घ्यदान की मुद्रा का बिम्ब अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ा है। इसके अतिरिक्त इन कवियों में जनजीवन से भी बिम्बों को ग्रहण करने की कोशिश दिखाई पड़ती है -

> चिलम सरिस मुख बाये बैठता, तिसपर तुमको पाऊँ[2]।

इस तरह के कलात्मक एवं प्रभावशाली बिम्ब सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में कहीं- कहीं ही दिखाई देते हैं ।

इस तरह शैल्पिक संरचना की दृष्टि से भारतेन्दुयुगीन कवियों पर रीति-काल का अत्यधिक प्रभाव है और अधिकांशतः रूढ़ एवं परम्परागत उपादान ही प्रयुक्त हुए हैं लेकिन इसके बावजूद भी इन कवियों ने अपनी कविता में शिल्प की दृष्टि से कुछ न कुछ नवीनता लाने की कोशिश भी की है।

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग- 2, पृ०- 35.
2- प्रेमघन सर्वस्व, पृ०- 191.

(ग) आन्तरिक संरचना

भारतेन्दुयुगीन ब्रजभाषा की आन्तरिक संरचना का मूल आधार छन्द ही रहा है। अपनी कविता को प्रभावी बनाने के लिए सभी कवियों ने छन्द का विविध ढंग से उपयोग किया है। इन कवियों की लय योजना अधिकांशतः संस्कृत के पारम्परिक छः वर्णिक एवं मात्रिक छन्दों पर ही आधारित है। इन कवियों ने पारम्परिक छन्दों के अतिरिक्त अपनी कविताओं में फारसी के छान्दिक लयों, एवं लोकगीतों के लयों को भी ग्रहण किया है। इसे भारतेन्दुयुगीन कविता की दृष्टि से निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है -

(क) पारम्परिक छन्द :- भारतेन्दुयुगीन कवियों ने परम्परा से आए हुए वर्णिक एवं मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया है। इन छन्दों में चौपाई, दोहा, सोरठा, रोला, सरसी, छप्पय, कुण्डलियाँ, दण्डक, कवित्त, घनाक्षरी, सवैया आदि सभी संस्कृत के प्रसिद्ध छन्दों का प्रयोग है। इन कवियों की कविताओं में जहाँ देश की दुर्दशा उसकी विपन्नता का वर्णन करना अभीष्ट है वहाँ इन कवियों ने दोहा, चौपाई, सोरठा का ही प्रयोग सामान्यतः किया है -

हाय वहै भारत भुव भारी	-	16 मात्राएँ
सब ही विधि तें भई दुखारी	-	16 मात्राएँ
रोम ग्रीस पुनि निज बल पायो	-	16 मात्राएँ
सब विधि भारत दुखित बनायो	-	16 मात्राएँ

प्रत्येक चरण में 16 मात्रा प्रयोग के साथ यहाँ पर चौपाई छन्द का प्रयोग हुआ है।

इसी तरह जहाँ कवि को श्रृंगारिक वर्णन, या प्रकृति वर्णन अभीष्ट है वहाँ इन कवियों ने सवैया आदि छन्दों का प्रयोग किया है -

जानति हो सब मोहन के गुन तौ प्रति प्रेम कहा जिय लीनो ।
त्यों हरिचन्द जू त्यागि सबै चित्त मोहन के रस रूप मैं भीनो।।
तोरि दई उन प्रीति उतै अपवाद इतै जग को हम लीनो ।
हाय बु सखी इन हाथन सों अपने पग आप कुठार मैं दीनो ।।

यह सात भगण एवं दो गुरु के साथ मतगयन्द छन्द है।

फारसी छन्दों पर आधारित लय :- भारतेन्दुयुगीन कवियों ने हिन्दी भाषा की समृद्धि एवं कविता की सम्प्रेषणीयता में वृद्धि करने के लिए फारसी छन्दों पर आधारित गज़लें, लावनियाँ आदि लिखी हैं। इस तरह की कविताएँ प्रायः सभी भारतेन्दुयुगीन कवियों ने लिखी हैं -

> हे जो मद्दे नज़र विसाल उसे ।
> दम बदम मुख पै आँख पड़ती है ।।
> वस्ल में भी नहीं है चैन मुझे ।
> ख्वाहिशे दिल जियाद बढ़ती है ।।[2]

लोकगीतों पर आधारित लय :- भारतेन्दुयुगीन सभी कवियों ने अपनी कविताओं को जनसामान्य के निकट रखने के लिए लोकगीतों के लयों को लेकर कविताएँ की। इन कवियों ने कजली, ठुमरी, कहरवा, चैती, होली, बिरहा इत्यादि लोकगीतों को लेकर कविताएँ की। इस तरह की कविताएँ भारतेन्दु-युग के प्रायः सभी कवियों ने लिखी, क्योंकि इसमें लोगों की भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति होती है। होली इन कवियों का सबसे प्रिय लोकगीत है -

> चल करू अब ऊधम बहुत भयो ।
> भीजि गई रंग सों मेरी सारी अबीर गुलाल बसन छयो ।।
> झकझोरन में कर मेरो मुरक्यो कंकन बाजू टूट गयो ।
> हरीचन्द तेरे पाँच परत गारी मति दे अपजस बहुत दयो ।।[3]

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग- 2, पृ0- 171.
2- वही, पृ0- 360.
3- वही, पृ0- 337.

शास्त्रीय संगीत पर आधारित कविता -

भारतेन्दुयुगीन कवियों, विशेष रूप से भारतेन्दु ने शास्त्रीय संगीत पर आधारित राग- रागनियों के नामों को आधार बनाकर भी कविताएं की। भारतेन्दु ने अपनी कविता के अनुरूप कोमल, मधुर रागों को ही ग्रहण किया है। ये राग- रागनियाँ मुख्य रूप से श्रृंगार एवं भक्तिपूर्ण भावनाओं को ही अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुई है। इन रागों में मुख्यतः राग, सारंग, केदारा, रामकली, आसावरी, भैरव, हमीर, गोरी, इमन, कल्याण, भीम पलासी, मालकौस, मलार आदि है -

> पौढ़े दोउ आलस के रस भीने ।
> नींद न लेत अरूझि रहे दोउ केलिकथा चित दीने ।।
> सैसव सीतल सेज बिछाई सखि छिड़कन कर लीने ।
> हरीचन्द आलस भरि सोए औढ़िके पट झीने[1] ।।

इसमें राग विहाग का उपयोग हुआ है। लेकिन खड़ीबोली में इस तरह के प्रयोग बहुत कम दिखाई पड़ते हैं ।

भारतेन्दुयुगीन काव्यभाषा संरचना को निष्कर्ष रूप में इस तरह रखा जा सकता है -

व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से भारतेन्दुयुगीन कवियों ने अपनी प्रकृति एवं अनुभूतियों के अनुरूप वर्णों तथा शब्दों की योजना की है। इन कवियों ने संस्कृत, देशज, अरबी- फारसी, अंग्रेजी तथा बोलियों से शब्दों को लेकर अपने काव्य को समृद्ध बनाया है। काव्य में सजीवता एवं स्वाभाविकता लाने के लिए मुहावरे तथा लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया गया है ।

शैल्पिक संरचना के पारम्परिक रूप में भारतेन्दु-युग में भी कोई खास बदलाव नहीं आया है। रीतिकालीन कविता से प्रभावित होने के कारण अलंकारों का महत्व बना हुआ है। कविता में चमत्कार लाने के लिए शब्दालंकारों का प्रयो

1- भारतेन्दुसमग्र, पृ०- 198 ·

तथा अनुभूतियों की अभिव्यक्ति देने के लिए अर्थालंकारों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त परम्परागत प्रतीकों एवं बिम्बों का भी प्रयोग हुआ है लेकिन साथ ही देश की समस्याओं को उभारने में नवीन प्रतीकों एवं बिम्बों की भी योजना दिखाई पड़ती है।

आन्तरिक संरचना की दृष्टि से भारतेन्दु-युग अत्यन्त समृद्ध है। इन कवियों ने लयों के प्रयोग में सम्भावित क सभी रूपों को ग्रहण करके कविता की है। उदाहरण के रूप में संस्कृत के पारम्परिक वार्णिक तथा मात्रिक छन्द, फारसी के लय पर आधारित, लोकगीतों के लय, तथा शास्त्रीय संगीत के राग-रागनियों के लयों को आधार बनाकर कविताएँ की हैं।

(ख) द्विवेदी युग : काव्यभाषा संरचना

द्विवेदीयुगीन रचनाकारों ने भारतेन्दु- युग की गद्य में प्रयुक्त होने वाली खड़ी बोली को काव्यभाषा के रूप में अपनाया और गद्य एवं पद्य की भाषा को एक किया। द्विवेदी जी ने खड़ी बोली कविता की जनसामान्य शब्दावली एवं फारसी- उर्दू के शब्दों के स्थान पर संस्कृत से शब्द ग्रहण करने पर बल दिया। इसमें उनकी सरस्वती के सम्पादक होने की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही। उन्होंने सरस्वती के माध्यम से कवियों का लगातार निर्देशन किया। इस समय में कवियों द्वारा प्रयुक्त शब्दों की निज की संवेदना विकसित न होने के कारण अर्थबोध तरल एवं सपाट है। इन कवियों की कविताओं का निर्माण प्रतिक्रियावादी एवं सुधारवादी प्रवृत्तियों से हुआ है और इसलिए उनमें अनुभव की अपेक्षा युग के सामान्य विचारप्रवाह के प्रति अधिक आस्था है। द्विवेदी जी ने तत्कालीन काव्यभाषा में प्रयुक्त होने वाली भाषा को व्याकरण सम्मत रखने की पूरी कोशिश की है। उनका विचार था कि व्याकरण अशुद्धि कविता को शीघ्र पतनोन्मुख कर देती है।

खड़ी बोली के काव्यभाषा के स्तर पर प्रथम प्रयोग के कारण द्विवेदीयुग की काव्यभाषा में एक प्रकार की सपाटता है। पद्य के वाक्य भी गद्य से लगते हैं। उनकी भाषा में काव्य के सौन्दर्यविधायक तत्वों का ऐसा प्रयोग नहीं मिलता जो संवेदना के स्तर पर पाठक को चमत्कृत कर सके। और यदि सौन्दर्यविधायक तत्वों का प्रयोग (चाहे भावप्रधान हो या कलाप्रधान) हुआ है तो उनका भी स्तर अत्यन्त सामान्य कोटि का है। शब्दविकृति द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा की एक प्रमुख विशेषता है। इस युग के कवियों ने शब्दों को बहुत तोड़ा मरोड़ा है और इस प्रवृत्ति से उनके युग का कोई भी कविमुक्त नहीं है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रभाव इतना अधिक है कि वे इस बात को भूल जाते थे कि वे हिन्दी में कविता लिख रहे हैं, यहाँ तक कि ठेठ संस्कृत के शब्दों का प्रयोग संस्कृत के मूल अर्थ में ही होता था, दूसरे। अतिवादी दृष्टि उर्दू की थी जिधर अपेक्षाकृत कम कवि हैं ।

द्विवेदीयुगीन कवियों ने भावों एवं कविता में भाषा की सरलता की बात करते हुए भी कविता में चमत्कार लाने के लिए प्रयत्नशील रहे। लेकिन वे काव्य में सौन्दर्यविधायक उपादानों के अनावश्यक प्रयोग के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना है कि सामान्य भाषा और काव्यभाषा में कुछ न कुछ अन्तर होता ही है और यह अन्तर अर्थ सम्बन्धी चमत्कार है। वस्तुतः किसी भी भाषा की काव्यभाषा के रूप में सफलता उस भाषा के शब्द-सामर्थ्य पर निर्भर होती है क्योंकि जिस भाषा में भिन्न- भिन्न क्रियाओं एवं भिन्न- भिन्न भावों के लिए अलग शब्द न हो, उसकी काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठा सम्भव नहीं। तत्सम शब्दों के अतिरिक्त इस युग के कवियों नेब मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग किया है। इनमें हरिऔध प्रमुख हैं। अलंकारों एवं शब्दशक्तियों का सहारा लेकर अनेक प्रकार के चित्र भी उपस्थित किए गए हैं। छन्दों में मुख्यतः संस्कृत के छन्दों पर बल मिलता है लेकिन बंगला एवं उर्दू के छन्दों पर भी जोर है। साथ ही तुकान्तता एवं अतुकान्तता की प्रवृत्ति भी कुछ कवियों में दिखाई देती है जो भावों के उचित प्रस्तुतीकरण के सन्दर्भ में ही है ।

खड़ी बोली के काव्यभाषा के स्तर पर प्रथम प्रयोग के कारण द्विवेदीयुग की काव्यभाषा में एक प्रकार की सपाटता है। पद्य के वाक्य भी गद्य से लगते हैं। उनकी भाषा में काव्य के सौन्दर्यविधायक तत्वों का ऐसा प्रयोग नहीं मिलता जो शैलगत के स्तर पर पाठक को चमत्कृत कर सके। और यदि सौन्दर्यविधायक तत्वों का प्रयोग (चाहे भावप्रधान हो या कलाप्रधान) हुआ है तो उनका भी स्तर अत्यन्त सामान्य कोटि का है। शब्दविकृति द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा की एक प्रमुख विशेषता है। इस युग के कवियों ने शब्दों को बहुत तोड़ा मरोड़ा है और इस प्रवृत्ति से उनके युग का कोई भी कविमुक्त नहीं है। संस्कृत के तत्सम शब्दों प्रयोगों का प्रभाव इतना अधिक है कि वे इस बात को भूल जाते थे कि वे हिन्दी में कविता लिख रहे हैं, यहाँ तक कि ठेठ संस्कृत के शब्दों का प्रयोग संस्कृत के मूल अर्थ में ही होता था, दूसरे। उपयोगितावादी दृष्टि उर्दू की भी जिधर अपेक्षाकृत कम कवि हैं।

द्विवेदीयुगीन कवियों ने भावों एवं कविता में भाषा की सरलता की बात करते हुए भी कविता में चमत्कार लाने के लिए प्रयत्नशील रहे। लेकिन वे काव्य में सौन्दर्यविधायक उपादानों के बलात् प्रयोग के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना है कि सामान्य भाषा और काव्यभाषा में कुछ न कुछ अन्तर होता ही है और यह अन्तर अर्थ सम्बन्धी चमत्कार है। वस्तुतः किसी भी भाषा की काव्यभाषा के रूप में सफलता उस भाषा के शब्द-सामर्थ्य पर निर्भर होती है क्योंकि जिस भाषा में भिन्न- भिन्न क्रियाओं एवं भिन्न- भिन्न भावों के लिए अलग शब्द न हो, उसकी काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठा सम्भव नहीं। तत्सम शब्दों के अतिरिक्त इस युग के कवियों नेब मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग किया है। इनमें हरिऔध प्रमुख हैं। अलंकारों एवं शब्दशक्तियों का सहारा लेकर अनेक प्रकार के चित्र भी उपस्थित किए गए हैं। छन्दों में मुख्यतः संस्कृत के छन्दों पर बल मिलता है लेकिन बंगला एवं उर्दू के छन्दों पर भी जोर है। साथ ही तुकान्तता एवं अतुकान्तता की प्रवृत्ति भी कुछ कवियों में दिखाई देती है जो भावों के उचित प्रस्तुतीकरण के सन्दर्भ में ही है।

[illegible] द्विवेदीयुगीन रचनाकारों ने [illegible] खड़ीबोली को [illegible] काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। [illegible] का ऐतिहासिक महत्वपूर्ण है। [illegible] विशेषताओं के प्रति लगातार सचेत रहते रहे। [illegible] काव्यभाषा [illegible] अपने भावगत और व्याकरण दोनों दृष्टियों से अत्यन्त सामान्य काव्यभाषा है क्योंकि अर्थ एवं विन्यास की दृष्टि से इसका परिष्कृत रूप विकसित नहीं हुआ है। खड़ीबोली को काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का यह प्रयास वस्तुतः छायावाद में आकर पूर्ण होता है जहाँ भाषा पहली बार विविध प्रयोगों के लिए तैयार मिलती है।

(क) व्याकरणिक संरचना -

द्विवेदीयुगीन कविता में व्याकरणिक संरचना के अवयवों की सहायता से कविता को शासित करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। यथासम्भव व्याकरण के नियमों का पालन करने की कोशिश द्विवेदीयुगीन कवियों ने की है। जिसके परिणामस्वरूप कविता में भावबाधित होते रहे हैं। यह भावस्खलन द्विवेदीयुगीन कविता की प्रमुख विशेषता है।

संज्ञा प्रयोग की दृष्टि से इन कवियों ने अधिकांशतः व्यक्तिवाचक संज्ञा का ही प्रयोग किया है जिसका प्रमुख कारण उनकी कविता की वर्णनात्मक प्रवृत्ति है। इन कवियों ने निजवाचक सर्वनाम "आप" का भी व्याकरणिक सन्दर्भों को देखने के कारण बड़ा अटपटा प्रयोग किया है। जिससे कविता की भावात्मकता एवं सम्प्रेषणीयता दोनों बाधक हुई है। द्विवेदीयुगीन कवियों ने सार्वनामिक विशेषणों का बहुत अधिक प्रयोग दिखाई पड़ता है। उदाहरण के लिए- यह, वह, कोई, ऐसा, वैसा, कुछ, कौन आदि विशेषण सामान्यतया प्रयुक्त हुए हैं। कविता की भाषा और गद्य की भाषा एक होने पर बल देने के कारण इन कवियों की आरम्भिक कविताएँ गद्य के अत्यन्त निकट हैं और उसमें भाव एवं व्यंग्यार्थ दोनों का अभाव दिखाई पड़ता है -

रहती जहाँ शाल, रसाल, तमाल के पादपों की अति छाया घनी।
वर के वृग आते, थके जहाँ बैठते थे मृग औ उसकी घरनी।
पगुराते हुए वृग मूँदे हुए वे मिटाते थकावट थे अपनी।
खुर से कभी कान खुजाते, कभी सिर, सींग पै धारते थे टहनी।।

यहाँ प्रयुक्त औ, जाते, खाते आदि व्याकरणिक रूप भी द्विवेदी युग में ही सामान्यतया दिखाई पड़ता है। इस तरह की अभिव्यक्ति अधिकांश कवियों में दिखाई पड़ती है। द्विवेदी युग का शब्दविन्यास एवं व्याकरण संस्कृत से प्रभावित होने के कारण कविता में समासबहुल संस्कृत पदविन्यासों की इतनी बड़ी- बड़ी योजना है कि हिन्दी क्रियायें है, था, किया, दिया आदि तक ही सिमटकर रह गयी हैं -

> रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दुबिम्बानना।
> तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ाकलापुत्तली।।
> शोभावारिधि की अमूल्यमणि सी लावण्यलीलामयी।
> श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्यसन्मूर्ति थी[2]।।

इसी संस्कृतमय रचनापद्धति के द्वारा कविता में सरसता लाने की कोशिश की है लेकिन वे न तो कविता में सरसता ही ला सके हैं और न ही विषय को स्पष्ट कर सके हैं। इस संस्कृत की ओर रुझान के कारण एक तरफ तो हिन्दी के कारक चिह्नों के प्रयोग का अभाव दिखाई पड़ता है वहीं दूसरी तरफ शब्द संस्कृत उपसर्गों से भरे पड़े हैं। साथ ही सम्बोधन की प्रवृत्ति भी संस्कृत की तरह दिखाई पड़ती है। लेकिन इन दोनों कर्मपद्धतियों से हटकर एक तीसरा रूप भी उस समय की कविता में दिखाई पड़ता है जिसे "भारत-भारती" में विशेष रूप से देखा जा सकता है। इसमें भाषा न परम्परागत रूप ब्रज के मोह में जकड़ी है और न ही संस्कृत की तत्सम शब्दावली से प्रभावित है, अतः उपर्युक्त दोनों रूप

1- मृगीदु:खमोचन : पं० लोचन प्रसाद पाण्डेय (उद्धृत हिन्दी साहित्य का इतिहास) - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (, पृ०- 421।

2- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध उद्धृत हिन्दी साहित्य का इतिहास- आ0 रामचन्द्र शुक्ल, पृ0-412।

द्विवेदी युग की कविता का प्रतिनिधित्व नहीं करते । उनके युग की कविता सहज, सरल एवं सपाट है -

> क्षत्रिय ! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो ।
> निज देश को जीवन रहित तन मन तथा धन भेंट दो ।
> वैश्यो ! सुनो व्यापार सारा मिट चुका है देश का ।
> सब धन विदेशी हर रहे हैं, पार है क्या क्लेश का ।।

इस समय के शब्दों को अधिकांशतः संस्कृत साहित्य से लिया गया है। संस्कृत तत्सम शब्दों की बहुलता के कारण संस्कृत की व्याकरणिक मनोवृत्ति भी कविता में आ गई है। यह व्याकरणिक मनोवृत्ति कवि की विवशता भी है। यह महत्वपूर्ण अतः इनकी कविताओं में सानुप्रासिक शब्दों की आवृत्ति व एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उदाहरण के रूप में - सेवागतता, प्रतिबिम्बता, सहजावृत्ता सरसता, कुंठिता आदि शब्दों को देखा जा सकता है। इस युग में शब्द एवं भाषि प्रौढ़ता कवि की दृष्टि से मैथलीशरण गुप्त अग्रिम हैं, उन्होंने अन्य कवियों से अधिक परिमार्जित अधिक नवीन और व्याकरणसम्मत भाषा का प्रयोग किया है जो आगे चलकर अन्य कवियों के लिए भी आदर्श बनी और प्रथम बार जनता के रूचि के अनुकूल भी रही फिर भी उनकी भाषा संस्कृत से अधिकांशतः प्रभावित है किन्तु बहुलता नहीं है और हरिऔध की भांति प्रचलित देशज शब्दों एवं मुहावरों का भी कलात्मक प्रयोग इस समय की कविता की विशेषता है। इसके अतिरिक्त श्री रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं में भाषा तथा व्याकरण की शुद्धता एवं पुष्टता के विचार से मुक्त संस्कृत तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त कतिपय अप्रचलित संस्कृत शब्दों, उर्दू के शब्दों एवं अन्य प्रादेशिक बोलियों के देशज शब्दों को भी ग्रहण किया गया है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं -

---

1- मैथिलीशरण गुप्त (भारत भारती , उद्धृत हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल), पृ0- 419.

संस्कृत शब्दावली -

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमंजु वीणा बजा रही है ।
सुरों के संगीत की सी कैसी सुरीली गुंजार आ रही है।
कोई पुरंदर की किंकरी है कि या किसी सुर की सुंदरी ।
वियोगतप्ता सी भोगमुक्ता हृदय के उद्गार गा रही है ।।[1]

उर्दू शब्दावली -

(1) तुम झूठे इलजाम लगाकर, ले आते हो पैसा- पैसाकर
जेवर जरी वगैरह चीजें तुम्हें मुबारिक रहे तमीं जे ।।[1]

(2) वह सुख जखे की ताब क्या है न जब लाते ।[2]

(3) पड़े कलाओं में जिस पेशाबी पर कभी न बल आया ।[3]

देशज शब्दावली - द्विवेदीयुगीन कवियों ने देशज शब्दावली का प्रयोग बहुतायत में किया है -

(1) किसे नहीं मोहती, देखने को कब उसे न रुचि ललकी ।
उनकी कनक कांति लीकों से लगी नीलिमा नभ तल की।।[4]

(2) सैल मैल न दृष्टि - कल लेना कहो ।[5]

(3) खींचकर मणि अचित मचिया हेम की[6]

1- महावीर प्रसाद द्विवेदी : शहर और गाँव, द्वि० सं०, पृ०- 413.
2- हरिऔध : प्रियप्रवास, पृ०- 41.
3- हरिऔध : वैदेही वनवास, पृ०- 57.
4- वही, पृ०- 55.
5- मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, पृ०- 34.
6- वही, पृ०- 34.

2- मुहावरे -

द्विवेदीयुगीन कविता में भी मुहावरों का व्यापक प्रयोग दिखाई पड़ता है। कवि मुहावरे की सहायता से कविता की व्याकरणिक संरचना में कलात्मकता लाने की कोशिश भी की है। पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं और मुहावरों को प्रयोग के कारण कविता में व्याकरणिक स्तर पर और भावों की अभिव्यक्ति के स्तर पर कविता में कलात्मकता आ गई है -

> क्यों पड़े पीस कर किसी को तू ,
> है बहुत पालिसी बुरी तेरी ।
> हम रहे चाहते पटाना ही,
> पेट तुझसे पटी नहीं मेरी ।।

स्पष्ट है कि द्विवेदीयुगीन कवियों ने हिन्दी खड़ी बोली की मुख्य कमी व्याकरण एवं शब्दभण्डार दोनों को दूर करने का अत्यधिक प्रयास किया और देशी, विदेशी सभी भाषाओं से शब्दों को लेकर अपने शब्दभण्डार को समृद्ध किया। यद्यपि व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से काव्यभाषा सामान्य स्तर की है और उसकी सम्प्रेषणीयता भी बहुत प्रभावी नहीं है लेकिन उत्तर द्विवेदीयुगीन कविताएँ अभिव्यंजना दृष्टि से प्रभावी हैं ।

(ख) शैल्पिक - संरचना

द्विवेदीयुगीन कविता संस्कृत काव्यपरम्परा से प्रभावित होने के कारण उसका शैल्पिक रूप भी संस्कृत काव्यशास्त्र से अधिक प्रभावित रहा। अतः इस युग में शैल्पिक संरचना का रूप सामान्यतया परम्परागत ही रहा। क्योंकि कविता की विषयवस्तु में कोई विशेष बदलाव नहीं आया। शैल्पिक संरचना की दृष्टि से द्विवेदीयुग का विश्लेषण निम्नवत् है -

1- अलंकार -

अलंकार द्विवेदीयुगीन शिल्पगत संरचना का प्रमुख आधार है। कवियों ने शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों प्रकार के अलंकारों का उपयोग अपनी कविताओं में किया है। शब्दालंकार जहाँ चमत्कृति एवं रंजकवृत्ति के कारण आए हैं वहीं अर्थालंकार कवियों द्वारा कविता में भावोत्कर्ष एवं अर्थोत्कर्ष के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

शब्दालंकार :- कविता में चमत्कार एवं रंजकता लाने के लिए इन कवियों ने शब्दालंकार का प्रयोग किया है। इसके लिए अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि अलंकार उपयोग में लाए हैं -

> लता लहलही लाल- लाल दल से लसी।
>
> भरती थी दृग में अनुराग ललामता[1]।।

यहाँ पर "ल" वर्ण की बार- बार आवृत्ति करके अनुप्रास के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने की कोशिश की गई है। कविता में कलात्मकता के लिए यमक एवं श्लेष अलंकार का प्रयोग कवियों ने किया है -

> विरह भार से नत मलाहगण, चले गुणवती नौका लेकर।
>
> कोई भी गुणवंती इनको भी खींच रही है क्या पद पद पर[2]।।

यहाँ गुणवती एवं गुणवंती के प्रयोग द्वारा यमक अलंकार का प्रयोग किया गया है।

1- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" : वैदेही वनवास, पृ0-45.
2- रामनरेश त्रिपाठी : स्वप्न. पृ0- 30.

अर्थालंकार :- द्विवेदी युग में भी सामान्यतः सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्रयोग अधिक हुआ है। द्विवेदीयुगीन कवियों ने भी अर्थालंकार की दृष्टि से परम्परागत उपमेय- उपमानों को ही ग्रहण किया है लेकिन कहीं- कहीं नवीन उपमानों की भी योजना दिखाई पड़ती है।

उपमा अलंकार में उपमानों की योजना परम्परागत ही है -

[1] चारु चन्द्रमा सम मुख मण्डल ।

यहाँ मुख की उपमा चन्द्रमा से दी गई है। इसी तरह एक अन्य उदाहरण -

तरल तोयधि तुंग तरंग लौं
निविड़ नीरद थे नभ घूमते
नवल सुन्दर श्याम शरीर की सजल नीरद सी कलकांति थी।[2]

यहाँ पर बादल की उपमा समुद्र से दी गई है तथा श्याम शरीर की उपमा बादल से दी गई है। अतः यहाँ प्रकृति एवं रूप सौन्दर्य के चित्रण में उपमा अलंकार की योजना की गई है। रूपक अलंकार की भी इसी तरह काव्य में प्रयोग हुआ है -

लिखकर लोहित लेख डूब गया है दिन अहा ।
व्योम- सिन्धु सखि देख तारक बुद- बुद दे रहा ।[3]

यहाँ समुद्र के साथ आकाश की अभेदता दिखाने के लिए रूपक अलंकार का कवि ने उपयोग किया है। यहाँ पर आकाश का रात्रिकालीन दृश्य है जो बुदबुद कर रहे समुद्र की तरह है। इसी तरह उत्प्रेक्षा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

---

1- द्विवेदी काव्यमाला : [कुमुदसुन्दरी], पृ०- 377·
2- हरिऔध : प्रियप्रवास, पृ०- 109·
3- मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, पृ०- 281·

साँझ को ही रात हुई उनको गहन में
धारे गगनस्थली ने तारे रत्न चुन के
चमके थे नूपुरों की रुन झुन सुन के
सुन पड़ी राग की नयी सी टेक उनको
उत्थित वसुंधरा से रत्नों की शलाका थी
किंवा अवतीर्ण हुई मूर्तिमती राका थी ।।

यहाँ पर कवि ने हेतुत्प्रेक्षा से तारों को हिडिम्बा के नूपुरों की ध्वनि से आहलादित आकाश द्वारा विकीर्ण रत्न माना है और हिडिम्बा को मूर्तिमती राका बनाकर प्रकृति का आलंकारिक वर्णन भी किया है। विरोधाभास का एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

हरी- भरी धरती है मेरी, मैं भी क्यों रूखी हूँ।
हिम में जलती, तप में कँपती, वर्षा में सूखी हूँ ।।

यहाँ कवि एकदम विरोधी कथनों के द्वारा कविता में चमत्कार लाने की कोशिश की है ।

शब्दशक्तियाँ -

------------ द्विवेदीयुग खड़ी बोली काव्यभाषा का प्रथम चरण होने के कारण इस समय की कविताएँ अभिधात्मक अधिक है लेकिन कहीं- कहीं लक्षणा एवं व्यंजना शब्दशक्तियों के भी उदाहरण मिलते हैं। शब्दशक्तियों की दृष्टि से द्विवेदीयुगीन कवियों में मैथलीशरण गुप्त अधिक प्रभावशाली हैं। गुप्त जी अभिधार्थ की सहज वाचकता को ही काव्य में महत्व देते हैं। इन कवियों ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों के सहारे भी रूढ़ि लक्षणाओं को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त दी है। इन कवियों के अभिधा पर अधिक बल देने से यह भी स्पष्ट है कि इनका उद्देश्य कविता में भाव पर अधिक जोर देने की रही है -

---

1- मैथिलीशरण गुप्त : हिडिम्बा, पृ0- 12.
2- मैथिलीशरण गुप्त : विष्णुप्रिया, पृ0-15.

क्यों न अब मैं मत्त गज सा झूम लूँ ?
कर- कमल लाओ तुम्हारा चूम लूँ ।
कर बढ़ाकर, जो कमल-सा था खिला,
मुस्कराई और बोली उर्मिला -
मत्त गज बनकर विवेक न छोड़ना
कर कमल कहकर न मेरा तोड़ना ।।[1]

यहाँ लक्ष्मण अपने को गज कहते हुए और उर्मिला के कर- कमलों को चूमने की कोशिश करते हैं तो उर्मिला कहती है कि मेरे कमल सदृश हाथों को सचमुच कमल समझकर तोड़ मत देना, क्योंकि हाथी के कमलों की सुन्दरता से कुछ लेना देना नहीं होता उसे तो कमलों को उखाड़कर फेंकने में आनन्द आता है। अतः यह अभिधा का उदाहरण है। कविता में कलात्मकता के लिए लक्षण शब्दशक्ति का भी प्रयोग हुआ है -

शिशिर, न फिर तू गिरि वन में,
जितना माँगे, पतझड़ दूँगी, मैं इस निज नंदन में ।[2]

यहाँ उर्मिला ने अपने शरीर के लिए "नन्दन" और विरहजनित क्षीणता के लिए "पतझड़" शब्द का प्रयोग किया है। द्विवेदीयुगीन कवियों में कहीं- कहीं व्यंजना के भी प्रयोग दिखाई पड़ते हैं लेकिन ऐसे प्रयोग बहुत कम हैं -

सात रही सखि माँ की
झाँकी वह चित्रकूट की मुझको,
बोली जब वे मुझसे -
मिला न वन ही न भवन ही तुझको ।[3]

1- मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, पृ०- 39.
2- वही, पृ०- 309.
3- वही, पृ०- 273.

यहाँ "भवन" शब्द में कवि ने व्यंग्यार्थ की योजना की है क्योंकि उर्मिला को तो भवन पहले से ही प्राप्त है अतः यहाँ भवन शब्द का प्रयोग "सुख" के लिए हुआ है ।

प्रतीक –
-------- द्विवेदीयुगीन कविता में प्रतीकों का काफी मात्रा में प्रयोग हुआ है, इसका प्रमुख कारण कवियों का अनेक सीमाओं से बँधे रहना है। फिर भी पर्याप्त परम्परागत आध्यात्मिक एवं शृंगारिक प्रतीकों का उपयोग हुआ है। आध्यात्मिक प्रतीक ईश्वर, माया, ब्रह्म, जीव, जगत आदि से ही जुड़कर कविता में आए हैं –

> गजराज पंक में धँसा हुआ, छटपट करता था फँसा हुआ ।
> हथिनियाँ पास चिल्लाती थीं, वे विवश विकल विललाती थीं।।[1]

यहाँ गजराज- विषयवासना में फँसे व्यक्ति का प्रतीक है, पंक- विषयवासना का प्रतीक है, तथा हथिनियाँ – इन्द्रियाँ का प्रतीक है। इन कवियों ने शृंगारिक प्रतीकों का अत्यधिक प्रयोग किया है –

> अलि बसी वापी में हंस बने बार- बार हम विहरे ।
> सुधकर उन छींटों की मेरे ये अंग आज भी सिहरे[2] ।।

हंस यहाँ पथवाहक का प्रतीक है ।

बिम्ब –
------ वैचारिक एवं प्रकृतिगत अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए द्विवेदीयुगीन कवियों ने काव्यबिम्बों का भी प्रयोग किया है। ये बिम्ब कविता में प्रयुक्त होकर चमत्कार एवं भावोत्कर्ष दोनों को व्यक्त करते हैं। ये बिम्ब हरिऔध और मैथिलीशरणगुप्त में विशेष रूप से देखे जा सकते हैं –

> सबने रानी की ओर अचानक देखा,[3]
> वैधव्य तुषारावृता यथा विधु लेखा ।

1- मैथिलीशरण गुप्त – साकेत, पृ0 - 174.
2- वही, पृ0- 398.
3- वही, पृ0- 247.

यहाँ पर कवि ने रानी के लिए "कुमारावृता विद्युलेखा" का बिम्ब प्रयुक्त किया है जो रानी की मानसिक अनुभूतियों के साथ रूप को भी स्पष्ट करने में पूर्णतः सफल रहा है। इसी तरह एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है -

मेरे चपल यौवन- बाल।
अचल अंचल में पड़ा सो मचलकर मत साल ।।[1]

यहाँ उर्मिला अपने यौवन के कारण उपजी कामगत- अनुभूतियों के लिए चपल बालक का बिम्ब रखा है। अतः यह ऐन्द्रिय बिम्ब है ।

(ग) आन्तरिक संरचना

द्विवेदीयुगीन आन्तरिक काव्यभाषा की संरचना मुख्यतः छन्दों पर ही आधारित है। द्विवेदीयुगीन काव्य संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण लयात्मकता के लिए इन कवियों ने संस्कृत के वार्णिक तथा मात्रिक छन्दों का ही मुख्यतः उपयोग किया है। हरिऔध ने अपना प्रियप्रवास आद्योपान्त संस्कृत वृत्तों में ही लिख डाला है। संस्कृत के पारम्परिक छन्दों का यथोचित निर्वाह होने के कारण कवियों को अत्यधिक कठिनाई का भी सामना करना पड़ा है। इस समय के कवियों द्वारा प्रयुक्त प्रमुख छन्दों में गीतिका, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शिखरिणी, द्रुतविलम्बित, रूपमाला, हरिगीतिका, मत्तगयन्द, बरवै, कवित्त, सवैया, चौपाई, वंशस्थ आदि हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

धैर्य देकर धीर मुनि ने ज्ञान के प्रस्ताव से,
तेल में रखवा दिया नृप- शव सुरक्षित भाव से ।
दूत भेजे दक्ष फिर सन्देश के अक्षर गिना,
जो बुला लावें भरत को प्रकृत वृत्त कहे बिना ।।[2]

इसके प्रत्येक चरण में 26 मात्राएँ हैं तथा यति 14-12 पर है अतः यहाँ गीतिका छन्द का उदाहरण है ।

1- मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, पृ0- 326.
2- वही, पृ0-

अपनी कविता की सम्प्रेषणीयता में विस्तार लाने के लिए इस युग के कवियों ने गीतों की भी रचना की है। इन गीतों के निर्माण की कई पद्धतियाँ दिखाई पड़ती हैं। जैसे - श्रीधर पाठक ने संस्कृत के गीतगोविन्द को आधार बनाकर अपनी कविताएँ की हैं तथा रामचरित उपाध्याय, वियोगीहरि आदि कवियों ने भक्तिकालीन गीतों के आधार पर गीत रचना की है। इसके अतिरिक्त कुछेक अन्य कवियों ने लोकगीतों को आधार बनाकर कविताएँ की हैं -

> झूम- झूम बरसी रे बदरिया ।
> झूम- झूम बरसी रे बदरिया ।।
> तप्त हृदय की ताप सिरानी,
> हुई मयूरों की मनमानी ।
> देखो जिधर उधर ही पानी,
> भरती सर सरसी रे बदरिया ।
> झूम- झूम बरसी रे बदरिया [1] ।।

द्विवेदीयुगीन कविता की आन्तरिक रचना पद्धति में एक मुख्य बदलाव यह आया कि कविता अतुकान्त भी होने लगी है। प्रसाद ने प्रेमपथिक और हरिऔध ने प्रियप्रवास की रचना इन्हीं अतुकान्त लयों के आधार पर किया है। कालान्तर में यह पद्धति कविता की प्रकृति के अनुकूल सिद्ध हुई -

> सुन अये ! यम, इन्द्र, कुबेर की न हिलती रसना मम सामने ।
> तदपि आज मुझे करना पड़ा मनुज सेवक से बकवाद भी ।
> यदि अये ! मम राक्षस राज का स्तवन है तुमसे न किया गया,
> कुछ नहीं डर है, पर क्यों वृथा मिलज ! मानव मान बढ़ा रहा [2] ।।

1- गयाप्रसाद शुक्ल सनेही : सनेही रचनावली, पृ०- 107.
2- पं० रामचरित उपाध्याय : उद्धृत हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ०- 411.

इसके अतिरिक्त द्विवेदीयुगीन कवियों ने अपनी कविताओं में उर्दू, बंगला आदि के छन्दों के लय को आधार बनाकर भी कविताएं कीं। इसमें उर्दू का रुबाई, गज़ल तथा बंगला का पयार छन्द प्रमुख है ।

§1§ ऐसे मेहमान कहाँ मिलते हैं ,
कौम की जान कहाँ मिलते हैं ।
है ये मुमकिन कि फरिश्ते मिल जाँय,
सच्चे इन्सान कहाँ मिलते हैं ? – §रुबाई§

§2§ जीवन भर जिसकी चाह रही,
जीते जी वह प्रियवर न मिला।
अर्पित करते यह अपुहार,
ऐसा कोई अवसर न मिला ।
बन-बन ढूँढ़ा योगी बनकर ,
दिशा दिशा में अलख जगा आये ।
है कहीं- यहीं पर उसका घर ,
घर- घर देखा वह घर न मिला । – §गज़ल§

इस तरह आन्तरिक संरचना की दृष्टि से द्विवेदीयुगीन कविता अत्यंत प्रभावशाली है। उन्होंने अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए विभिन्न लयात्मक संरचनाओं को साधने की कोशिश की है, जिसके कारण कविताओं की सम्प्रेषणीयता में अपेक्षित विस्तार आया है ।

1- सनेही रचनावली §सं० सम्मेलन पत्रिका§, पृ०- 207.

(ग) छायावाद : काव्यभाषा संरचना

(अ) व्याकरणिक संरचना :- खड़ीबोली हिन्दी का भाषिक संरचना की दृष्टि से काव्यभाषा के रूप में वास्तविक प्रयोग छायावाद से ही प्रारम्भ होता है। छायावादी काव्यभाषा के अन्तर्गत भाषिक संरचना के सभी भागों में कवियों ने मौलिकता का परिचय दिया है। इन कवियों ने संरचना के प्रत्येक स्तर पर संघर्ष किया है। हिन्दी काव्यभाषा की व्याकरणिक संरचना का रूप सामान्यतः पारंपरिक ही रहा है। ये मूल रूप से संस्कृत की व्याकरणिक संरचना के अवयव हैं। आधुनिक हिन्दी में यद्यपि उनका प्रयोग होता रहा लेकिन कविता में उनको रखने का ढंग बदल गया। ये रूप कविता को पूर्ण रूप देने के अतिरिक्त अब कविता में कलात्मकता लाने के भी साधन हो गए हैं।

व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से उनके प्रयोग विधि पर संस्कृत का पूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है। वर्ण विन्यास का प्रयोग संस्कृत की तरह नाद सौन्दर्य के लिए किया गया है। इन कवियों की कविताएँ वर्णविन्यास की कलात्मकता से भरी पड़ी हैं। शब्दविन्यास की दृष्टि से छायावादी कवियों ने अधिकतर संस्कृत के तत्सम शब्दावली का ही प्रयोग किया है। केवल केवल निराला ही की कविताओं में संस्कृत के अतिरिक्त देशज, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला आदि अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग है। शब्दप्रयोग की दृष्टि से इन कवियों ने नये शब्दों का निर्माण भी किया है। इस क्रम में ये शब्द या तो देशज भाषा से ग्रहण किए गए हैं या अंग्रेजी के शब्दों के भावानुवाद हैं। वाक्य प्रयोग की दृष्टि से छायावादी कवियों ने सामान्यतया शास्त्रीय परम्परा को ग्रहण करके छन्दों के आधार पर कविता करने की कोशिश की है। निराला के मुक्त छन्द के प्रवर्तन के साथ मुक्त छन्दों की भी योजना दिखाई पड़ती है लेकिन परम्परागत छन्दों को ही लयों का मुख्य आधार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त छायावादी कवि वाक्य- योजना में सहायक क्रियाओं का बहुत ही कम प्रयोग किया है। संज्ञा प्रयोग की दृष्टि से

छायावादी कविता चूँकि कल्पना एवं रहस्य की कविता है, अतः इस समय की कविताओं में अधिकांशतः भाववाचक संज्ञा पदों का प्रयोग हुआ है। और जो भी व्यक्तिवाचक संज्ञापद आए हैं वे व्यक्तिवाचक संज्ञापद पर्याय रूप में इस प्रकार प्रयुक्त किए गए हैं कि उनसे विषय की कलात्मकता स्वयं ही बढ़ जाय। छायावादी कवियों ने सर्वनामों का अत्यधिक प्रयोग किया है। इसका प्रमुख कारण इनकी रहस्यमूलक कविताएं हैं। इन्होंने मैं तुम आदि सर्वनामों का अधिक प्रयोग किया है। छायावादी कवियों ने क्रियाओं के कलात्मक प्रयोग के द्वारा भी कविता में चमत्कार लाने की कोशिश की है। छायावादी कविता में विशेषण प्रयोग कई स्तरों पर दिखाई पड़ता है। पहला इन कवियों ने अपनी संवेदनाओं के अनुरूप नये विशेषणों का निर्माण किया है जो अधिकतर बिम्बधर्मी है। दूसरा यह कि परम्परागत विशेषणों का रूढ़ सन्दर्भों से हटकर नवीन अर्थ एवं संवेदनाओं के लिए प्रयोग किया है। काल, कारक, लिङ्ग, वचन द्वारा छायावादी कवियों ने काव्यभाषा में कलात्मकता लाने के लिए इनका विपर्यय-मूलक प्रयोग पर बल दिया है। छायावादी कवियों ने प्रत्यय एवं उपसर्ग का प्रयोग अधिकतर नये शब्दों का निर्माण करने के लिए किया है। भावों तथा संवेदनाओं के अनुरूप इन कवियों ने कहीं लम्बे- लम्बे तथा कहीं छोटे- छोटे समासों की योजना की है। विवेच्यकालीन व्याकरणिक संरचना का विस्तृत विवेचन शोधप्रबन्ध के तृतीय अध्याय में है।

(ख) शैल्पिक संरचना - छायावादी कविता में अलंकारों की प्रभावी भूमिका बनी हुई है। ये छायावादी कवि अधिकतर सादृश्यमूलक अलंकारों के प्रयोग के ब सहारे कविता में चमत्कृति, भावोत्कर्ष, जिज्ञासा, कौतूहल आदि की सृष्टि करते दिखाई पड़ते हैं। छायावादी कवियों ने अलंकारों के प्रयोग में अधिकतर प्राचीन परम्परागत उपमान एवं उपमेयों को भी ग्रहण किया है, इसीलिए इनकी कविताओं में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, अर्थान्तरन्यास, विरोध आदि अलंकारों की प्रधानता बनी हुई है।

प्रतीकों की दृष्टि से छायावादी कवियों ने सादृश्यमूलक प्रतीकों का अधिक उपयोग किया है। ये कवि सादृश्यमूलक प्रतीकों में केवल उन्हीं प्रतीकों को ग्रहण किया है जो सादृश्य पर आधारित होते हुए भी उससे ऊपर उठकर किसी सूक्ष्म- अमूर्त प्रतीयमान अर्थ सम्प्रेषण की क्षमता रखते हों। साधर्म्यमूलक प्रतीक विषयवस्तु की रहस्यमूलक कल्पना एवं भावुकतापूर्ण रागात्मक चित्रण के लिए प्रयुक्त हुए हैं। छायावाद के कवियों ने मूर्त प्रतीकों की अपेक्षा अमूर्त प्रतीकों का प्रयोग अधिक किया है। और इन अमूर्त प्रतीकों के विषय अधिकतर ईश्वर एवं श्रृंगार से ही सम्बन्धित हैं ।

छायावादी कविता में ऐन्द्रिय दृश्यव्यापार बिम्बों का प्रयोग अधिक हुआ है और ये तत्कालीन कविता की रहस्य एवं कल्पना को उभारने के लिए आए हैं। लोकबिम्ब छायावाद में प्रकृति एवं संस्कृति से ही जुड़कर श्रृंगारिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है। छायावादी कवि भावबिम्बों के सहारे अपनी सूक्ष्म रहस्यवादी प्रकृतिगत अनुभूतियों को सम्प्रेषित किया है। जबकि विचार बिम्ब एवं इन कवियों के निजी सोच के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

छायावाद के कवियों में निराला तथा दिनकर ने ही सामान्यतः मिथकों का उपयोग अपनी कविता में किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त मिथक अत्यन्त साधारण हैं जो सामान्यतः इतिहास एवं धर्म से ही ग्रहण किए गए हैं। फैंटसी अपेक्षाकृत अत्यन्त नवीन शैल्पिक तत्व है जिसकी कहीं- कहीं झलक ही छायावादी कविता में देखने को मिलती है। और ये अपनी बनावट में महत्वपूर्ण नहीं हैं। शोध-प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में विवेच्यकालीन शैल्पिक संरचना का विस्तृत विवेचन है ।

(ख) आन्तरिक संरचना -
------------------- छायावाद के कवियों ने लयात्मकता के यथासम्भव सभी तरीकों का अपने कविता में उपयोग किया है। इन कवियों ने अपनी तुक

अनुभूतियों के अनुकूल लयात्मक स्वरूप को ग्रहण किया है जिससे कविता अत्यंत प्रभावी बन गई है। सामान्यतः इन कवियों ने परम्परागत वार्णिक एवं मात्रिक को लेकर एक नवीन लय निर्माण की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। छायावादी कवियों ने संगीत के राग- रागनियों पर आधारित लय, लोकगीतों के लय एवं मुक्त छान्दिक लय के आधार पर भी कविताएँ की हैं। व्यंजना की दृष्टि से छायावाद के कवियों ने अधिकतर लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना का ही प्रयोग किया है तथा आर्थी व्यंजना की दृष्टि से वाच्य एवं लक्ष्यसम्भवा आर्थी व्यंजना का प्रयोग ही इनकी कविताओं में हुआ है। जबकि छायावादी कविता में शाब्दी व्यंजना अधिकतर प्रकृति के सहारे ही अभिव्यक्त हुई है। छायावादी कविता में विरोधाभास अलंकार के रूप में ही सामान्यतः प्रयुक्त हुआ है, केवल निराला की कविताओं को छोड़कर क्योंकि वहाँ यह वक्रोक्ति के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। जबकि विडम्बना का प्रयोग, छायावादी कविता में न के बराबर है। विवेच्यकाल की आन्तरिक संरचना का विस्तृत विवेचन शोध-प्रबन्ध के पंचम अध्याय में है ।

[घ] छायावादोत्तर काव्यभाषा

[अ] व्याकरणिक संरचना - व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से छायावादोत्तर काल अत्यन्त समृद्ध है। इन कवियों ने भाव तथा अर्थ के उत्कर्ष के लिए व्याकरणिक संरचना के अंगों का अत्यन्त कलात्मक प्रयोग किया है। इस समय की कविता में वर्णों द्वारा नाद उत्पन्न करने की प्रवृत्ति का ह्रास हुआ है। शब्दों की दृष्टि से इन कवियों के अनुभवविस्तार अत्यन्त व्यापक होने के कारण इनके शब्दग्रहण का क्षेत्र भी बढ़ गया है। ये कविजी के जीवन के जिस क्षेत्र से कविता लेते हैं, सामान्यतः वहीं से शब्दों को भी ग्रहण करने की कोशिश करते हैं। इससे इनका शब्द-भण्डार अत्यन्त व्यापक हो गया है। इस समय के कवियों ने वाक्यविन्यास के लिए फालतू शब्दों की योजना को त्याज्य दिया है और भाषिक कसावट के साथ कविता करने की प्रवृत्ति अपनाई है। वाक्यों में लय रक्षा की प्रवृत्ति को भाव-सम्प्रेषण के आगे हेय समझा गया है। इस समय की कविताओं में सहायक क्रियाओं का अत्यधिक प्रयोग होने लगा है जिससे काव्य की भाषा, गद्य की भाषा के निकट आ गई है। छायावादोत्तर कविता में भाषिक सम्प्रेषण सहज होने के कारण व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग अधिक होने लगा है। समसामयिक अनुभूतियों एवं संवेदनाओं में विस्तार के कारण द्रव्यवाचक संज्ञा पदों का भी प्रयोग अधिक हुआ है। सर्वनाम की दृष्टि से छायावाद के बाद की कविताओं में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के अत्यधिक प्रयोग के चलते सर्वनाम अब उतने महत्वपूर्ण नहीं रह गए हैं जितने छायावाद तथा उसके पूर्व की कविताओं में हैं। क्रियाओं की दृष्टि से छायावाद के बाद की कविताओं में जनसामान्य जीवन की सार्वजनीनता एवं व्यापकता को स्पष्ट करने के लिए अकर्मक क्रियाओं का प्रयोग अधिक हुआ है । इसके अतिरिक्त नये क्रियाओं को भी ग्रहण करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, जो सामान्यतः ग्राम्य एवं देशज क्रियाएँ हैं। विषय की स्पष्टता के चलते विशेषण का अधिक प्रयोग दिखाई नहीं देता क्योंकि यहाँ सीधे- सीधे वर्ण्यविषय पर आ

कल दिया गया है। लिङ्ग, काल, कारक, वचन की दृष्टि से छायावादोत्तर कवियों ने कविता के स्तर पर कलात्मकता लाने के लिए इनके विपर्यय रूपों का प्रयोग किया है। काल की दृष्टि से यह विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि छायावाद के बाद के कवियों ने वर्तमान जीवन की विसंगति एवं त्रासदी को भूतकाल कर या भविष्यकाल के सहारे स्पष्ट करने की कोशिश अधिक दिखाई पड़ती है। प्रत्यय एवं उपसर्ग का प्रयोग शब्द निर्माण के लिए अधिकतर हुआ है और इसके लिए देशज प्रत्यय एवं उपसर्गों का भी प्रयोग अधिक है। समास की दृष्टि से चूंकि नयी कविता को कवियों ने सरल एवं सहज रखने की लगातार कोशिश की है, इसलिए कविता में सामासिक योजना अत्यन्त कम है। विवेच्य व्याकरणिक संरचना का विस्तृत विवेचन शोध-प्रबन्ध के तृतीय अध्याय में किया गया है।

(ब) शैल्पिक संरचना -

छायावादोत्तर कविताओं में शैल्पिक संरचना की दृष्टि से अलंकारों का महत्व लगातार कम होता गया है। इन कवियों ने अलंकार के चमत्कृति वृत्ति को छोड़कर उसके विस्तारमूलक प्रवृत्ति को ग्रहणकर अपनी संवेदनाओं को अभिव्यक्ति दी है। इसके लिए इन नये कवियों ने यथासंभव नये उपमानों की योजना की है। इसीलिए उनकी कविताओं में उपमा, रूपक, दृष्टान्त, उदाहरण एवं मानवीयकरण आदि अलंकार ही आए हैं।

छायावाद के बाद के कवियों ने अपने भावों को सम्प्रेषित करने के लिए प्रतीकों का अत्यधिक प्रयोग किया है। इनकी कविताओं में प्रतीक कविता के आधारभूत अंग के रूप में उभरे हैं। इन कवियों द्वारा प्रयुक्त ये प्रतीक मानव जीवन के प्राकृतिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों से ग्रहण किए गए हैं। इन कवियों ने परम्परित रूढ़ प्रतीकों को छोड़कर आधुनिक उपभोक्तावादी जटिल जीवनबोध से उपजी संवेदनाओं को स्पष्ट करने वाले समर्थ एवं नये प्रतीकों का चयन किया है।

छायावादोत्तर कविता में जीवन व्यापार की जटिलता बिम्बों के उत्कर्ष में सहायक हुई है और प्रायः सभी प्रकार के बिम्ब कवियों द्वारा प्रयुक्त हुए हैं।

धर्म एवं लोक सम्बन्धी बिम्बों के सहारे जीवन की प्राचीन रूढ़ विसंगतियों को उभारने की कोशिश दिखाई पड़ती है जो आज भी मनुष्य का अंग बनी हुई है। खूय व्यापार बिम्ब कहीं- कहीं व कविता के विशुद्ध काल्पनिक रूप को तो कहीं गम्भीर विचारों को व स्पष्ट करते हैं। अन्य विविध बिम्बों के सहारे ये कवि जनजीवन से जुड़े सामाजिक- राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों को उभारने की कोशिश की है। अनुभवबिम्ब की दृष्टि से ये कवि जीवन्त सामाजिक यथार्थपरक अनुभवों को कविता में स्थान दिया है। जबकि विचारबिम्बों में कोई न कोई विचारधारा का ही वर्णन है ।

आधुनिक कवियों ने सामान्यतः प्राचीन मूल्यों के सन्दर्भ में आधुनिक समाज एवं जीवन की विसंगतियों को उभारने की कोशिश की है और इसके लिए इन कवियों ने मिथकों का प्रयोग किया है। इतिहासधर्मी मिथक कविता में सामाजिक, राजनीतिक विद्रूपताओं को स्पष्ट करते हैं। मिथकों का सबसे कलात्मक प्रयोग धारणा सम्बन्धी मिथकों में दिखाई पड़ता है जहाँ वर्तमान जीवन सन्दर्भ में प्राचीन मूल्यों की पुनर्व्याख्या की गई है। छायावादोत्तर कविता में प्रयुक्त मिथक सभी धर्मों एवं राष्ट्रों के मिथकीय सन्दर्भ को ग्रहण करके आए हैं।

छायावाद के बाद के कवियों ने फैंटसी के सहारे अपने आन्तरिक अनुभवों एवं आगामी स्थितियों को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। इन कवियों में मुक्तिबोध की अपनी एक अलग पहचान है उन्होंने इसकी विधा के सहारे जीवन की समस्याओं, निगूढ़ एवं जटिल आन्तरिक मनोभावों, आत्मसंघर्ष एवं व्यक्ति के खण्डित होते हुए व्यक्तित्व को उभारने में सफलता प्राप्त की है। विवेच्यकालीन शैल्पिक संरचना का विस्तृत विवेचन शोध- प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में है ।

(ख) आन्तरिक संरचना -

छायावाद के बाद के कवियों ने अपनी संवेदना एवं प्रकृति के अनुरूप लय को ग्रहण किया है। जीवन की अपेक्षाकृत जटिल अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने के कारण परम्परागत शास्त्रीय छन्दों के लयों को छोड़ दिया है और अपनी कविता के अनुरूप उन्हीं लयों को मुक्त रूप से रखने की कोशिश की है। इस स्थिति में एक साथ कई- कई छन्दों की लयों का भी उपयोग किया गया है। संगीत के आरोह- अवरोह के आधार पर भी कविता की गई है तथा लोकगीतों के धुनों को भी कविता का आधार बनाया गया है। इसके अतिरिक्त मुक्त छन्दात्मकता इस समय की कविता का प्रमुख गुण है। साथ ही अर्थ लय की योजना की भी बात की गई है। व्यंजना की दृष्टि से छायावाद के बाद के कवियों ने अपनी व्यंग्यमूलक अभिव्यक्ति प्रणाली के कारण आर्थी व्यंजना का प्रचुर प्रयोग किया है और ये व्यंग्यार्थ अधिकतर जनजीवन की विसंगतियों से ही जुड़कर आए हैं। छायावाद के बाद की कविता में विरोधाभास पूर्णत: अंग्रेजी "पैराडाक्स" के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह विरोधाभास जहाँ व्यक्ति के आन्तरिक संबंधों को स्पष्ट करता है वहीं समाज के यथार्थ को भी सम्प्रेषित करने में सफल हुआ है। आज के जटिल होते सम्बन्धों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त देने के लिए आधुनिक कवियों ने विडम्बना का उपयोग किया है। व्यंग्य एवं वक्रोक्ति यद्यपि इसमें कवियों के रुचिकर साधन हैं लेकिन अधिक जटिल भावबोध को हास्य एवं विनोद का सहारा लेकर प्रस्तुत किया गया है। शोध-प्रबन्ध के पंचम अध्याय में विवेच्य-काल की आन्तरिक संरचना का विस्तृत विवेचन है।

======

तृतीय अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता की व्याकरणिक संरचना

कविता में व्याकरणिक संरचना का अर्थ एवं स्वरूप

कवि अपनी अनुभूतियों को मूर्त रूप देने के लिए जिन व्यावहारिक भाषिक रूपों का उपयोग करता है वह कविता की व्याकरणिक संरचना कहलाती है । प्रत्येक कवि को लोक एवं समाज से अर्जित अनुभूतियों को लोक एवं समाज तक पहुँचाने के लिए भाषा के संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण आदि प्रचलित व्याकरणिक तत्वों का सहारा लेना पड़ता है । उसके लिए व्याकरण अनिवार्यता एवं विवशता दोनों है । इन व्याकरणिक रूपों में सम्प्रेषणीयता सीमित होने पर भी उसे उन्हीं रूपों का ही सहारा लेना पड़ता है क्योंकि उसके सामने व्याकरणिक रूपों के अतिरिक्त भाव एवं विचार सम्प्रेषण का कोई अन्य समर्थ माध्यम नहीं है । यही कारण है कि समाज में प्रचलित अनुभूतिगत सम्प्रेषण के अन्य रूपों मूर्तिकला चित्रकला संगीत, नृत्य आदि के परिप्रेक्ष्य में काव्यकला या संरचना की प्रेषणीयता को सबसे कम करके आँका जाता है । लेकिन मनुष्यों तक एक दूसरे के विचारों एवं भावों को पहुँचाने का यह सबसे सस्ता एवं सहज साधन होने के कारण अनुभूतिगत सम्प्रेषण के अन्य साधनों की अपेक्षा इसकी उपयोगिता अधिक है । कविता एक भाषिक अभिव्यक्ति है और प्रत्येक भाषा का अपना व्याकरण है । व्याकरणिक संरचना के अवयवों के बिना काव्यरचना का निर्माण संभव नहीं है । ऐसी स्थिति में रचनाकारों को इस प्रक्रिया से अनिवार्यतः गुजरना पड़ता है ।

प्रत्येक भाषा के दो धर्म होते हैं – प्रथम उस भाषा का सामाजिक प्रचलन के बीच प्रतिष्ठित होना एवं द्वितीय वैचारिक आदान प्रदान की क्षमता से संयुक्त होना । इसीलिए काव्यसंरचना व्याकरणिक स्तर पर जहाँ सामाजिक सहमति प्राप्त करती है वहीं वैचारिक आदान-प्रदान के आधार के रूप में रचनाकार से जुड़कर पाठक अथवा श्रोता की अनुभूति का अंग भी बनती है । इस प्रक्रिया में सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि वह स्वयं व्याकरणिक रूपों को किस हद तक साध पाया है । अतः रचनाकार अपने सृजन के आरम्भिक सृजन के आरम्भिक क्षणों में लगातार इस दृष्टि से सचेष्ट रहता है कि व्याकरणिक

रचना को किस तरह साधा जाए कि वह नितान्त सहजतापूर्वक बिना किसी अवरोध को उत्पन्न किए सृजन के सन्दर्भ को कला के रूप में रूपायित कर सके और इस तथ्य को हम आधुनिक हिन्दी के शुरुआती दौर की रचनाओं में सहजता से देखा जा सकता है ।

भाषा के व्याकरणिक ढाँचे की स्वीकृति रचना एवं रचनाकार की आवश्यकता है । रचनाकार को सृजन के स्तर पर इस समस्या को बार-बार झेलना पड़ता है और प्रत्येक समर्थ कवि भाषा के रूप में इस समस्या से जीवन भर जूझता है । इस जूझने की प्रक्रिया में काव्यभाषा संरचना को और अधिक सम्प्रेषणीय बनाने के लिए उसमें नये तत्वों को सम्मिलित करने का प्रयास करता रहता है । सामान्यतः रचनाकार व्याकरणिक रूपों को रचना में दो दृष्टियों से प्रयुक्त करता है, प्रथमतः व्याकरणिक अंगों के प्रयोग से उत्पन्न अर्थ एवं ध्वनि की सहायता से कविता के ढाँचे को सुव्यवस्थित करना वहीं कवि दूसरी ओर व्याकरणिक अवयवों का कविता में इस तरह प्रयोग करता है कि वह शब्दविधान का अंग होकर भावोत्कर्ष में सहायक हो सके और अधिकतम सम्प्रेषणीयता उत्पन्न कर सके । उदाहरण के रूप में हिन्दी खड़ी बोली की प्रारम्भिक रचनाओं में जहाँ भाषिक शैथिल्य दिखाई पड़ता है वहीं आधुनिक हिन्दी कविता भाषिक कसावट, भावोत्कर्ष की क्षमता एवं सम्प्रेषण धर्म से युक्त है । कवि अपनी प्रकृति एवं अनुभूति की माँग के कारण कविता का निर्माण मात्र व्याकरणिक संरचना के अवयवों से बँधकर नहीं करता क्योंकि कविता बंधन नहीं मुक्ति माँगती है और यही कारण है कि किसी भी भाषा के व्याकरणिक तत्वों एवं नियमों का निर्माण उस भाषा के साहित्य के आधार पर होता है न कि साहित्य का निर्माण भाषिक संरचना एवं नियमों को देखकर किया जाता है । इसीलिए कवि अपनी सम्प्रेषणगत आवश्यकता के कारण काव्यभाषा के व्याकरणिक ढाँचे में नये-नये प्रयोग करता रहता है ।

व्याकरणिक संरचना का स्वरूप

हिन्दी काव्यभाषा की व्याकरणिक संरचना का रूप सामान्यतः पारंपरिक ही रहा है। ये मूल रूप से संस्कृत की व्याकरणिक संरचना के अनुरूप हैं और चूँकि संस्कृत की व्याकरणिक भाषा साहित्य एवं व्याकरण की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है अतः जब हिन्दी काव्यभाषा का निर्माण होने लगा तो इसके व्याकरणिक स्वरूप का निर्माण संस्कृत से ही लेकर किया गया और उसमें स्थानीय प्रभावों एवं अवधी तथा ब्रजभाषा आदि के प्रभाव से कुछेक उपांग घट- बढ़ मात्र गए हैं, इससे उसके मूल स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

संज्ञा :- संज्ञा में सभी संज्ञाएँ संस्कृत की हैं - §1§ व्यक्तिवाचक संज्ञा, §2§ जातिवाचक संज्ञा, §3§ द्रव्यवाचक संज्ञा, §4§ समूहवाचक संज्ञा, §5§ भाववाचक संज्ञा। इनमें भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण तीन प्रकार से होता है - §अ§ जातिवाचक संज्ञा से, §ब§ विशेषण से, §स§ क्रिया से ।

सर्वनाम :- संस्कृत के सर्वनामों के साथ-साथ हिन्दी में उन्हीं सर्वनामों के विकारी रूप भी प्रचलित हो गए। इस तरह से हिन्दी में सर्वनामों की संख्या अधिक हो गई है। सर्वनामों का सामान्य विभाजन - §1§ पुरुषवाचक सर्वनाम, §2§ निश्चयवाचक सर्वनाम, §3§ अनिश्चयवाचक सर्वनाम, §4§ सम्बन्धवाचक तथा §5§ प्रश्नवाचक सर्वनाम है।

विशेषण :- हिन्दी में विशेष्य के साथ विशेषण का प्रयोग दो प्रकार से होता है- संज्ञा के साथ तथा क्रिया के साथ। विशेषण के तीन भेद होते हैं - §1§ सार्वनामिक विशेषण - इसके दो भेद मूल सर्वनाम तथा यौगिक सर्वनाम हैं। §2§ गुणवाचक विशेषण - इसके सात उपभेद हैं - §अ§ कालवाचक, §ब§ स्थानवाचक, §स§ आकारवाचक, §द§ रंगवाचक, §य§ दशावाचक, §ई§ गुणवाचक, §उ§ सम्बन्धसूचक । §3§ संख्यावाचक विशेषण - इसके तीन भेद हैं - §अ§ निश्चित संख्यावाचक

(घ) अनिश्चित संख्यावाचक, (ङ) परिणामबोधक। निश्चित संख्यावाचक विशेषण के पाँच उपभेद हैं - (अ) गणनावाचक, (ब) क्रमवाचक, (स) आवृत्तिवाचक, (द) समुदायवाचक, (य) प्रत्येक बोधक।

क्रिया :-

क्रियाएँ मुख्यतः दो- अकर्मक क्रिया एवं सकर्मक क्रिया होती है। जो वर्तमानकालिक क्रिया, भूतकालिक क्रिया और भविष्यकालिक क्रिया में विभाजित होती है। इन क्रियाओं के पाँच अर्थ होते हैं - (क) निश्चयार्थ क्रिया, (ख) सम्भावनार्थ क्रिया, (ग) संदेहार्थ क्रिया, (घ) आज्ञार्थ क्रिया, (ङ) संकेतार्थ क्रिया।

लिङ्ग :-

हिन्दी में दो प्रकार के लिङ्गों का व्यवहार होता है। पद या तो पुल्लिङ्ग होता है या स्त्रीलिङ्ग।

कारक :-

संस्कृत के सभी कारकों का प्रयोग हिन्दी में भी होता है, जो कुल आठ हैं- (1) कर्त्ता, (2) कर्म, (3) करण, (4) सम्प्रदान, (5) अपादान, (6) सम्बन्ध, (7) अधिकरण, (8) सम्बोधन।

काल :-

काल तीन प्रकार के हैं - (1) वर्तमानकाल, (2) भूतकाल, (3) भविष्य काल।

वचन :-

दो प्रकार के वचन हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं - एकवचन तथा बहुवचन।

प्रत्यय :-

हिन्दी में तीन तरह के प्रत्ययों का प्रयोग होता है - (1) कृत् प्रत्यय, (2) तद्धित प्रत्यय, (3) विदेशी प्रत्यय। क्रिया या धातु के साथ जुड़ने वाले प्रत्यय कृत् प्रत्यय होते हैं, जबकि संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण में जुड़ने वाले प्रत्यय तद्धित प्रत्यय कहलाते हैं। विदेशी प्रत्ययों में अरबी- फारसी तथा अंग्रेजी के प्रत्ययों का हिन्दी में प्रयोग होता है।

उपसर्ग :- हिन्दी काव्यभाषा में तीन प्रकार के उपसर्गों का प्रयोग होता है - (1) संस्कृत के परसर्गों का प्रयोग, (2) हिन्दी के परसर्गों का प्रयोग, (3) विदेशी परसर्गों का प्रयोग।

समास :- संस्कृत के समासों का ही प्रयोग हिन्दी में होता है - (1) अव्ययीभाव, (2) तत्पुरुष समास, (3) कर्मधारय समास, (4) द्विगुसमास, (5) बहुव्रीहि समास, (6) द्वन्द्वसमास।

वाक्य - विन्यास

कविता की भाषा और गद्य की भाषा में असली अन्तर अन्वय का होता है। गद्य की भाषा में अन्वय की रक्षा के प्रति सचेष्टता रहती है, लेकिन कविता में लय एवं सम्प्रेषण पर अधिक जोर होने के कारण अन्वयविहीन वाक्य-विन्यास की योजना की जाती है। इसके लिए कविता में प्राचीन समय से ही छन्द के रूप में शास्त्रीय वाक्य-विन्यास की योजना दिखाई पड़ती है। कविता में वाक्य विन्यास का यह रूप छायावादी कविता तक विशेष रूप से दिखाई पड़ता है -

> जिसके अरुण कपोलों की, मतवाली सुन्दर छाया में।
> अनुरागिनी उषा लेती थी, निज सुहाग मधुमाया में। [1]

इसमें प्रसाद ने प्राचीन शास्त्रीय परम्परा के अनुसार कविता का निर्माण किया है। यह तममात्रिक ताटंक छन्द है, जिसमें यति 16,14 मात्राओं पर होता है। इसमें कुल 30 मात्राएं तथा वर्णान्त मगण (SSS) से होता है। इसके अनुसार कविता में लय की योजना करने से वाक्यविन्यास ताटंक छन्द के रूप में सामने आता है। कविता में इस तरह की वाक्य योजना में पारम्परिक वाक्यविन्यास की रक्षा के कारण अनावश्यक शब्द भी आ जाते हैं जो इस तरह की वाक्य - योजना का सबसे कमजोर पक्ष है -

> जो गूँज उठे फिर नस नस में,
> मूर्च्छना समान मचलता सा,
> आँखों के साँचे में आकर,
> रमणीय रूप बन ढलता सा। [2]

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग- 1, लहर, पृ0 - 337

2- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग- 1, कामायनी (लज्जा सर्ग), पृ0- 511।

यह सममात्रिक पदपादाकुलक छन्द है जिसमें प्रत्येक चरण में 16 मात्रा तथा अन्त में गुरु होता है। इसमें पारम्परिक लय निर्वाह के लिए अन्त में "सार", "सार" की योजना की गई है जो अर्थ के स्तर पर अनावश्यक है। कविता में इसी प्रकार के शास्त्रीय वाक्य-विन्यास के प्रति निराला ने विद्रोह किया और भावानुकूल वाक्य योजना करने तथा मात्र लय की रक्षा के लिए प्रयुक्त होने वाले अनावश्यक शब्दों के बहिष्कार पर बल देते हुए कविता के नये वाक्य-विन्यास को सामने रखा -

नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन भर बँधा यौवन,
नत नयन प्रिय कर्मरत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार- बार प्रहार
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार[1] ।

आगे चलकर प्रगतिवाद- प्रयोगवाद में कवि अपने भावों को अधिकतम सम्प्रेषित करने के लिए वक्ता के अनुरूप वाक्य-योजना करने लगे जिससे उसमें लगातार अब सहजता आती चली गयी। इस तरह से कविता की वाक्य-योजना गद्य की वाक्य-योजना के निकट आ गई और कहीं- कहीं यह अन्तर भी मिट सा गया है -

एक तीक्ष्ण अपांग से कविता उत्पन्न हो जाती है,
एक चुम्बन में प्रणय फलीभूत हो जाता है,
पर मैं अखिल विश्व का प्रेम खोजता फिरता हूँ[2]
क्योंकि मैं उसके असंख्य हृदयों का गाथाकार हूँ ।

1- निराला रचनावली, भाग- 1 (अनामिका : तोड़ती पत्थर), पृ0- 323.
2- सदानीरा, भाग-1 (क्योंकि मैं कवि हूँ), पृ0- 136.

छायावादी कविता की वाक्य-योजना में सहायक क्रियाओं (है, था आदि) का कवियों ने बहुत कम प्रयोग किया है और जो प्रयोग मिलते हैं उनमें से अधिकांशतः सहायक क्रियाएँ वाक्य के बीच में ही हैं। छायावादी कवियों में निराला के अतिरिक्त दूसरे कवियों के कुछ उदाहरण ही मिलेंगे जिनमें सहायक क्रियाएँ वाक्य के अन्त में हों -

> बिखरकर कन-कन के लघु-प्राण
> गुनगुनाते रहते यह तान
> अमरता है जीवन का ह्रास
> मृत्यु जीवन का चरम विकास।[1]

इसके विपरीत प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कवियों ने सहायक क्रियाओं का अपनी कविता में निःसंकोच प्रयोग किया है -

> डरता नहीं हूँ।
> मगर उसे जब देखता हूँ, देखा नहीं जाता है।
> आज भी खड़ा है वह मेरी प्रतीक्षा में -
> मेरे दरवाजे पर।[2]

इसी तरह संयुक्त वाक्यों का प्रयोग भी छायावादी कवियों ने कम किया है। इनके द्वारा प्रयुक्त संयुक्त वाक्यों में सर्वाधिक "और" वाले वाक्य हैं, इस "और" की जगह इन कवियों ने अधिकांशतः लय की रक्षा के लिए "औ" का ही प्रयोग किया है -

> रुपहले, सुनहले आम्र-बौर,
> नीले पीले औ ताम्र भौंरे।[3]

जबकि नयी कविता के कवियों में सु संयुक्त- वाक्यों का प्रयोग बहुत कम है।

1- रश्मि, (जीवन), पृ0- 30.
2- तीसरा सप्तक : केदारनाथ सिंह (मेरे का [illegible]), पृ0- 18.
3- पन्त ग्रन्थावली, भाग- 1 (गुंजन), पृ0- 239.

छायावादी कवियों के वाक्य सामासिक प्रवृत्ति के अधिक निकट है। इसका प्रमुख कारण संस्कृत की शब्दावली से शब्दों का चयन है। इस शब्द-चयन के कारण संस्कृत की शैली भी हिन्दी में आ गई है -

> तव अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर,
> छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष:स्थल पर ।
> शत- शत- फेनोच्छ्वसित, स्फीत- फूत्कार-भयंकर,
> घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर ।[1]

इसके विपरीत नयी कविता के कवियों में वाक्य सरल एवं भावानुकूल रहते हैं -

> दर्द जिसका भी
> फूट रहा हो, समेटकर
> पिओ,
> जो काठ की घंटियाँ,
> पैजो ।
> बजो,[2]

नयी कविता के कवियों की कविताओं में वाक्य-योजना के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इन कवियों ने अपनी कविताओं में कहीं- कहीं संस्कृत के पूरे वाक्य, कहीं हिन्दी कवियों के पूरे वाक्य और कहीं अंग्रेजी कवियों के पूरे- पूरे वाक्य को भी लाकर रख दिया है। उत्तर छायावादी कवि दिनकर से यह प्रवृत्ति शुरू होती है।

> हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जात: पतिरेक आसीत् ।
> सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम् कस्मै देवाय हविषा विधेम ।[4]
> अज्ञेय - आषाढ़स्य प्रथम दिवसे ।

1- पंत पन्त ग्रन्थावली, भाग-1 (पल्लव), पृ0- 325·
2- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : काठ की घंटियाँ, पृ0- 158·
3- रश्मिलोक, दिनकर, (रेणुका), पृ0- 13·
4- सदानीरा, भाग-1 : अज्ञेय, पृ0-197·

इसी तरह हिन्दी-कवियों की कविताओं के माध्यम में। इन कवियों की कविताओं में आए हैं -

(1) चन्द्रमुख एव अनुपम भाग - (सूरदास)[1]

(2) रात्रि को सी रामकृ द्रोही (तुलसीदास)[2]

इसी तरह से अंग्रेजी के माध्यम भी कविताओं में शब्द आए हैं -

(1) गेट डाउन डैम[3]

(2) हाउ क्वाइट स्माट ए स्वीट लिटिल थिंग[4]

(3) द वाइल्ड वन द फादर ऑफ द मैन।[5]

आधुनिक काल के लगभग सभी कवियों ने अपनी काव्य-योजना में मुहावरों एवं कहावतों का खुलकर प्रयोग किया है। इससे कवियों को अपनी अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने में सफलता मिली है -

(1) हर जवान बेटे की मूंछ पर
साँप लोटते फटती छाती।[6]

(2) आकर पताल में करें छेद,
उनके उर क्या, अर्थ भेद।[7]

(3) जो जिये वे ध्वजा फहराते घर लौटे
जो मरे वे खेत रहे[8]।

1- तीसरा सप्तक : मदन वात्स्यायन, (रविश मेरी बेटी), पृ0- 35.
2- तीसरा सप्तक : मदन वात्स्यायन, (सरकारी कारखाने में ओवरटाइम की चिंता) पृ0- 99.
3- दूसरा सप्तक : शकुन्तला माथुर, (जिन्दगी का बोझ), पृ0- 43.
4- अनुपस्थित लोग : भारतभूषण अग्रवाल (गमले का पौधा), पृ0- 13.
5- सदानीरा, भाग-1 : अज्ञेय, पृ0- 139.
6- पन्त ग्रन्थावली, भाग-2 (ग्राम्या), पृ0-137.
7- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0- 302
8- इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे, पृ0- 30.

काव्यभाषा संरचना की दृष्टि से वाक्यविन्यास का विश्लेषण करने के उपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष उभरकर सामने आते हैं -

(1) परम्परागत छन्दयुक्त वाक्य-योजना के त्याग के कारण काव्यभाषा में भाषिक कसावट की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। वाक्यों में गेयता की रक्षा के लिए जो अनावश्यक शब्द प्रयुक्त होते थे वे क्रमशः समाप्त हो गए हैं। इस कारण नयी कविता के अर्थविस्तार में जहाँ वृद्धि हुई वहीं दूसरी ओर इसमें बोधगम्यता की दृष्टि से गिरावट भी आई। लेकिन इसके कारण नयी कविता का कवि व्याकरणिक एवं अर्थगत दोषों से बच सका है।

(2) नयी कविता के वाक्यों में सहायक क्रियाओं के प्रचुर प्रयोग से वाक्य-विन्यास सरल एवं संवेदनाओं के अनुरूप हो गया है। काव्य की भाषा एवं गद्य की भाषा का अन्तर भेद बहुत हल्का हो गया है और अर्थविस्तार की दृष्टि से भाषा अधिक प्रभावी हो गयी।

(3) शब्दों के प्रयोग की तरह कवि वाक्य- प्रयोग की दृष्टि से भी अधिक स्वतन्त्र हो गए। वे ब्रज, अवधी, संस्कृत, अंग्रेजी साहित्य से तथा समाज में प्रचलित मुहावरों के पूरे के पूरे वाक्य लाकर अपनी कविता में रखने लगे, जिससे सम्प्रेषण में विस्तार तथा कविता में विविधता आई।

काव्यभाषा संरचना में संज्ञा के प्रयोग की दृष्टि से यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है । छायावादी कवियों ने जहाँ भाववाचक संज्ञा का अत्यधिक प्रयोग किया है वहीं व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का भी काव्यभाषा के स्तर पर अत्यन्त कलात्मक प्रयोग हुआ है । इसके विपरीत प्रगतिवादी प्रयोगवादी कवियों की कविताओं में द्रव्यवाचक संज्ञा का अधिक प्रयोग मिलता है । इसका कारण दोनों छायावाद तथा प्रगतिवाद-प्रयोगवाद का प्रवृत्तिगत अन्तर है । छायावादी कवियों प्रसाद-निराला-पंत-तथा महादेवी ने व्यक्तिवाचक शब्द रखते समय शब्द के अर्थ एवं संवेदना पर अत्यन्त बारीक दृष्टि रखते हैं - और व्यक्तिवाचक संज्ञा के सीमित अर्थ एवं भाव सम्प्रेषण के बीच कलात्मक प्रयोग करते हैं -

धूमकेतु सा चला रुद्र नाराच भयंकर
लिये पूँछ में ज्वाला अपनी अति प्रलयंकर ।[1]

यहाँ भगवान् शिव के अनेक पर्यायवाची शब्दों में कवि साभिप्राय रुद्र" शब्द का प्रयोग कर शिव के क्रोधपूर्ण एवं भयंकर रूप का संकेत किया है । महादेवी का एक उदाहरण -

विरह का जलजात जीवन विरह का जलजात[2]

जलजात कमल का पर्याय है । जल से उत्पन्न होने के कारण इसे जलजात कहा जाता है।महादेवी का दुःखपूर्ण जीवन भी अश्रुमय है । यहाँ कवयित्री ने अपनी वेदनापूर्ण जीवन की मार्मिकता को उभारने के लिए जलजात का साभिप्राय प्रयोग किया है ।

नये कवियों ने व्यक्तिवाचक संज्ञा का उपयोग या तो सन्दर्भ को स्पष्ट करने के लिए विवरण के रूप में किया है या व्यक्तिवाचक संज्ञा को प्रतीक बनाकर सन्दर्भ को उभारने में उनकी रुचि रही है यथा-

---

1- कामायनी, पृ0 210

2- यामा,पृ0 सं0 180

खिड़कियों से झाँकते हैं
देखो है बाढ़ का वह दृश्य
उधर गुंजी उधर दारागंज
बीच का विस्तार
बन गया है आज पारावार ।[1]

(ii) मैं भी दौड़ी
पास न थी पर कानी कौड़ी-
मुँह लटकाए मिले राह में
बुद्धे किसन-अलदेऊआ ।[2]

प्रथम में जहाँ गुंजी दारागंज मात्र विवरण के लिए आए हैं वहाँ दूसरे उदाहरण में किसन, किसानवर्ग और अलदेऊआ मजदूर वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में रखे गए हैं । व्यक्तिवाचक संज्ञा की दृष्टि से छायावाद और प्रगतिवाद-प्रयोगवाद दोनों में छायावाद ने ऐतिहासिक एवं प्राकृतिक वस्तुओं के नामों से ही संज्ञा को लिया है जबकि प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियों ने ऐतिहासिक तथा जन-जीवन से जुड़ी देश-विदेश के व्यक्तिवाची संज्ञा पदों को अपने कविता में स्थान दियाहै । जातिवाचक संज्ञा की दृष्टि से भी यह स्थिति दोनों जगह बनी हुई है । इन आधुनिक कवियों ने जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञा की तरह से भी किया है । इस वर्ग में साधारणतया वे शब्द शामिल हैं जो मुख्य नामों के बदले उपनाम में आते हैं । यह प्रवृत्ति छायावादी कवियों में अधिक दिखाई पड़ती है- निराला की कविता -

बापू, तुम मुर्गी खाते यदि
तो लोकमान्य से क्या तुमने
लोहा भी कभी लिया होता ?-
दक्खिन में हिन्दी चलवाकर
लखते हिन्दुस्तानी की छवि,[3]

1- सतरंगे पंखों वाली: नागार्जुन (गीले पाँव की दुनिया सही है छोड़) पृ05।

2- काठ की घंटियाँ: सर्वेश्वर (सुपाई मारी कुलहिन) पृ0 147

3- निराला रचनावली भाग-2 पृ0134 (बापू के प्रति)

इसमें बापू शब्द गाँधी जी के लिए, लोकमान्य शब्द तिलक के लिए तथा दक्षिण शब्द का प्रयोग "दक्षिण भारत" के अर्थ में किया गया है । कविता में संज्ञा बोधक शब्दों का काव्य की दृष्टि से विशेष कलात्मक प्रयोग संभव नहीं होता क्योंकि ये संज्ञाएँ कविता में सामान्यतः सूचनार्थ ही प्रयुक्त हैं । संज्ञा शब्दों की अपेक्षा क्रिया का प्रयोग कविता में अपेक्षाकृत अधिक वैचित्र्यपूर्ण होता है । फिर भी छायावादी कवियों ने संज्ञा शब्दों की सहायता से लक्षणा शक्ति की सुंदर उद्भावना की है -

बदल रहा है युग लिबास[1]

यहाँ पर "लिबास" संज्ञा का युग के साथ वस्त्र के अर्थ में अस्वाभाविक दिखने वाला अक्षर प्रयोग है लेकिन यह "लिबास" अपना सामान्य अर्थ "वस्त्र" को छोड़कर युग तथा समाज में हो रहे विविध प्रकार के परिवर्तनों का सूचक है । वस्तुतः छायावाद के बाद के कवियों में व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ सामान्यतः संसूचनार्थ आई हैं लेकिन इन कवियों ने कहीं-कहीं उनको प्रतीक का रूप देकर कविता में नवीन तत्त्वों की सृष्टि करने सफल हुए हैं । छायावादी कवियों ने व्यक्तिवाची संज्ञाओं को कविता में कहीं-कहीं भाववाचक एवं जातिवाचक संज्ञा में परिवर्तित कर दिया है । नये कवि इन्हें जातिवाचक संज्ञा में रूपांतरित करते हैं, वह संज्ञा व्यक्ति किसी व्यक्ति विशेष का बोधक न होकर एक पूरे जाति विशेष का संकेत करने लगता है -

"व्यास मुनि को धूप में रिक्शा चलाते
भीम अर्जुन को गधे का बोझ ढोते देखता हूँ ।
सत्य के हरिश्चन्द्र को अन्याय घर में
झूठ की देते गवाही देखता हूँ
द्रौपदी को और शैव्या को शर्वी को
रूप की दूकान खोले
लाज को दो-दो टके में बेचते मैं देखता हूँ ।"[2]

1- पंत ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 128

2- शिवमंगलसिंह सुमनः विश्वास बढ़ता ही गया पृ0 72

इनमें प्रयुक्त व्यास भीष्म, अर्जुन, हरिश्चन्द्र, द्रौपदी, शैव्या आदि पौराणिक व्यक्ति विशेष के द्योतक नहीं है वरन् कवि उसका कविता में कलात्मक प्रयोग कर एक पूरे वर्ग विशेष का प्रतिनिधि बना देता है । उपर्युक्त कविता में ये व्यासादि पात्र क्रमशः ज्ञानी व्यक्ति, बलशाली व्यक्ति, सत्यवादी व्यक्तियों तथा सतीत्व एवं सचरित्र स्त्रियों का बोध कराते हैं । कवि का तात्पर्य है कि सांस्कृतिक परम्पराओं पर गर्व करने वाले भारतीय समाज में व्यक्ति का उसकी योग्यता का कोई मूल्य शेष नहीं बचा है । बलवानों तथा विद्वानों की इस देश में निर्धन जब रिक्शा चलाने में ही शेष बची है । सतीत्व को पूज्य मानने वाली भारत की नारियाँ आज कोठों पर बैठकर अपनी जिन्दगी किसी तरह जी रही हैं । छायावादी कवियों एवं उसके बाद के कवियों दोनों ने कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का कविता में कलात्मक ढंग से प्रयोग किया है । अन्यथा ये संज्ञाएँ सामान्य व्याकरणिक रूप का है । बोध कराती हैं जिनका अर्थ संसूचना देना मात्र रहता है । जैसे – लाल सिंह [1], रणजीतसिंह [2], मेवाड़, [3] राम, [4] सीता, [5] सुमित्रानंदन, [6] अल्मोड़ा, [7] विवेकानन्द, [8] कालिदास, [9] इन्दुमती, [10] झूंसी दारागंज त्रिलोचन [13] कालिदेय [24] रवीन्द्र [15] आदि ।

संज्ञा प्रयोग की दृष्टि से छायावादी कवियों की प्रधान भाववाचक संज्ञाओं के प्रयोग के कारण हैं । इन कवियों ने अपनी रहस्यवादी प्रकृति-प्रेम, शृंगारिक एवं कल्पनावादी प्रवृत्ति के चलते भाववाचक संज्ञा पदों का

1- 3 प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 (लहर) पृ0 375, 378, 380

4-6 निराला रचनावली भाग-1 पृ0सं0 क्रमशः पृ0 310, 310, भाग-2पृ0सं0 40

7-8 पंत ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0सं0क्रमशः 101, 101

9-12 सतरंगे पंखों वाली, पृ0 42, 42, 51, 51

13- कुछ कविताएँ पृ0सं0 9

14-15 धूप के धानः पृ0सं0क्रमशः 32, 38

अत्यधिक प्रयोग किया है । जिसके कारण वे वर्ण्य वस्तु के आंतरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के सौन्दर्य को व्यक्त करने में सफल हुए हैं । पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी सभी में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है । इन छायावादी कवियों ने भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण भी किया है और इस निर्माण प्रक्रिया की प्रवृत्ति दो रूप में उनकी कविताओं में दिखाई पड़ती है –

§1§ जातिवाचक संज्ञा से

§11§ विशेषण की सहायता से

जातिवाचक संज्ञा से भाववाचक संज्ञा बनाने की प्रवृत्ति अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा निराला में अधिक दिखाई पड़ती है । इसका प्रमुख कारण यह है कि निराला शक्ति एवं सौन्दर्य के कवि होने के साथ-साथ यथार्थ के भी कवि हैं–

> अट्टालिका नहीं है रे
> आतंक भवन
> सदा पंक पर ही होता
> जल विप्लव- प्लावन
> क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से
> सदा छलकता नीर
> रोग-शोक में भी हँसता है
> शैशव का सुकुमार शरीर ।[1]

यहाँ अट्टालिका की मर्यादा एवं गरिमा आतंक भवन के रूप में परिणत हो गई है । इन अट्टालिकाओं-बड़े लोगों में वैचारिक क्रान्ति की उद्भावना नहीं होती जिस तरह पंक में पानी जल्दी से फैल जाता है इसी तरह क्रान्तियाँ भी छोटे लोगों द्वारा ही होती है क्योंकि छोटे-छोटे बादल के टुकड़ों से ही वर्षा होतीहै बड़े बादल तो केवल गरज के चले जाते हैं ।

1- निराला रचनावली, भाग-1 §बादल राग§ पृ०सं० 124

यहाँ विशेष संज्ञा की सहायता से निराला उसकी उन्मुक्तता, क्रीडावृत्ति एवं सजगता को रेखांकित किया है । एवं यहाँ निराला ने खिलते-खिलते भाव के लिए दो शब्द रोग एवं शोक का प्रयोग किया है जो दुःखों एवं कष्टों की तीव्रता एवं अतिशयता को ध्वनित करता है । प्रसाद एवं पंत की अधिकांश कविताएँ प्रेम, प्रकृति एवं सौन्दर्य से जुड़ी होने के कारण उन्होंने अधिकांशतः विशेषण की सहायता से संज्ञा-पदों का निर्माण किया है –

> मम जीवन की प्रमुदित प्रात
> सुन्दरि । नव अवलोकित कर ।
> विकसित कर, नवस्मित कर,
> गुंजित कर, कल कूजित कर
> खिला प्रेम का नव जलजात,
> बदा कनक कर निज सुधार ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में सुन्दर विशेषण की सहायता से सुन्दरि (स्त्री) संज्ञा पद का पंत ने निर्माण किया है । इसमें मन एवं जीवन में नव कोमल रागात्मक भावों को उत्पन्न करने के लिए सुन्दरी का आवाहन है । पंत में संज्ञापदों की दृष्टि से इसी प्रकार से संज्ञा पद निर्माण एवं प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है । छायावाद के बाद की कविताओं में विशेष कर अज्ञेय और नागार्जुन आदि में भी यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । साथ ही इनके ये प्रयोग पंत आदि द्वारा प्रयुक्त परम्परा से विशेष हटकर नहीं है –

> तुम्हारा यह उद्धत विद्रोही
> घिरा हुआ है जग से पर है सदा अलग निर्मोही ।
> जीवन सागर हहर-हहर कर उसे लीलने आता दुर्धर
> पर वह बढ़ता ही जायेगा लहरों पर आरोही ।[2]

1- पंत ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 84

2- सदानीरा, भाग-1 पृ0सं0 152 (विश्वास)

इसमें कवि की जनता को विसंगतियों से अभिव्यक्त और उसकी जिजीविषा शक्ति को स्पष्ट किया गया है । इसके साथ ही "निर्मोही" शब्द स्वयं कवि की रचना-शैली का भी संकेत करता है- क्योंकि कवि स्वयं बिना किसी बंधन या दबाव के परम्परागत रूढ़ि रचना शैली के विरोध में नयी शैली एवं विचारों का प्रतिपादन करता है और वह उनसे किसी भी हालत में हटने वाला नहीं । इस तरह नागार्जुन की कविता -

> लड़के तो थी तंग किन्तु जनता उदार थी
> पस्त रही थी मुल्तानों से विवश गरीबी
> मुझे दिखाई पड़ी दुर्दशा ही चिरजीवी ।[1]

यहाँ गरीबी का परास्त एक लाक्षणिक कथन है जिसका तात्पर्य है गरीब लोग आज विषम परिस्थितियों में जीते हुए भी प्रसन्न हैं । इसी तरह शमशेर बहादुर सिंह सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, गिरिजाकुमार माथुर, तथा अज्ञेय आदि के कवियों में भी इस तरह के प्रयोग दिखाई पड़ते हैं ।

छायावादी कवियों में समूह वाचक संज्ञा पदों में प्रवृत्तिबोधक समूहवाचक शब्दों का अधिकांशतः बहुवचन के ही रूप में प्रयोग किया मालाओं ज्योतियों शरदों आदि इनके प्रयोग में कोई विशेष चमत्कार नहीं दिखाई पड़ता सामान्य व्याकरणिक रूप में इनका प्रयोग हुआ है । द्रव्यवाचक संज्ञाओं का भी सामान्य दृष्टि से प्रयोग दिखाई पड़ता है । पंत ने ही अधिकांशतः द्रव्यवाचक संज्ञापदों का विशेष रूप में प्रयोग कविताओं में किया है । जैसे-स्वर्ण स्वप्न, मोती के आंसू आदि -

> निज अधरों पर कोमल क्रूर
> शशि से दीपित प्रणय कपूर
> चाँदी का चुम्बन कर दूर ।[2]

1- नागार्जुनःसतरंगे पंखों वाली (ओजन मन के सजग चितेरे) पृ०सं० 6।

2- पंत ग्रन्थावली भाग-1, पृ0190

यहाँ मात्र चमत्कार एवं कौतूहल मात्र के लिए इसका प्रयोग हुआ है । छायावाद के बाद की कविता समाज के जीवन व्यापार से जुड़ी होने के कारण द्रव्यवाचक संज्ञाओं का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है परन्तु ये मात्र सूचना के लिए आए हैं –

> घर से खलिहान तक है अन्न नहीं
> कारखानों से लेकर बस्ती तक
> है न कपड़ा कहीं पहनने को
> दूध घी का यहाँ पै चर्चा क्या
> अब न चीनी न गुड़, न दाल–नमक
> हो गया स्वप्न किरासिन का तेल ।[1]

यहाँ सामान्य आदमी के लिए इन सभी वस्तुओं का अभाव सूचित किया गया है ।

संज्ञा प्रयोग की दृष्टि से छायावादी कवियों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये कवि संज्ञा पदों के समानार्थक शब्दों का साभिप्रायकविता में उपयोग करते हैं जिससे अर्थ के स्तर पर ये शब्द एक विशेष प्रकार की कलात्मकता को उत्पन्न करते हैं । इस प्रकार के प्रयोग प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि सभी की कविताओं में देखने को मिलते हैं । प्रसाद की कविता–

> बीती विभावरी जाग री ।
> अम्बर पनघट में डुबो रही
> तारा–घट ऊषा नागरी ।[2]

यहाँ पर प्रसाद ने रात्रि के अनेक पर्यायवाची शब्दों में से "विभावरी" का उपयोग किया है । यहाँ स्पष्ट है कि कवि का मन्तव्य उषाकाल के पहले का चित्र प्रस्तुत करना है । इस क्रम में वह रात्रि की अंतिम स्थिति है ।

1– गिरिजाकुमार माथुर : धूप के धान पृ०सं० 27

2– प्रसादग्रन्थावली, भाग–1 (लहर) पृ० 345

इस क्रम में यहाँ रात्रि के द्वारा भी प्रकाशयुक्त अर्थ का संकेत करने के लिए "विभावरी" शब्द का प्रयोग किया है । पंत ने भी इस तरह के शब्दों का कलात्मक प्रयोग दिखाई पड़ता है –

> सैकत-शय्या पर दुग्ध धवल तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल
> लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल ।
> तापस बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु करतल
> लहरें उर पर कोमल कुंतल ।[1]

यहाँ पर पंत ने गंगा को स्त्री के रूप में वर्णन किया है । वे ग्रीष्मकाल में कम जल के कारण पतली धारा के रूप में होकर बहने के कारण गंगा को तन्वंगी कहा है अर्थात् वह स्त्री जो दुबले-पतले (कृशा) अंगों वाली हो इस तरह इसके द्वारा ही वे गंगा की कृशता का चित्रण करने में सफल रहे हैं, इसी तरह गंगा के नवीन, पवित्र एवं सुन्दर सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिए स्त्री के पर्यायवाची 'बाला' शब्द का प्रयोग किया है जो नवयौवन को प्राप्त सोलह-सत्रह वर्ष की सुंदर स्त्री के लिए प्रयुक्त होता है । इस तरह पंत गंगा के सुंदरी पक्ष का चित्रण करने में कलात्मक पर्याय शब्दों के प्रयोग से सफल हुए हैं । इसी तरह निराला की कविताओं में भी इसी तरह के प्रयोग दिखाई पड़ते हैं –

> विच्छुरित वह्नि राजीवनयन हत लक्ष्य बाण
> लोहित-लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान,[2]

यहाँ पर निराला ने आग के लिए वह्नि का प्रयोग किया है इससे आग के साथ-साथ उसकी प्रचंडता एवं प्रलयकारिता का भी बोध होता है इसी तरह नेत्रों के लिए लोचन शब्द का प्रयोग हुआ है । महादेवी की कविताएँ भी इस तरह के उदाहरणों से भरी पड़ी है –

> चिर सजीव दधीचि । तेरी अस्थियाँ संजीवनी है ।[3]

इसमें महादेवी ने दधीचि शब्द का प्रयोग करके महात्मा गाँधी के दुर्बल शरीर और उसमें स्थित असामान्य प्राणवत्ता की ओर संकेत किया है ।

1– पंत ग्रन्थावली भाग–1 (गुंजन) पृ0 274
2– निराला रचनावली भाग–1 पृ0

विवेच्य काल में संज्ञाओं के विश्लेषण के बाद निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित विशिष्टताएँ दिखाई पड़ती हैं –

1– संज्ञा प्रयोग की दृष्टि से छायावादी कवियों ने भाववाचक संज्ञा पदों का काव्यभाषा के रूप में अधिक कलात्मक प्रयोग किया है । भाववाचक संज्ञा में विशेषकर विशेषण की सहायता से भाववाचक संज्ञा निर्माण की प्रवृत्ति छायावादी कवियों की कविताओं में अधिक दिखाई पड़ती है । जो छाया-वादी रचनाविधानों को उभारने में अधिक सफल है ।

2– छायावाद के बाद की कविता में क्रिया की सहायता से भाववाचक संज्ञाओं के निर्माण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । इन कवियों ने इसके द्वारा अपनी सम्प्रेषणीयता के विस्तार में सहायक विविध पक्षों को उभारने का प्रयास किया है । काव्यभाषा संरचना की दृष्टि से उन्हें इसमें काफी सफलता मिली है ।

3– छायावादी कवियों ने अपनी कविता में व्यक्तिवाचक संज्ञा के पर्यायरूपों का अर्थ की दृष्टि से सार्थक प्रयोग किया है । वे विशिष्ट व्यक्तिवाचक संज्ञा पदों की सहायता से अर्थ एवं सम्प्रेषण क्षमता के साथ-साथ कविता के आंतरिक संवेदनाओं को भी उभारने में सफल रहे हैं । ये व्यक्ति जाति एवं गुण विशेष के बोधक हो गए हैं ।

4– प्रगतिवादी प्रयोगवादी कवियों ने द्रव्यवाचक संज्ञाओं का प्रयोग अपनी कविताओं में अधिक किया है । जो समसामयिक अनुभूतियों एवं संवेदनाओं के विस्तार के कारण हुआ है ।

सर्वनाम

सर्वनाम प्रयोग की दृष्टि से छायावादी कविता में पुरुषवाचक सर्वनामों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है । इन कवियों में प्रकृति एवं रहस्य सम्बन्धी कविताओं का अधिक वर्णन होने के कारण सर्वनामों का अधिक प्रयोग है । प्रसाद निराला-पंत-महादेवी आदि की कुछ कविताओं के शीर्षक भी सर्वनाम पर आधारित हैं - जैसे- निराला- तुम हमारे हो, तुम और मैं, कौन वह ? यहीं क्या हूँ, तुम और मैं, अकेला, तुम आए तथा महादेवी कौन है ? मैं और तू, उनसे कब, क्यों, कभी, कौन कहाँ उनसे । लगभग सभी छायावादी कवियों ने मैं और तुम के उत्तर-प्रत्युत्तर में कविताएँ की हैं -

> तू है नभ्की, मैं हूँ मौक्तिक
> तू है बकरा मैं हूँ मौक्तिक
> तू रंगा और मैं छूना
> पानी में तू बुल्बुला ।[1]

बाद की कविताओं में इनका इस तरह से प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता क्योंकि इस तरह का भाषिक रचना विधान तत्कालीन कविता के लिए उपयुक्त नहीं समझा गया । इन मूल सर्वनामों की अपेक्षा नये कवियों ने इनके विकारी रूपों तुम, तुम्हारा, मुझे, हमारा आदि का प्रयोग अधिक किया है ।

> कोई तुम्हीं से सीखे
> पर न जानें क्यों
> यह तुम्हारी शांति
> दर्द के इस चीख से
> ज्यादा भयानक बन सुनाई दे रही है,
> शोर सागर का समेटे
> बस, तुम्हीं तुम हो ।[2]

1- निराला रचनावली, भाग-2 पृ0 46

पुरुषवाचक सर्वनाम मैं, का ही यदि हम अध्ययन करें तो स्पष्ट हो जायेगा कि छायावादी कवि अपने अहं के प्रति अत्यन्त सचेष्ट हैं अर्थात् प्रत्येक परिस्थितियों में अनुभूति की सच्चाई और तीव्रता को व्यक्त करने के साथ-साथ कवि अपने अहंकार के प्रति भी सजग है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उसका यह "अहं तत्त्व:" बना हुआ है -

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा।
बह रही है हृदय पर केवल अमा
मैं अलक्षित हूँ, यही
कवि कह गया है।[1]

यहाँ विषम परिस्थितियों एवं जीवन का अंतिम समय मौजूद रहने पर भी कवि के अपने अहं भाव के प्रति सजगता देखी जा सकती है। पंत का कहना है कि -

मैं नहीं चाहता चिर सुख
मैं नहीं चाहता चिर दुख
दुःख सुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।[2]

अर्थात् यहाँ कवि आदिकालीन कवियों या परवर्ती कवियों की भाँति किसी ईश्वर से यह याचना नहीं करता कि उसका जीवन सुखमय कर दें या दुःखों को दूर करें। बल्कि वह कहता है कि दुःख-सुख जीवन में खेल की तरह से हैं आएं जायें उसे परवाह नहीं। कवि का अपने कवित्व के प्रति यह अहं भावलगातार बना हुआ है। कवि का यह अहंभाव प्रकारान्तर से राष्ट्रीय जनजागरण का भाव है जहाँ व्यक्तिवादी तथा समाज में वह अपने को किसी से कम समझने को तैयार नहीं। यह चेतना गाँधीवादी मूल्यों से निकलकर ही। कविता में आई है। इनके पुरुषवाचक सर्वनामिक

1- निराला रचनावली भाग-1 स्नेह निर्झर बह गया है।

2- पंत ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 24।

प्रयोग कवियों के इसी तथ्य को संकेत करते हैं । इसके अतिरिक्त इन कवियों द्वारा प्रयुक्त पुरुषवाचक सर्वनाम मैं, तुम, तू, इन का प्रयोग अधिकांशतः प्रश्नवाचक सर्वनामों के साथ हुआ है और ये प्रश्नवाचक सर्वनाम प्रकृति एवं ईश्वर के रहस्य की ओर भी संकेत करते हैं । प्रसाद की कविता -

> तुम हो कौन और मैं क्या हूँ ?
> इसमें क्या है धरा सुनो,
> मानस जलधि रहे चिर चुम्बित
> मेरे क्षितिज उदार बनो ।[1]

इस तरह के अनेक उदाहरण महादेवी पंत एवं निराला में भी दिखाई पड़ते हैं । सम्पूर्णतः यह छायावादी कविता की ही एक प्रमुख विशेषता है ।

छायावादी कवियों का पुरुषवाचक सर्वनाम मैं के प्रयोग में जो अहं भाव एवं व्यक्तिनिष्ठता का भाव दिखाई पड़ता है वह व्यक्तिनिष्ठता भी वस्तुतः समष्टि से ही जुड़कर आई है । जबकि आधुनिक कवियों की व्यक्तिनिष्ठता नितान्त वैयक्तिक है। उनका अनुभव ऐकान्तिक अनुभव है उसमें कोई दूसरा साझीदार नहीं । इसके विपरीत छायावादी कविता समष्टि से जुड़कर निकली है जो कवियों की निजी भावात्मक अनुभूति है - ‌

> मैंने मैं शैली अपनाई
> देखा दुःखी एक निज भाई
> दुःख की छाया पड़ी हृदय में
> झट उमड़ वेदना आई ।[2]

1- प्रसाद ग्रन्थावली [लहर] पृ0 336

2- निराला आत्महन्ता आस्था : दूधनाथ सिंह पृ0 20

हृदय पर पड़ी दुःख की यही छाया कवि को बार-बार अपनी रचनात्मक समृद्धि को तोड़ करके संवेदना तथा भाषिक संरचना दोनों धरातलों पर अपने दुखी भाई के निकट जाने को प्रेरित करती है । छायावादी कविता में कवियों द्वारा सर्व-साधारण को लेकर चलने के कारण ही कविता सभी द्वारा ग्राह्य है । छायावाद के बाद की कविता में सर्वसाधारण के अनुभव को व्यक्ति में निहित कर देने से कविता सामान्य पाठक से दूर हो गई है -

> स्वेद स्रोत अन्दर से फूटा मेरा गात शिथिल हिम शीतल
> मैंने साक्षात मृत्यु देख ली एक रात सपने में उज्ज्वल ।
> मैंने यह सब कहा किसी से तो कहलाया अपना खूनी
> जीवन चाह शान्ति हित जिसकी गोद अपेक्षित सूनी सूनी।[1]

निजवाचक सर्वनाम "आप का प्रयोग छायावादी कवियों विशेषकर निराला ने कहीं-कहीं क्रियावाची विशेषण के रूप में किया है -

> खड़ी सोचती लक्षित नयन मुख
> रखती पग डर काँप पुलक सुख
> हाँ अपने ही आप सकुच धँसि
> गति मृदु-मंद चली ।[2]

यहाँ धँसने क्रिया के विशेषण के रूप में आप शब्द अतिशयता का अर्थ दे रहा है । बाद के कवियों में भी यह प्रवृत्ति बनी हुई है -

> कभी-कभी
> पैरों की आवाज पूछती है
> किधर जा रहे हैं हम ?
> अपने आप से डर लगने लगता है ।[3]

1- तारसप्तक (मुक्तिबोध) पृ0 67
2- निराला रचनावली भाग 1 पृ0 186
3- बाँस का पुल: सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (राह पर) पृ0 177

छायावादी कवियों ने निजवाचक "आप" का प्रयोग कहीं-कहीं संज्ञा या सर्वनाम के अवधारण के लिए भी किया है । दिनकर की कविता है -

(i) अपनी छवि में मैं आप लीन
रह गयी विमुख करते विचार ।[1]

(ii) मैं आप कुछ ढूँढ़ारते में[2]

यहाँ स्वयं के लिए "आप" शब्द का प्रयोग हुआ है । कवि कविता में आत्मिक सम्प्रेषण की प्रणाली बनाने के लिए निजवाचक सर्वनाम आप के साथ एक और आप बगा अपना जोड़ देते हैं -

जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था वो पत्थर
सजग सा होकर पसरने लगा
आप से आप[3]

यहाँ पर निजता के लिए आप शब्द का प्रयोग हुआ है । छायावादी कवियों की अपेक्षा नयी कविता में आप शब्द का प्रयोग अधिक किया है -

आप तीन काम कर दें
तो हम नयी कविता को मान लें
एक तो, आप अपनी कविता का
नाम स्थिर कर दें ।[4]

यहाँ पर "आप" दूरी का संकेत करनेके लिए प्रयोग हुआ है ।

सम्बंधवाचक सर्वनाम जो के साथ तो वह वह ऐसा सब,कौन आदि सर्वनाम आते हैं । काव्यभाषा संरचना की दृष्टि से छायावादी कविता तथा प्रयोगवादी एवं प्रगतिवादी कविता में अधिकांशतः जो के साथ "वह" का ही प्रयोग हुआ है -

---

1- रश्मिलोक: दिनकर पृ0 सं0 67
2- रश्मिलोक: दिनकर पृ0सं0 50
3- कुछ और कविताएँ :शमशेरबहादुरसिंह पृ036
4- अनुपस्थित लोग भारतभूषण पृ065

(i) होता जो यह कौन सा शाप ?
भोगता कठिन कौन सा पाप ? ।

(ii) सत्य है वह आग
जो हमें जला गयी है,
सत्य है वह दुर्गन्ध ज्वार
जो चारों ओर फैल रहा है ।[2]

प्रश्नवाचक सर्वनामों की दृष्टि से छायावाद में "क्या" और "कौन" दोनों सर्वनामों का व्यापक प्रयोग है जिसका प्रमुख कारण कविता की रहस्यमूलक प्रवृत्ति है । "कौन" का प्रयोग अधिकतर जिज्ञासा के रूप में ही हुआ है -

कौन तुम ? संसृति जलनिधि तीर[3]

वाद के कवियों में कौन का अपेक्षाकृत कम प्रयोग हुआ है । फिर भी जिज्ञासा के ही अर्थों में बार-बार आया है -

कौन हो तुम ?
यहाँ कैसे आए ?[4]

कहीं-कहीं यह आश्चर्य तथा दुःख के लिए भी प्रयुक्त हुआ है । प्रश्नवाचक "क्या" प्रयोग भी छायावादी कवियों ने ही अधिक किया है यह किसी वस्तु का लक्षण जानने के लिए, तिरस्कार के लिए तथा आश्चर्य व्यक्त करने के लिए अधिक हुआ है-

जाग्रत सभा में क्या शांति थी ।
जागृति में सुप्ति थी -
जागरण क्लान्ति थी ।[5]

1- निराला रचनावली, भाग-1 पृ०सं० 290
2- काठ की घंटियाँ (दो अगर की बत्तियाँ) पृ० 69
3- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग 1, पृ०सं० 455
4- अनुपस्थित लोग, पृ० 47
5- निराला रचनावली, भाग-1 पृ० 132

इसके अतिरिक्त कहाँ और क्यों का भी प्रश्नवाचक सर्वनाम के रूप में बहुत अधिक प्रयोग मिलता है । साथ ही कविता की वाक्य योजना अन्वय विहीन वाक्य योजना होने पर भी बहुत ही कम ऐसे उदाहरण मिलेंगे जब इनका प्रयोग क्रिया के बाद हुआ हो ।

निश्चयवाचक सर्वनाम यह और वह छायावाद में जहाँ सामान्यतया संज्ञा पदों के साथ प्रयुक्त हुए हैं वहीं प्रयोगवाद-प्रगतिवाद के कवियों ने इसका अधिकतर क्रिया तथा विशेषण के साथ कविता में प्रयोग किया है -

तुम न जानोगे,
नम सुबह की वह पिघलती भाप
मैं ही हूँ ।[1]

दिनकर की कविताएँ में सर्वनामों के कुछ प्रयोग विशेषण की तरह भी हुए हैं जो प्रयोग की दृष्टि से अत्यन्त कलात्मक है -

(i) पर कैसा बाजार ? विदा दिन ।[2]

(ii) कैसा रोती रही किन्तु
कितने अपनूँ मुँह मोड़ चले ।[3]

यह, वह, ये आदि प्रयोगों द्वारा अतीत के सुन्दर चित्रों एवं बिम्बावलियों को रखने में भी कवियों को सहायता मिली है -

वे फूल और वह हँसी रही
वह सौरभ वह निःश्वास घना
वह कलरव वह संगीत अरे
वह कोलाहल एकांत बना ।[4]

1- अभी बिलकुल अभी, पृ0 22
2- रश्मिलोक: पृ0 19
3- रश्मिलोक: पृ0 86
4- कामायनी पृ0 139

यहाँ कामप्रेरित मनु देवसृष्टि के वैभवविलास का स्मरण कर रहे हैं । देवताओं और देवांगनाओं के उल्लास, स्वच्छन्द विहार तथा मादक संगीतमय वातावरण की अभूतता को कवि ने सर्वनामों की सहायता से संकेत किया है । इस तरह छायावादी कविता में वस्तु के विवरणात्मक वर्णन की प्रवृत्ति कम दिखाई पड़ती है और उसके स्थान पर सर्वनामों द्वारा सांकेतिक वर्णन की प्रवृत्ति अधिक है । वर्ण्य वस्तु का यह सांकेतिक वर्णन छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता है -

> निरत डालियों से यह कैसा
> फूट रहा हा ! रुदन मलिन -
> हम भी हरी-भरी थी पहिले
> पर अब स्वप्न हुए वे दिन ।[1]

यहाँ "यह कैसा" द्वारा कवि निश्चय ही रुदन की मार्मिकता को और तीव्रता प्रदान करने की कोशिश की है और "वे दिन" में "वे" सर्वनाम के प्रयोग द्वारा स्मृति के माध्यम से अतीत के भोग, विलास, सुख, सम्पन्नता आदि की ओर संकेत किया है । प्रसाद की कविता-

> कभी दे दिया था कुछ मैंने
> ऐसा अब अनुमान रहा ।[2]

यहाँ प्रसाद ने कुछ और ऐसा सर्वनाम के प्रयोग द्वारा अभिप्रेत वर्ण्य-विषय के सीधे-सीधे वर्णन करने से नष्ट होने वाले संभावित सौकुमार्य को बचाने के लिए इन सर्वनामों का प्रयोग किया है । निराला में भी यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है-

> मुझ भाग्यहीन की तू सम्बल
> युग वर्ष बाद जब हुई विकल
> दुख ही जीवन की कथा रही
> क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।[3]

1- पल्लव: पृ0 98

2- कामायनी पृ0 185

3- निराला रचनावली भाग-1 (सरोजस्मृति) पृ0 305

यहाँ श्रोता की नारी अनुभूतिगत तीव्रता जो स्वयं कवि की अनुभूति है "उपालक्ष्य" द्वारा नारी पीड़ा, दुःख, विकलता आदि व्यंजित हुआ है ।

सर्वनामों के संरचनागत विश्लेषण के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं –

1– अधिकांश छायावादी कविता भाववाचक संज्ञा और सर्वनामों की सहायता से निर्मित हुई है । इन कवियों ने सम्प्रेषणीयता एवं संवेदनागत अभिव्यक्ति दोनों के लिए इन सर्वनामों का उपयोग किया है –

2– इस समय सर्वनामों के अतिशय महत्त्व के चलते अनेक कविताओं के शीर्षक ही सर्वनामवाची शब्द रहे और छायावाद के अधिकांश कवियों ने मैं–तुम के उत्तर–प्रत्युत्तर शैली में कविताएँ की ।

3– द्विवेदीकाल में सर्वनामों के प्रति कवियों में अत्यधिक असंतोष दिखाई पड़ता है । इसलिए अपनी काव्यभाषा को सामर्थ्यशाली बनाने के लिए अनेक विकारी रूप सर्वनामों का विकास किया और इन्हें प्रचलन में ले आए । जो छायावाद और बाद की कविता– दोनों जगह व्यापक रूप में प्रयुक्त हुए हैं । यह स्थिति सर्वनाम के सभी भेदों में दिखाई पड़ती है ।

4– मैं पुरुषवाचक सर्वनामों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि छायावादी कवि अहंवादी कवि है और वे इसके प्रति सचेष्ट भी हैं ।

5– छायावादी कवि भविष्य या काल्पनिक वर्ण्य वस्तु के चित्रण में अधिकतर यथा कुछ सर्वनामों का उपयोग कर सांकेतिक पद्धति का सहारा लिया है ।

क्रिया

आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य की व्याकरणिक संरचना की दृष्टि से कवियों ने क्रिया का सबसे प्रभावशाली उपयोग किया है । आधुनिक हिन्दी कविता विशेषण एवं क्रिया की कविता है । छायावादी कवियों ने कविता में चमत्कार लाने के उद्देश्य से अधिकांश क्रियाओं का लाक्षणिक प्रयोग किया है और कविता में चमत्कार के साथ-साथ भावोत्कर्ष में भी सहायक हुए हैं । प्रसाद महादेवी पंत की कविता में क्रिया का चमत्कार जहाँ प्रकृति एवं सूक्ष्म सत्ता की विशिष्टता एवं सर्वोच्चता से ही जुड़कर रह गया है । जबकि निराला की दृष्टि क्रिया की सहायता से मानव-मन के गहरे भावबोध को भी स्पष्ट करने में सफल रही है -

> झूम झूम मृदु गरज-गरज घनघोर
> राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर
> अरे वर्ष के हर्ष !
> बरस तू बरस-बरस रसधार
> पार ले चल तू मुझको ।[1]

प्रसाद, पंत-महादेवी की कविता में क्रिया मन की सूक्ष्म मनोगत स्थितियों पर अधिक आधारित है । उन्हें अधिकतर कविता में लाक्षणिकता उत्पन्न करने के लिए ही प्रयुक्त किया गया है -

> छूने मसृण भुजमूलों से वह आमंत्रण था मिलता
> उन्नत वक्षों में आलिंगन सुख लहरों सा तिरता ।[2]

छायावादी कवियों की कविताओं में आकर्षक क्रिया का सर्वाधिक प्रयोग मिलता है । ये कवि मानवीयकरण के लिए इन क्रियाओं का प्रयोग करते हैं ।

1- निराला रचनावली, भाग-1 पृ0 116

2- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0सं0 556

इन कवियों ने क्रिया का प्रयोग मात्र वाक्य संरचना एवं अर्थ-साधन के लिए ही प्रयुक्त नहीं किया है। परन्तु इससे उन्हें संवेदना को विस्तार देने में भी सहायता मिली है। –

उच्छ्वास और आँसू में
विश्राम थका सोता है।[1]

पंत की अकर्मक क्रियाएँ विषय में सन्दर्भों को उभारने में अधिक सहायक है –

छोटी-सी पोटी-सी मृदु मुस्कान
छिपी सी, खिंची सखी-सी साथ।[2]

इसके विपरीत प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कवि अकर्मक क्रियाओं के प्रयोग से जीवन की सार्वजनीनता एवं व्यापकता को कविता में उभार पाने में सफल हुए हैं। ये क्रियाएँ कवि की अनुभूतियों को व्यक्त करने के साथ साथ उनका भाव चित्र भी उभार कर सामने रख देती है। नये कवियों विशेषकर अज्ञेय, केदारनाथ सिंह, नागार्जुन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने क्रियाओं का कविता के रूप में प्रभावशाली उपयोग किया है –

{I} नया उगा चाँद बारस का
लजीली चाँदनी लम्बी
थकी सँकरी दुखी दीर्घा[3]

{II} थकी-थकी सनी-सनी भौंहें
नीली नसों वाले ढके पपोटे[4]

1- प्रसाद ग्रन्थावली भाग-1 पृ०सं० 322
2- पंत ग्रन्थावली, भाग-1 पृ०सं० 179
3- सदानीरा: पृ० 194 {प्रतीक्षा}
4- सतरंगे पंखों वाली, पृ० 29

छायावादी कवियों ने सकर्मक क्रियाओं का उपयोग अधिकांशतः विशेषण की तरह किया है -

> जिस प्याली को पीती थी
> वह मदिरा क्यों नयन में ।[1]

इसी तरह नये कवियों में भी इनकी सहायता से अनुभवखण्डों को पकड़ने की कोशिश दिखाई पड़ती है । छायावादी क्रियाएँ जहाँ गढ़ी गई हैं वहाँ प्रगतिवादी प्रयोगवादी क्रियाएँ स्वयं कविता में उपस्थित होकर लोगों के दर्द को बोलती हैं -

> तरु गिरा
> जो
> झुक गया था गहन
> छायाएँ लिये ।
> अब तो
> हो उठा है मौन का डर
> और भी मौन ---
> बोलता थी जो उदासी की -
> बहन-सी, माँ, सखी,
> आज वह चुप है ।[2]

वर्तमानकालिक भूतकालिक एवं भविष्यकालिक क्रियाओं की दृष्टि से छायावादी क्रियाएँ वर्तमानकालिक एवं भूतकालिक सन्दर्भों को उभारने में अधिक सक्षम दिखाई पड़ती है ।-

---

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ० 313

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग जल का
यह व्यर्थ साँस चल चल कर
करती है काम अनिल का ।[1]

आकारिक क्रिया का छायावादी कवियों ने अत्यन्त कलात्मक उपयोग किया है। इसमें निराला अप्रतिम है । उनकी आकारिक क्रियाएँ अर्थ एवं अनुभूति के विस्तार के साथ-साथ सम्प्रेषण में भी प्रभावशाली भूमिका निभाई है -

कहती थीं माता मुझको राजीव नयन ।
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात: एक नयन ।[2]

बाद के कवि भी आकारिक क्रिया का संवेदना एवं अनुभूतियों को व्यक्त करने में उपयोग करते रहे । भारतभूषण अग्रवाल की कविताओं में इस तरह का प्रयोग विशेष रूप से प्राप्त होता है -

ओ मनभावन ।
धन्य कृपा जो आज पधारीं ठीक समय पर ।
खाली हाथ पसारे खड़ा हुआ था, यह छोटा सा भिखा ।[3]

भविष्य कालिक क्रियाओं के प्रयोग में कवि निरालाजैसे नये वातावरण कठिन स्थिति के बावजूद अच्छे भविष्य की आशा करते दिखाई देते हैं । अतः भविष्यकालिक क्रियाओं के द्वारा कवियों ने लोगों की जीजीविषा शक्ति को जोड़ने का प्रयास किया है -

कल अफसोस में ।
आज तो कुछ भी नहीं हूँ ।[4]

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 304
2- निराला रचनावली, भाग-1 पृ0 318
3- अनुपस्थित लोग:भारतभूषण अग्रवाल, पृ0 53
4- अभी बिल्कुल अभी:केदारनाथ सिंह पृ0 31

छायावादी कविताएँ प्रकृति-प्रेम एवं रहस्य प्रधान होने के कारण इन कवियों ने संभावनार्थ, संकेतार्थ एवं संदेहार्थ मूलक क्रियाओं का प्रयोग अधिक किया है । इन क्रियाओं के प्रयोग के मूल में इनका वर्ण्य विषय ही प्रभावी रहा है-

> पवन पी रहा था शब्दों को
> निर्जनता की उखड़ी साँस ।[1]

उनकी अधिकांश उत्तर-प्रयुक्तर शैली में रहस्यवादी भावना को व्यक्त करने वाली कविताएँ संदेहार्थ क्रिया की सहायता से निर्मित है । उसके बाद के अज्ञेय-सर्वेश्वर-नागार्जुन आदि कवियों ने निश्चयार्थ क्रिया का अधिक उपयोग किया है । ये क्रियाएँ समसामयिक जीवन के यथार्थ को चित्रण करने में सहायक हुई है -

> मैंने कौर को तराश
> देखो, कैसी भीनी गन्ध है ।
> तुमने उसे पीसा
> और चटनी बना डाली ।[2]

कविता में आज्ञार्थ क्रियाएँ आज्ञा उपदेश एवं निषेध के अर्थ में प्रयुक्त होती है लेकिन आधुनिक कविता में क्रिया सामान्यतः निषेध के लिए प्रयुक्त हुई है ।

> नहीं मूक होगी यह वाणी, भंग न होगी तान[3]

छायावादी कवियों में क्रिया-विशेषण के द्वारा अंतरंग पद चमत्कार की योजना पायी जाती है । निराला ने इस तरह का प्रयोग नये पत्ते गीतिका एवं अनामिका में किया है । पंत भी इसका उत्कृष्ट प्रयोग अपनी परिवर्तन नामक कविता में किया है -

> शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
> घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर ।[4]

1- प्रसाद ग्रन्थावली भाग-1 पृ० 429
2- अनुपस्थित लोग, पृ० 10 मुचित ही प्रमाण है।
3- वदनीरा भाग-1 पृ0136
4- पंत ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0223

छायावादी कवियों की कविताओं में सहायक क्रियाओं के लोप की प्रवृत्ति पायी जाती है । यह प्रवृत्ति निराला को छोड़कर शेष कवियों में अधिक है -

> हिलते द्रुम दल कल किसलय देती गलबाँही डाली
> फूलों का चुम्बन छिड़ती, मधुपों की तान निराली ।[1]

जबकि बाद के कवियों ने इस प्रवृत्ति को छोड़कर सहायक क्रियाओं का अर्थ एवं भाव सम्प्रेषण के लिए प्रभावशाली उपयोग किया ।

छायावादी कवियों ने कहीं-कहीं क्रिया का बहुत विचित्र प्रयोग किया है । यहाँ के एक क्रिया को स्पष्ट करने के लिए दूसरी क्रिया का प्रयोग करते हैं । निराला और बच्चन की कविताओं में इस तरह के उदाहरण मिलते हैं- इसमें एक क्रिया संज्ञा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है -

{i} हरिआ छिपाती है हरिता निजवास में
नतमस्तक भोगती प्रियतम का तन्-सुख ।[2]

{ii} कह तो सकते हैं कहकर ही
कुछ दिल हल्का कर लेते हैं ।[3]

छायावादी कवियों ने अपनी संवेदना और सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए क्रिया का एक साथ दुहरा प्रयोग करते हैं । यह प्रवृत्ति महादेवी की कविताओं में विशेष रूप से देखी जा सकती है -

> छल-छल जाता यह हिम दुराव,
> गा-गा उठते चिर मूक भाव[4]

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 311

2- निराला रचनावली, भाग-2 पृ0 194

3- अभिनव सोपान {मधुबाला}, पृ088

4- रश्मि, पृ0सं0 15

क्रिया के यदि कहीं अपने मूल रूप में प्रयुक्त होने पर तारतम्यता में बाधा पड़ती है तो उसके मूल रूप में मात्राओं को कम-ज्यादा करके संगीत पैदा की गई है -

पूर्णता यही भरने की
ढुल कर देना सूनेपन ।[1]

महादेवी की कविताओं में क्रियाओं के अनेक विलक्षण प्रयोग भी मिलते हैं ।

पाने में तुमको खोऊँ
खोने में समझूँ पाना ।[2]

जो कि वस्तुतः वाक्य प्रयोग वैचित्र्य है जबकि अर्थ के स्तर पर उनका कोई विरोध नहीं रहता है । छायावादी कवियों ने नवीन क्रियाओं के निर्माण में परम्परागत क्रियाओं में ही कुछेक लगभग परिवर्तन करके कविता में स्थान दिया है । बाद की कविता जो कि जनजीवन के यथार्थ से जुड़ी है अतः छायावादी क्रियाएँ वहाँ अनुपयोगी हो गई हैं ऐसे में नवीन क्रियाओं के लिए छायावादी कवियों ने देशज क्रियाओं का सहारा लिया और जीवन के अत्यन्त जटिल सन्दर्भों को व्यक्त करने में सफलता प्राप्त की । इन नवीन क्रियाओं में- लखते, जोहती, दुबके, अटके, छुवा गयी, पके हुए, घूम हुई, पिघल रही, लोकता मन, अगोरती, खोस लिया, सीजकर, धरा हुआ, पिला जायेगी, छींटा रखो आदि । एक उदाहरण -

है अगोरती विभा,
जोहती विभावरी
है अमा उजासमयी
भावलीन बावरी ।[3]

1- रश्मि पृ० सं० 22 ।

2- रश्मि पृ० सं० 24

3- कुछ और कविताएँ पृ० 50 (शमशेर बहादुर सिंह)

छायावादी कवियों में पंत ने भी कहीं-कहीं क्रियाओं का निर्माण किया है जो भाव एवं गेयता के अनुकूल है -

> शिखर पर विचर मरुत रखवाल
> वेणु में भरता शाक्य स्वर
> मेघों से मेघों के बाल
> कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर ।[1]

यहाँ मेघों के बच्चों के लिए कुदकना क्रिया अत्यन्त स्वाभाविक है जो बच्चों की चंचलता एवं कौतूहल वृत्ति को स्पष्ट कर देती है । इसके अतिरिक्त महादेवी की कुछ कविताओं में क्रियाओं को ऐसे प्रयोग भी दिखाई पड़ते हैं जो खड़ी हिन्दी बोली की कविताओं में प्रयुक्त नहीं हुए हैं -

{1} मैं आज चुपा आई चातक[2]

{11} आँसू ले भरा हिम के कण ढुलते[3]

1- पंत ग्रन्थावली भाग-1 {पल्लव} पृ0 185

2- महादेवी, यामा, पृ0 216, पृ0 204

3- महादेवी, यामा, पृ0 216 पृ0 204.

नये कवियों ने कहीं-कहीं पूरी कविता क्रियाओं के सहारा से ही निर्मित कर दी है। लेकिन यह कवियों का क्षमता प्रदर्शन अधिक है और इस तरह की कविताएं अपवाद के ही रूप में ही देखने को मिलती हैं। लेकिन कविताओं में क्रियाओं के अधिक उपयोग को नकारा न जा सकता -

> यह जो रद्दी बटोरता है
> यह जो पत्थर बेचता है, चांदी चीटता है नर्क कूटता है
> धौंकनी फूकता है, कलई गलाता है, रेती रेतता है,
> चौक लीपता है, बासन मांजता है, ईंटें उठाता है
> रुई धुनता है, गारा सानता है खटिया बुनता है
> मशक से सड़क सींचता है
> रिक्शा में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है
> जो भी जहाँ भी पिसता है, पर हारता नहीं, न मरता है-
> पीड़ित श्रमरत मानव।[1]

कविताओं में जहाँ सामान्यतः सहायक क्रियाओं को लोप करने की पद्धति अपनायी जाती है। आधुनिक हिन्दी कविता में यह परम्परा शिथिल पड़ी है। छायावादी कवियों विशेषकर निराला ने सहायक क्रियाओं का अपनी कविताओं काव्य में उत्कृष्टता लाने के लिए एवं वाक्य-विन्यास को एक आपेक्षित पूर्णता देने के लिए सहायक क्रियाओं का अत्यन्त प्रभावशाली उपयोग किया है-

> स्नेह निर्झर बह गयाहै।
> रेत ज्यों तन रह गया है।
> आम की यह डाल जो सूखी दिखी
> कह रही है- अब यहाँ पिक या शिखी
> नहीं आते, पंक्ति मैं वह हूँ लिखी
> नहीं जिसका अर्थ-
> जीवन दह गयाहै।[2]

1- अज्ञेय: सदानीरा, भाग-1 पृ0 27 (मैंने देखा)
2- निराला रचनावली भाग-2 पृ0 84

छायावाद के बाद की कविता में इस तरह की बात आम हो गई है । सहायक क्रियाएँ वाक्य-विन्यास के साथ पूरी स्वच्छन्दता पूर्वक प्रयुक्त की जाने लगी है । प्रायः सभी कवियों की कविताओं में इस तरह के प्रयोग बहुतायत में देखे जा सकते हैं -

> न जाने क्यों सदा को एक नाता
> इस व्यथा का उस कथा से
>   टूट जाता है,
> और मुझको कहीं सख्यातीत
> हो जाना
>   अधिक भाता है ।[1]

संज्ञा शब्दों की ही भाँति कवि द्वारा प्रयुक्त क्रियाओं में भी लक्षणा का सुंदर प्रयोग दिखाई पड़ता है । कवि इन क्रियाओं की सहायता से मानव मन की सूक्ष्म संवेदनाओं को स्पष्ट करने की लगातार कोशिश की है जो छायावादी कवियों विशेषकर प्रसाद और पंत में अधिक दिखाई पड़ती है-

> कनक छाया में जब कि सकाल
> खोलती कलिका उर के द्वार
> सुरभि पीड़ित मधुपों की बाल
> तड़प बन जाते हैं गुंजार ।[2]

यहाँ मधुप का स्वयं गुंजार बन जाना असंभव क्रिया है अतः लक्ष्यार्थ से स्पष्ट है कि भौंरे गुंजारने लगते हैं । प्रसाद की कविता-

> पीता हूँ, हाँ मैं पीता हूँ
> यह स्पर्श, रूप रस गंध भरा
> मधु लहरों से टकराने से
> ध्वनि में है क्या गुंजार भरा ।[3]

1- सीसतारसप्तक पृ० 292

2- पंत ग्रन्थावली भाग-1 (पल्लव) पृ० 196

3- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 (कामायनी) पृ० 479

यहाँ पीने का मन्तव्य कामजनित शारीरिक उपभोग से आनन्दित होने का है ।

क्रियाओं के अध्ययन के उपरान्त निष्कर्ष रूप में हम निम्नलिखित तथ्यों को रख सकते हैं –

1– सभी आधुनिक कवियों में क्रियाओं का विशिष्टता पूर्वक कलात्मक प्रयोग करने की प्रवृत्ति पायी जाती है । इन कवियों में क्रियाओं की सहायता से से बिम्बों को उभारने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है ।

2– छायावाद की कविताओं में स्वाभाविक क्रियाओं के माध्यम से कवियों ने मानसिक कार्य–व्यापार के सूक्ष्म एवं अछूते पहलुओं को उभारने का प्रयास किया है ।

3– छायावाद के बाद के कवियों ने नयी क्रियाओं को ग्रहण करने के रूप में देशज एवं ग्राम्य अप्रचलित क्रियाओं को ग्रहण किया है । इस कारण से उनकी कविता में नवीनता के साथ–साथ प्रेषणीयता भी बढ़ी है ।

4– भावों एवं सन्दर्भों पर बल देने के लिए छायावादी एवं बाद के कवियों ने क्रियाओं का द्वित्व प्रयोग किया है ।

विशेषण

छायावादी कविता रहस्य एवं कल्पना की कविता है अतः छाया-वादी कवियों ने अपने वर्ण्य एवं सन्दर्भ को विशिष्टता प्रदान करने के लिए विशेषण का अतिशय प्रयोग किया है । छायावादी कविता में यह विशेषण-प्रयोग दो स्तरों पर दिखाई पड़ता है - प्रथम इन कवियों ने मन की कोमल एवं सूक्ष्म संवेदनाओं के लिए नये विशेषणों का निर्माण किया है और ये विशेषण अधिकतर बिम्बधर्मी हैं, द्वितीय-परम्परागत विशेषणों का रूढ़ सन्दर्भों से हटकर नवीन अर्थों एवं संवेदनाओं के लिए प्रयोग किया है । इस तरह इन छायावादी कवियों ने विशेषण को एक तरह से शैलीय काव्यरूप का अंग बना दिया है । विशेषणों के उपर्युक्त कलात्मक उदात्त और बिम्बधर्मी रूप का उपयोग प्रायः सभी छायावादी कवियों ने किया है । परन्तु पंत का कल्पना-क्षेत्र अधिक व्यापक एवं समृद्ध होने के कारण उनकी कविता में विशेषणों का प्रयोग अत्यन्त उत्कृष्ट एवं व्यापक विशेषकर सौन्दर्य बोध के प्रसंग में यह योजना और भी प्रभावशाली हो गयी है -

स्वर्ण-शैशव स्वप्नों का जाल
मंजरित यौवन सरस रसाल ।[1]

यहाँ यौवन के विशेषण के रूप में "मंजरित" का प्रयोग अत्यन्त भावपूर्ण है । जो यौवन की मादकता की ओर संकेत करता है । वहीं स्वर्ण-शैशव बचपन के स्वर्णिम समय होने का संकेत करता है । छायावादी कवियों ने सामान्यतः विशेषण प्रयोग की दृष्टि से गुणवाचक विशेषणों का ही प्रयोग किया है । ये गुणवाचक विशेषण उनके मानसिक दृश्यावलियों को लाक्षणिकता प्रदान करते हैं । गुणवाचक विशेषणों की दृष्टि से कालवाचक विशेषणों में छायावादी कवि अधिकांशतः भूतकालिक विशेषण या भविष्यकालिक विशेषण का ही प्रयोग करते हैं -

कल-कल ध्वनि से हैं कहती
कुछ विस्मृत बीती बातें ?

1- पंत ग्रन्थावली, भाग-1, पृ0 25।

केवल निराला ही भूत-भविष्य के साथ वर्तमान कालिक विशेषणों को भी काव्य में रखा है । जबकि बाद के नये कवियों की कविताओं में अतीत के प्रति कोई मोह नहीं है वे वर्तमान संघर्षमय जीवन का ही चित्रण करने का प्रयास किया है। जिससे उनकी कविताओं में अंतिम पुरातन, पिछले आदि विशेषणों के स्थान पर नूतन, चिर नवीन, नये आदि काल वाचक विशेषणों का प्रयोग अधिक होने लगा है जो जीवन के प्रति कवियों के आस्था का प्रतीक है–

> यह प्रथम प्रदीप निमिष है नये उजेले का
> जीवन के नये जागरण का
> अब युग की अंधियारी रजनी मिटने को है ।[1]

छायावाद में आकारवाचक विशेषणों सीमित प्रयोग के चलते काव्यभाषा के स्तर पर उनकी कोई प्रभावशाली भूमिका का नहीं है, वे मात्र परम्परानिर्वाह के लिए ही आए हैं जबकि प्रगतिवादी प्रयोगवादी कवियों ने आकार वाचक विशेषणों का भी कलात्मक सार्थक प्रयोग किया है –

> झुकी हुई पलकों में दो बड़े-बड़े मोती छिपाये
> और जितने सुडौल गेहूँ बालों पर
> साड़ी में टँकी हुई फिरोजिया की
> बेल की परछाईं नन्हें-नन्हें सफेद
> फूलों की माला बना रही है ।[2]

छायावादी कवियों ने अपनी कविता में दशासूचक गुणवाचक विशेषणों की दृष्टि से वियोगात्मक दशा एवं संयोगात्मक दशा इन्हीं दो पक्षों को ही चित्रित करने का प्रयास किया है इसके कारण वे समाज की यथार्थ दयनीय दशा का चित्रण करने में सफल नहीं हुए हैं। उनके दशावाची विशेषण शीतल ज्वाला, मुग्धकथाएँ, शांतधार,

---

1– धूप के धान (भोर: एक लैण्डस्केप) पृ० 3
2– काठ की घंटियाँ (प्रेम नदी के तीर) पृ० 72

चंचल मन मलिनमुख, कंपित अधरों, फटे पत्र, गीतगान, सिहरती संध्या, रोमांचपुलक आदि विशेषणों के आस-पास ही सिमट कर रह गये हैं । जबकि बाद के नये कवियों ने अपने दशामूलक गुणवाचक विशेषणों की सहायता से सामाजिक जीवन का चित्रण करने में सफल रहे हैं –

> कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
> कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास ।[1]

रंगमूलक गुणवाचक विशेषणों में कवियों ने अपनी-अपनी कविता की प्रकृति के अनुरूप विशेषणों का चयन किया है । प्रसाद–नीला, पीला, उज्ज्वल, काली, सुनहरी आदि का निराला ने काला, लाल, हरा, सुनहला आदि विशेषणों का, पंत और महादेवी ने सुनहला गुलाबी, सांवला, नीला, पीला विशेषणों का दिनकर ने अधिकांशतः लाल रंगमूलक विशेषण शब्द का चयन किया है । बाद के कवियों ने लाल, पीले नीले-काले विशेषणों के अतिरिक्त दुधिया, सफेद, धुँधले आदि रंगवाची विशेषणों का भी प्रयोग किया है –

> धूप नहीं पाउँगा पड़ी बिताऊँगी
> घुल गई दुधिया निगाहों में[2]

छायावादी कविता गुणवाचक विशेषणों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है । इन विशेषणों के चयन में अधिकतर लाक्षणिक प्रयोग ही हुए हैं । उन्होंने विशेष्य के सम्पूर्ण गुण-धर्म का अनुभव अत्यन्त बारीकी से करके सन्दर्भानुसार नये विशेषणों का निर्माण करके अथवा पुराने विशेषणों का कलात्मक प्रयोग कर कल्पना एवं अनुभव को विस्तार प्रदान किया है –

> अरी व्याधि की सूत्र धारिणी! अरी आधि मधुमय अभिशाप
> हृदय-गगन में धूमकेतु सी पुण्यसृष्टि में सुंदर पाप ।[3]

1– सतरंगे पंखों वाली (अकाल और उसके बाद पृ0 30

2– सतरंगे पंखो वाली: नागार्जुन (खुरदुरे पैर) पृ0 21

3– ओ अप्रस्तुत मन, भारतभूषण अग्रवाल पृ0 23/4

यहाँ प्रसाद ने अभिशाप के लिए मधुमय और पाप के लिए सुंदर विशेषण का उपयोग किया है । बाद की कविता जीवन की कविता होने के कारण उसमें उतनी कला-त्मकता नहीं आ पाई है लेकिन उनका बिम्बात्मक प्रयोग अत्यन्त प्रभावशाली है-

> टेर दे
> छूटते तिमिर को स्वरों से बिखेर दे
> अभी पल अपने ही
> मौन अँधियारे से
> तेरे अनगिनती अपरिचित
> सजोगी
> प्रतिध्वनि उठायेंगे
> गायेंगे ।[1]

यहाँ प्रभातकालीन चेतनाकी सूचना देने के लिए पक्षी जो जीवन की चेतना के प्रतीक हैं, अपना स्वर बिखेर रहे हैं, वैसे स्वर के रूप में ही किरण का आगमन हो रहा है पर अँधेरा ~~नहीं~~ बाहर अपितु मन के आकाश में ही घिरा है । उषा भी विस्मृत होकर खो गई है । अंधकार में सिर्फ मौन का साम्राज्य है । ऐसे मौन अँधेरे को मानो ही स्वर से भेद सकने में समर्थ है । अतः गहन निराशा ही मौन अँधियारा है । अतः यहाँ अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मौन विशेषण अत्यन्त प्रभाव-शाली है । इसी तरह के सामर्थ्यशाली प्रयोग सर्वेश्वर की कविताओं में भी दिखाई पड़ते हैं -

> शायद कल
> किसी के कन्धे पर चढ़कर
> फिर मेरा पौना अहं
> विवश हाथ फैलाये
> जितनी भी ध्वनि शेष है

1- ओ अप्रस्तुत मन, भारतभूषण अग्रवाल पृ0 23/8

इन बूढ़ी रगों में
सजो
ओ काठ की घंटियो
सजो ।[1]

इसमें सर्वेश्वर जी ने विशेषण से मानवीय दुर्बलता को व्यक्त करने के साथ साथ उससे जिन्दगी का आस्थापरक संदेश भी देने की कोशिश करते हैं ।

कहीं कहीं विशेषणों का विशेष्य लुप्त रहता है छायावादी कविता में इस तरह के कई उदाहरण मिलते हैं -

छोटी सी की क्या पहचान ?[2]

कहीं-कहीं विशेषणों का संज्ञा के रूप में भी प्रयोग होता है ।

आँख दिये की काजल-काली, फिर, सागर से है अलसानी
स्नेही । हम भी थके हुए हैं, फिर निद्रा में सो चलें ।[3]

यहाँ अज्ञेय ने दुःख एवं संघर्षपूर्ण जीवन को स्नेही सम्बोधन दिया है जो इस भावपूर्ण अर्थ का संकेत करता है कि कवि के सम्पूर्ण जीवन में दुःखों एवं संघर्षों का ही साथ रहा है। छायावादी कविता में सम्बोधन के लिए अधिकतर गुणवाचक विशेषणों का प्रयोग हुआ है जो सम्बोधित व्यक्ति एवं वस्तु के साथ उसके गुणों का भी संकेत करते हैं -

क्यों इतना आतुर ठहर जरा ओ गर्वीले ।
जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले ।[4]

1- ~~ओ अप्रस्तुत मन, [illegible] पृ0~~
काठ की घंटियाँ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ0 168

2- पंत ग्रन्थावली भाग 1, पृ0108

3- सदानीरा, अज्ञेय पृ0 138

4- प्रसाद ग्रन्थावली कामायनी (संघर्ष) पृ0 61।

यहाँ यद्यपि विशेषण ऋतु के साथ-साथ उनकी मानसिक स्थिति का भी द्योतित करता है। छायावादी कवियों ने विशेषणों का प्रयोग वस्तु के चित्रांकन एवं भावांकन दोनों के लिए किया है। और वे इनके प्रयोग के द्वारा विशेष्य के अनेक एवं अस्पष्ट आकार वाले रूप को एक साकारी एवं स्पष्ट बनाया है। अतः कवि विशेषण का प्रयोग किसी अभिप्राय को विशेष प्रकार से प्रकट करने के लिए किया जाता है। कवि विशेषणों से वर्ण्य विषय का विस्तार करता है। इस कारण वह अपने मानसिक छायावादियों में लाक्षणिक विशेषणों को प्रस्तुत करता है। पंत में इस प्रकार के अनेक लाक्षणिक विशेषणों की योजना दिखाई पड़ती है -

> अरि यह क्या केवल दिखलाव
> मूक व्यथा का मुखर भुलाव
> अथवा जीवन का बहलाव ?[1]

"मूक व्यथा का मुखर भुलाव" चरण में व्यथा नहीं वरन् व्यथित व्यक्ति ही मूक है, दूसरी ओर "भुलाव मुखर नहीं भूलने वाला है। इस तरह से दो व्यक्तियों में दुहरा विपर्यय किया गया है। निराला द्वारा प्रयुक्त विशेषण अर्थबोध के स्तर पर बड़े प्रभावशाली है इसका प्रमुख कारण उन विशेषणों का चित्रविधायिनी शक्ति से सम्पन्न होना है -

> काँपते हुए किसलय झरते पराग-समुदाय
> गाते खग नव जीवन परिचय तरु मलय-वलय
> ज्योतिःप्रपात स्वर्गीय ज्ञात छवि प्रथम स्वीय
> जानकी नयन कमनीय प्रथम कंपन तुरीय।[2]

यहाँ जानकी के सौन्दर्य बोध में प्रयुक्त विशेषण काँपते हुए, नव स्वर्गीय कमनीय,

---

1- पंत ग्रन्थावली, भाग-1 (पल्लव) पृ0212

प्रथम आदि द्वारा सीता की विविध क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं, प्रेममय उल्लास के साथ-साथ राम के मनोगत भावों को भी स्पष्ट करने में कवि सफल रहा है । छायावाद के बाद के कवियों ने विशेषणों का छायावादी कविता से कुछ भिन्न प्रयोग किया है । ये कवि विशेषणों के द्वारा ही कविता के वर्ण्य-वस्तु को स्पष्ट करते हैं और उसकी पूरी सम्वेदना को उभार कर सामने लाते हैं । इस तरह के प्रयोग में नागार्जुन, शमशेर बहादुर सिंह सर्वेश्वर विशेष रूप से सिद्धहस्त हैं –

बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी-सुनहली फसलों की मुस्कान
बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी भर छू पाया
अपनी गँवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल
बहुत दिनों के बाद ।[1]

इसमें नागार्जुन सुनहली फसल, गँवई पगडंडी, चंदनवर्णी धूल विशेषणों के द्वारा गाँव के वातावरण, उसकी सादगी भरी पवित्रता उसमें रहने वाले किसानों की संवेदना को स्पष्ट किया है और अभिप्रेत वर्ण्य सन्दर्भ को उभारने में पूर्ण सफल रहे हैं । नये कवि विशेषणों का सादृश्यवाचक ढंग से प्रयोग करते विशेष्य के अर्थ की उद्भावना प्रत्यक्ष न करके सादृश्य के रूप में रखते हैं और इनका विशेषण भी विशेष्य को ही केन्द्र में रखकर किया जा सकता है –

पार्श्व गिरि का नम्र
चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों सी
बिछी पैर के नीचे ज्यों दर्द की रेखा
विहग शिशु मौन नीड़ों में मैंने आँख भर देखा।[2]

1- सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन (बहुत दिनों के बाद) पृ0 23

2- सदानीरा (इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये) अज्ञेय, पृ0

यहाँ नदी की उमंग एवं दर्द की रेखा जैसे अत्यन्त सुपरिचित जीवन अनुभूति के माध्यम से यह धारा है तथा उमंगों की एवं दर्द की रेखा के माध्यम से प्रभावमय जीवन को स्पष्ट किया है ।

संख्यावाचक विशेषण की दृष्टि से छायावादी तथा प्रगतिवादी प्रयोगवादी कवियों ने निश्चित संख्यावाचक विशेषण के गणनावाचक और क्रमवाचक विशेषणों का प्रयोग अधिक किया है । गुणावाचक विशेषण में पूर्णांकबोधक विशेषण का प्रयोग अधिक है । सभी कवियों की काव्यभाषा में अधिकांशतः एक दो तीन की कोटि- पूर्णांकबोधक विशेषण ही अधिक मिलते हैं केवल निराला ने इसके अतिरिक्त संख्याओं का भी विशिष्ट कलात्मक उपयोग किया है -

> एन्ट्रेन्स पास है लड़की वह,
> बोले सुनो, छब्बिस की तो
> वर की है उम्र, ठीक तो है
> लड़की भी अट्ठारह की है ।[1]

बाद में यह प्रवृत्ति नये कवियों में गिरिजा कुमार माथुर में कुछ दिखाई पड़ती है-

> भैरव के मन्द्र स्वरों के पहले कंपन-सा
> ये सात पहरुए उतर गये हैं पश्चिम में
> ले अँधियारे का सिंहासन[2]

अपूर्णांक बोधक विशेषणों में आधा, तिहाई और सवा आदि विशेषणों का ही अधिक प्रयोग हुआ है तथा अन्य अपूर्णांक बोधक विशेषण कविता में लगभग न के बराबर प्रयुक्त हुए हैं -

> उम्र की इस तीसरी मीनार पर
> मंजिलें मैंने तिहाई पार कीं ।[3]

1- निराला रचनावली, भाग-1 (सरोजस्मृति) पृ0300

2- धूप के धान: गिरिजाकुमार माथुर पृ03

3- धूप के धान: गिरिजाकुमार माथुर, पृ085

क्रमवाचक आवृत्तिमूलक निश्चित संख्यावाची विशेषण का प्रयोग हिन्दी कविता में कहीं-कहीं ही दिखाई पड़ता है । क्रमवाचक विशेषणों में पहला-दूसरा तीसरा का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है । निराला की कविताओं में क्रमवाचक विशेषण का सुन्दर प्रयोग राम की शक्तिपूजा में दिखाई पड़ता है -

ज्योतिप्रपात स्वर्गीय ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी नयन कमनीय प्रथम कंपन तुरीय ।*

इसके अतिरिक्त अन्य क्रमवाचक विशेषणों का प्रयोग कहीं दिखाई नहीं देता । इसी तरह आवृत्तिमूलक विशेषणों में दुगुना तिगुना चौगुना ही मुख्य रूप से प्रयुक्त हुए हैं -

भीमकाय दुहरे तीहरे पुल ।

इसी तरह प्रत्येकबोधक एवं समुदायबोधक निश्चित संख्यावाचक विशेषण परम्परागत रूप से आए हैं । प्रत्येकबोधकों में प्रतिपल प्रतिदिन हरघड़ी आदि सामान्य विशेषणों का ही प्रयोग हुआ है । जो विशेष किसी सन्दर्भ के लिए प्रयुक्त नहीं हुए है । इसी तरह समुदायमूलक विशेषण के परम्परागत रूप-दोनों हाथ, चौदह भुवन आठो याम, चारों दिशाएँ, चतुर्भुज आदि रूपों का ही प्रयोग हुआ है । जिसका आधुनिक कवियों ने भाव एवं सन्दर्भ के अनुकूल रखने का प्रयास किया है -

दो-दो पैर
हाथ दो-दो
प्रवाह में खिसकती रेत कैसे रहे टोह
बहुधा अवतरित चतुर्भुज नारायण ओट ।[2]

सार्वनामिक विशेषणों की दृष्टि से कुल सार्वनामिक विशेषण यह वह कोई, कुछ अत्यधिक प्रयुक्त हैं । छायावादी कविता में ये विशेषण जहाँ संज्ञा के पूर्व जुड़कर संज्ञापद के सामान्य वस्तुओं से उसके अलगाव के लिए प्रयुक्त हुए हैं और इनके द्वारा सन्दर्भगत वैशिष्ट्य उभारने की कोशिश की गई है । जबकि बादकी

---

* निराला रचनावली भाग 1 पृ 319

1- धूप के धान: गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 59

2- सातों पंखों वाली. पृ0 19

कविता में ये विशेषण क्रियापदों के साथ अधिक जुड़कर प्रयुक्त हुए हैं । जिससे ये अधिक व्यापक सन्दर्भों का निर्माण करने में सफल हुए हैं ।

संयुक्त सार्वनामिक विशेषण ऐसा, वैसा, जैसा इतना, उतना आदि का यथावसर प्रयोग हुआ है । छायावादी कविता में इसका प्रयोग नयी कविता के कवियों की अपेक्षा काफी कम है, इसका प्रमुख कारण वस्तुगत संवेदना की सीमित परिधि थी । जबकि इसके विपरीत प्रगतिवादी प्रयोगवादी कवियों की भिन्न सामाजिक अनुभूति एवं भिन्न वाक्य संरचना के फलते इसका प्रयोग कविता में अधिक हुआ है -

मन में जितने अनुभव गहरे
इतनी ही मौन तथा मुख पर
हैं घेरे जितनी ज्वालाएँ
उतना ही शीतल है अन्तर
पृथ्वी जैसा सन्तोष परम
मिट्टी का मन उर्वर उदार ।[1]

विशेषणों के सम्यक् विश्लेषण के बाद निष्कर्ष रूप में हमें निम्नलिखित निष्कर्ष हमें प्राप्त होते हैं -

(1) छायावादी कवियों ने अपनी कविता में गुणवाचक विशेषणों का अधिक प्रयोग किया है जो उनकी रहस्य, प्रकृतिप्रेम, एवं वायवी कल्पना का परिणाम है, और संवेदना की दृष्टि से उसके अधिक निकट भी है । जबकि बाद के कवियों ने भी गुणवाचक विशेषण का प्रयोग अधिक किया है लेकिन वे उनके अनुभूतिगत सूक्ष्म निरीक्षण पर आधारित है ।

1- धूप के धान: (मिट्टी की केसर) पृ० 107

(2) छायावादी कविता के अधिकांश विशेषण ऐसे हैं जो छायावादी कवियों की मनोगत सुकुमार भावों से निकले हैं। इसीलिए ये विशेषण मानसिक व्यापा- रों में अधिक प्रतीत होते हैं।

(3) छायावादी कवियों एवं बाद के कवियों ने पुराने विशेषणों का रूढ़ अर्थ-संकेतों से हटकर नये सन्दर्भों में प्रयोग किया है। इसीलिए यहाँ भी नवीनता दिखाई पड़ती है।

(4) संख्यावाचक विशेषणों में निश्चित संख्यावाचक विशेषण तथा गुणवाचक विशेषण का प्रयोग द्विवेदीकाल के कवियों द्वारा अधिक किया गया है लेकिन यहाँ अधिकतर परम्परा का ही निर्वाह मिलता है। निराला जैसे कुछ कवियों ने यहाँ भी कलात्मक चित्र उपस्थित करने में सफल हुए हैं।

(5) सार्वनामिक विशेषणों में मूल सार्वनामिक विशेषणों का प्रयोग अधिक है जो वस्तु के किसी एक विशेष पर ध्यान आकर्षित करने में सफल हुआ है। जबकि नये कवियों ने यथार्थवादी अनुभूति को पूर्णतः सम्प्रेषित करने की कोशिश में संयुक्त सार्वनामिक विशेषणों का भी प्रयोग किया है।

(6) छायावादी तथा छायावाद के बाद के कवियों ने अर्थ एवं सन्दर्भ के साथ-साथ अभिप्रेत अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विशेषणों को समुच्चय रूप में रखा है। इसके परिणामस्वरूप कविता में कलात्मकता की वृद्धि हुई है।

लिङ्‌ग

==========

काव्यभाषा के स्तर पर कवियों ने लिङ्‌गों का वैविध्यपूर्ण प्रयोग किया है। सामान्यतः कवियों ने पुल्लिंग के लिए पुलिंग और स्त्रीलिंग के लिए स्त्रीलिंगवाची शब्दों का ही प्रयोग किया है। लेकिन रचना के स्तर पर इन कवियों ने कविता में कलात्मकता लाने के लिए "लिङ्‌ग विपर्यय" का प्रयोग किया है। छायावादी कवियों की कविताओं में इस तरह के प्रयोग अधिक दिखाई पड़ते हैं। इसका प्रमुख कारण इन कवियों की प्रकृतिगत सौकुमार्य चित्रण, रहस्यपरक भावनाओं की अभिव्यक्ति तथा सौन्दर्यगत चित्रण है, जिसके चलते इन कवियों में कलात्मकता लाने के लिए लिङ्‌ग विपर्ययगत प्रयोगों का भी सहारा लिया है। छायावादी कवियों में प्रसाद और पन्त में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। जिन्होंने लिङ्‌ग वैविध्य के लिए पुल्लिंग का स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग का पुल्लिंग के रूप में प्रयोग किया है -

> कौन हो तुम वसंत के दूत
> विरस पतझर में अति सुकुमार
> घन तिमिर में चपला की रेख
> तपन में शीतल मन्द बयार।[1]

कामायनी के इस छन्द में मनु ने श्रद्धा को सम्बोधित करके स्त्रीलिंग के लिए पुल्लिंग शब्दों का व्यवहार किया है जो "लिङ्‌ग- विपर्यय" का उदाहरण है। लिङ्‌ग विपर्यय की यह प्रवृत्ति पन्त में विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। उन्होंने पुलिंगवाची शब्दों के लिए स्त्रीलिंग के शब्दों का बहुत अधिक प्रयोग किया है -

---

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग- 1, पृ0- 460.

हा मेरे बचपन से कितने बिखर गए जग के शृंगार,
जिनकी अविकच दुर्बलता ही थी जग की शोभालंकार।
जिनकी निर्भयता विभूति थी सहज सरलता शिष्टाचार,
औ जिनकी अबोध पावनता थी जग के मंगल का द्वार[1]।

इसी तरह से स्त्रीलिंग के लिए पुल्लिंग शब्दों का भी व्यवहार कविता में किया है -

इस नीले अँचल की छाया,[2]
मैं जग ज्वाला का झुलसाया।

इसके अतिरिक्त छायावादी कवियों ने पुल्लिंगवाची शब्दों के साथ स्त्रीलिंग शब्दों को रखकर भी कविता में चमत्कार लाने की कोशिश भी की है -

पंकज कली
किस मलय सुरभित अंक रह -
आया विदेशी गंधवह ?
उन्मुक्त उर अस्तित्व खो
क्यों तू उसे भुज भर मिली ?[3]

पंकज पुल्लिंग शब्द है लेकिन "कली" जोड़ देने पर वह स्त्रीलिंग हो गया है और "गंधवह" (मलयानिल) पुल्लिंग शब्द है अतः यहाँ "पंकजकली" और "गंधवह" के प्रणय व्यापार की ओर कवि संकेत कर रहा है। पुल्लिंगवाची क्रिया के साथ स्त्रीलिंगमूलक शब्दों को रखने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है जो अधिकतर छायावादी कविता में मिलती है -

चला मीन दृग वारों ओर
गह-गह अँचल अँचल छोर
रुचिर रूपहरे पंख पसार
अरी वारि की परी किशोर।

1- पन्त ग्रन्थावली, भाग-1, पृ0- 220.
2- अभिनवसोपान (मधुबाला), पृ0- 63.
3- यामा : महादेवी, पृ0- 225.

यहाँ "मीन दृग" स्त्रीलिंग है लेकिन उसके साथ पुल्लिंगवाची क्रिया "चला" का प्रयोग किया गया है। इसी तरह "परी" स्त्रीलिंगसूचक शब्द के साथ पुलिंग "किशोर" शब्द का प्रयोग हुआ है।

छायावाद के बाद के कवियों ने लिङ्ग विपर्यय की सहायता से कविता में कलात्मकता लाने का प्रयास नहीं किया है, लेकिन कहीं-कहीं इस तरह के उदाहरण दिखाई पड़ ही जाते हैं जो छायावादी कविता का प्रभाव माना जा सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के बाद सार रूप में निम्नलिखित निष्कर्ष रख सकते हैं -

1- छायावाद तथा प्रगति-प्रयोगवादी कवियों ने कविता में लिङ्ग विपर्यय के द्वारा कलात्मकता और सम्प्रेषण में विस्तार लाने की कोशिश की है।

2- छायावादी कवियों ने इस लिङ्ग के प्रयोग में स्त्रीलिङ्ग विपर्यय का प्रयोग अपनी कविताओं में अधिक किया है।

कारक

कारक प्रयोग की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता में दो स्पष्ट भाग दिखाई पड़ते हैं - (क) छायावादी कविता, (ख) छायावादोत्तर कविता। छायावादी कविता में कलात्मकता और कविता के शैल्पिक पक्ष पर अधिक जोर होने के कारण सहायक क्रियाओं की तरह कारक चिह्नों को भी छोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। सम्प्रदान कारक, अपादान कारक तथा सम्बोधन कारक चिह्नों के पेयक प्रयोग में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से परिलक्षित होती है। छायावादी कवियों में पन्त में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से देखी जा सकती है -

> जीने का उज्ज्वल सपने
> तपता निज प्राणों का धन[1]

यहाँ सम्प्रदान कारक चिह्न "के लिए" को तुक की रक्षा के लिए छोड़ दिया गया है। छायावादी कवि निराला की प्रारम्भिक कविताओं में कारक चिह्नों को लय की रक्षा के लिए जहाँ छोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है वहीं बाद की कविताओं में संवेदना का सहज एवं ग्राह्य बनाने के लिए उनका स्वाभाविक प्रयोग किया है -

> वे जो जमुना के - से कछार
> पद फटे बिवाई के, उधार
> खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
> चमरौधे जूते से सकेल
> निकले, जी लेते, घोर गन्ध
> उन चरणों को मैं यथा अंध
> कल घ्राण- प्राण से रहित व्यक्ति
> हो पूजूँ, ऐसी नहीं शक्ति।[2]

1- पन्त ग्रन्थावली, भाग-1, पृ0- 245.
2- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0-303.

यहाँ पर निराला सम्बन्धकारक को 'अपादानकारक (से रहित) तथा कर्मकारक (को) का उत्कृष्ट कलात्मक प्रयोग कर वर्ण्यवस्तु की कुरूपता को उभारने में पूरी तरह सफल रहे हैं। यहाँ बट के पेड़ जमुना के समान, और जिनके ते उधार खाने वालों के मुख की तरह कान्तिहीन तथा पैले हुए हैं। दिनकर आदि की कविताओं में भी यथानुरूप लय एवं तुक की रक्षा के लिए कारकचिह्नों का प्रयोग नहीं किया गया है -

देखि दुख्य है वर्तमान की,
यह असीम पीड़ा सहना।[1]

यहाँ कर्मकारक चिह्न "को" का लोपकर लय की रक्षा की गई है, अतः यहाँ पीड़ा ते सहना की जगह "पीड़ा सहना" का प्रयोग किया गया है।

छायावाद के ही बाद के काव्यान्दोलनों जैसे प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता में कारक चिह्नों के प्रयोग में कवियों में किसी प्रकार का संकोच नहीं पाया जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस समय तक शैल्पिक कलात्मकता पर जोर देने का प्रचलन कुछ घट सा गया है और कविता को सहज एवं सपाट लिखने की प्रवृत्ति बढ़ी है, जिसके कारण अज्ञेय, नागार्जुन, सर्वेश्वर, केदारनाथ अग्रवाल, भारतभूषण अग्रवाल आदि कवियों ने कारकीय चिह्नों का यथावश्यक प्रयोग किया है -

प्रस्फुटन के दो क्षणों का मोल शेफाली
विजन की धूल पर चुपचाप
अपने मुग्ध प्राणों से अजाने आँक जाती है।[2]

उपर्युक्त पंक्तियों में अर्थ के स्पष्टार्थ कारकीय चिह्नों के, का, की से आदि का निःसंकोच प्रयोग किया गया है। छायावादी कवियों में सम्बोधन पर कारकीय प्रभाव हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत का अधिक है, कहीं-कहीं संस्कृत के मूल रूप का ही प्रयोग मिल जाता है -

---

1- रश्मिरथी, पृ०- 107.
2- सदानीरा, भाग-1, पृ०- 137.

शैवलिनी । जाओ मिलो तुम सिन्धु को
अनिल । आलिंगन करो तुम गगन को
चन्द्रिके । चूमो तरंगों के अधर
उडुगणों । गाओ पवन वीणा बजा । [1]

यहाँ पर प्रयुक्त "चन्द्रिके" मूलरूप में संस्कृत का सम्बोधन कारकीय प्रयोग है। इस तरह के प्रयोग कहीं-कहीं ही दिखाई पड़ते हैं। छायावादी कविता भावप्रधान कविता होने के कारण इन कवियों के अधिकांश सम्बोधन कारक व्यक्तिवाची न होकर गुणवाची हैं जो व्यक्ति के साथ-साथ उसके गुणों का भी संकेत करते हैं। यह प्रवृत्ति अधिकांश छायावादी कवियों में देखने को मिलती है -

(i) रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही ।
जाते रही अधीर शांत । [2]

(ii) ऐ निर्बन्ध ।
अन्धतम- अगम- अनर्गल- बादल
ऐ स्वच्छन्द ।
मन्द चंचल- समीर रथ पर उच्छृंखल । [3]

प्रथम में छ्ब कुछ छोड़कर जाते हुए मनु के लिए "निर्मोही" सम्बोधन प्रयुक्त हुआ है जो मनु के साथ-साथ उनकी भावमूलक स्थिति को भी स्पष्ट कर रहा है। दूसरे में निराला द्वारा बादल के लिए दो सम्बोधन निर्बन्ध एवं स्वच्छन्द के प्रयोग हुए हैं। छायावादी कवियों में दिनकर की ही कविताओं में गुणवाचक सम्बोधन की अपेक्षा व्यक्तिवाची सम्बोधन अधिक प्रयुक्त हुए हैं -

---

1- पन्त ग्रन्थावली, भाग - 1, पृ0-134 (ग्रन्थि)
2- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग - 1, पृ0-564.
3- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0-116.

तू पूछ अवध से राम कहाँ ?
वृन्दा! बोलो घनश्याम कहाँ ?
ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक ?
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ ?
री कपिलवस्तु ! कह बुद्धदेव
के वे मंगल उपदेश कहाँ[1] ?

काव्यभाषा में कारक प्रयोग की दृष्टि से सबसे उत्कृष्ट एवं कलात्मक प्रयोग कारक- विपर्यय का होता है। इसके प्रयोग में वैदग्ध्य का परिचय देकर कुशल कवि कारक विपर्यय अर्थात् कर्ताकारक का कर्म की तरह तथा कर्म आदि का कर्ता आदि की तरह प्रयोग करके कविता में वह चमत्कृति उत्पन्न कर अर्थ को एक नया आयाम देता है। छायावादी कविता में इस तरह के प्रयोग दिखाई पड़ते हैं जहाँ कर्म, करण आदि में कर्तृत्व के अध्यारोप अनेक स्थलों पर दिखाई पड़ते हैं। विशेष रूप से ऐसे उदाहरण अलंकारप्रधान कविताओं में अधिक मिलते हैं —

सिहरा तन क्षण-भर भूला मन, लहरा समस्त
हर धनुर्भङ्ग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त[2] ।

यहाँ पर सम्प्रदान कारक के लिए कर्म कारक "धनुर्भङ्ग" का प्रयोग हुआ है, यह प्रयोग राम के पौरुष का संकेत करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह प्रसाद की कविता —

रूप ने बनाया रानी मुझे गुजरात की
वही रूप आज मुझे प्रेरित था करता
भारतेश्वरी का पद लेने को[3]।

यहाँ पर "रूप" साधन है जिसके कारण कमला गुजरात की रानी बनी, अतः यहाँ कवि ने करण कारक का प्रयोग न करके कारक विपर्यय का सहारा लेते हुए कर्ता कारक का प्रयोग किया है ।

1- रश्मिलोक (हिमालय), पृ0- 76.
2- निराला रचनावली, भाग- 1, पृ0- 372.
3- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1, (लहर) पृ0- 372.

कारक के विवेचन के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं -

1- छायावादी कवियों में कारकीय चिह्नों विशेषकर सम्प्रदान, अपादान, सम्बोधन कारक के चिह्नों के प्रयोग में संकोच दिखाई पड़ता है ।

2- दिनकर को छोड़कर शेष छायावादी कवियों के अधिकांश सम्बोधन व्यक्तिवाचक न होकर गुणवाचक हैं, जिससे उन्हें वर्ण्य के सन्दर्भ के साथ-साथ उसकी सम्वेदना को भी सम्प्रेषित करने में सफलता मिली है ।

3- कारकीय- प्रयोग में कलात्मकता की दृष्टि से "कारक- विपर्यय" का प्रयोग सबसे प्रभावी है जिसका छायावादी कवियों ने बाद के कवियों की अपेक्षा अधिक उपयोग किया है ।

काल

काल का वैचित्र्यपूर्ण उपयोग कवि अपनी कविता में करता है। कवि वर्तमान-कालिक घटनाओं का वर्णन करते हुए काल का कलात्मक उपयोग भूतकाल और भविष्यकाल की घटनाओं को अपनी कविता में स्थान देता है। साथ ही भूतकाल एवं भविष्यकाल के सहारे वर्तमान सन्दर्भों को भी कलात्मक अभिव्यक्ति देता है। इससे एक ओर जहाँ कवि के रचनासामर्थ्य की पहचान होती है वहीं दूसरी ओर कविता के अर्थ एवं सम्प्रेषण विस्तार में भी सहायक होती है। छायावादी कवियों ने इस दृष्टि से भूतकाल एवं भविष्यकाल का अपनी कविताओं में कलात्मक उपयोग किया है। प्रसाद और निराला इस दृष्टि से उत्कृष्ट हैं, प्रसाद की शेरसिंह का आत्मसमर्पण, पेशोला की प्रतिध्वनि, तथा कामायनी में भी यत्र-तत्र भूतकाल के कलात्मक उदाहरण प्राप्त होते हैं। भूतकाल के कलात्मक प्रयोग की दृष्टि से निराला की सरोजस्मृति, राम की शक्तिपूजा विशेष महत्वपूर्ण हैं।

मैं पल खाता जाता था, मोहित बेसुध बलिहारी।
अन्तर के तार खिंचे थे, तीखी थी तान हमारी।।[1]

यहाँ भूतकालिक प्रयोग के सहारे प्रसाद ने हृदय को लगातार दुःख पहुँचाने वाली प्रेमिका के क्रिया-व्यापारों की ओर संकेत करने का प्रयास किया है। इसी तरह निराला "राम की शक्तिपूजा" में युद्ध के समय सीता के विवाह पूर्व प्रथम प्रणय की सुखद स्मृतियों का दृश्य कौंधकर जहाँ मन में मार्मिक एवं कोमल भावनाएँ जगाती हैं और राम अपूर्व बल के संचार का अनुभव करते हैं वहाँ कविता में सौन्दर्य एवं करुणा दोनों मनोभावों की एक साथ सृष्टि हो जाती है -

---

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1, (आँसू), पृ0- 306.

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वी तनया कुमारिका-छवि अच्युत,
नयनों का नयनों से गोपन प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन
काँपते हुए किसलय- झरते पराग समुदय
गाते खग नव जीवन-परिचय-तरु मलय- वलय
ज्योति: प्रपात स्वर्गीय- ज्ञात छवि प्रथम स्वीय
जानकी नयन कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय ।

इसमें निराला ने भूत का आत्मक प्रयोग किया है। यहाँ पर युद्ध में पराजय की अनुभूति से चिन्ताग्रस्त एवं उदास राम भूतकालीन घटनाओं के द्वारा जानकी के सौन्दर्य एवं क्रियाओं से प्राप्त प्रणय के मुक्त हर्ष और प्रथम प्रणययुक्त नेत्रों की स्नेहभरी भंगिमाओं की प्रथम स्वीकृति के सुखदतम क्षणों के अनुभव से प्रेरित होते हैं। और शक्ति अर्जित करते हैं। छायावादी कवियों में महादेवी में भी भूतकालिक प्रयोग द्वारा काव्यभाषा के स्तर पर चमत्कृति करने की कोशिश दिखाई पड़ती है-

यह अपने सुकुमार तुम्हारी स्मृति से उजले
उड़े तूलों की भांत तारकों से कहने यह
घुन प्रभात के गीत साँझ के रंग सजीले ।
लिए छाँह के साथ अश्रु का कुहक सलोना
चले बसाने महाशून्य का कोना- कोना ।

इनकी गति में मरण आज बेसुध बन्दी है, । क
कौन क्षितिज का पाश उन्हें जो बाँध सका है ।

यहाँ "उड़े" और "चले" क्रियाएँ भूतकाल में प्रयुक्त हुई हैं किन्तु उनका तात्पर्य वर्तमानकाल से जुड़ा होने के कारण कालसम्बन्धी चमत्कारिक प्रयोग है ।

1- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0- 312.
1क- दीपशिखा : महादेवी, पृ0- 85.

छायावादी कविता में कहीं- कहीं भूतकालिक प्रयोग भविष्यकाल का बोध कराने के लिए प्रयुक्त हुए हैं -

> जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,
> खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मितप्रात ।[1]

यहाँ "खिल उठे" क्रिया का भूतकालिक प्रयोग क्रिया "खिल उठेगा" भविष्यकाल के लिए हुआ है। इसमें काल वैचित्र्य के साथ-साथ क्रियावैचित्र्य का दोहरा चमत्कार है ।

इसी तरह भविष्यकाल का भी अतात्मक लाक्षणिक प्रयोग कविता में मिलता है -

> नि:श्वास मलय से मिलकर छायापथ छू आयेगा,
> अन्तिम किरणें बिखराकर हिमकर भी छिप जायेगा।

यहाँ भविष्यबोधक क्रियापद द्वारा प्रियतमा के स्पर्श की कल्पना की गई है ।

छायावाद के बाद के कवियों ने जीवन के यथार्थ चित्रण के लिए सामान्यतया वर्तमानकाल का ही प्रयोग करते हैं, जो रचना-सामर्थ्य के कारण सूक्ष्म चित्रण करने में सफल हुए हैं -

> इस आम- तले
> है सेज सफेद गुलाबों की
> चाँदनी खड़ी है
> नींद भरी जो
> उस केले के झुरमुट में ।[2]

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग- 1, पृ0- 317·
2- काठ की घंटियाँ, पृ0- 33·

वर्तमानकाल के साथ-साथ भूतकाल एवं भविष्यकाल का भी यथावसर कलात्मक प्रयोग दिखाई पड़ जाता है और अधिकतर इन कवियों ने भूतकाल एवं भविष्य-काल के वर्णन के सहारे वर्तमान जीवन के सन्त्रास को ही उभारने का प्रयास किया है -

> एक अकेला ताँगा था दूरी पर
> कोचवान की काली सी चाबुक के बल पर
> वो बढ़ता था
> घूम घूम जो बल खाती थी सर्प सरीखी
> बेदर्दी से पड़ती थी दुबले घोड़े की गर्म पीठ पर ।[1]

काल का अध्ययन करने के उपरान्त निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं -

(1) छायावाद तथा उसके बाद के कवि भूतकाल एवं भविष्यकाल के सहारे कविता में कलात्मकता लाने के साथ-साथ वर्तमान जीवन सन्दर्भों को भी उभारने का प्रयास करते हैं ।

(2) प्रगतिवादी- प्रयोगवादी कवि समाज के कार्यव्यापारों से यथार्थ रूप से जुड़े होने और उसको अभिव्यक्ति देने के कारण वर्तमानकाल का अधिक कलात्मक उपयोग किया है ।

(3) छायावादी कवि काल की कलात्मकता के सहारे अधिकतर मानव-सौन्दर्य के सुखप्रद पक्ष को ही उद्घाटित करते दिखाई पड़ते हैं ।

(4) आधुनिक कवियों ने काल विपर्यय अर्थात् भूतकालिक प्रयोगों के सहारे वर्तमान एवं भविष्यकालिक प्रयोग किया है ।

1- दूसरा सप्तक : शकुन्तला माथुर, पृ0- 37.

वचन

कवि वचन की दृष्टि से कविता में चमत्कार लाने एवं सम्प्रेषण में वृद्धि करने के लिए उनका विपर्यय करते हैं। अर्थात् वे कविता में एकवचन के स्थान पर बहुवचन तथा बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग करते हैं। छायावादी कवि कविता में इस दृष्टि से अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्रसाद और पन्त इस दृष्टि से मुख्य हैं। पन्त ने कुछेक स्थलों पर बहुवचन का भाव प्रकट करने के लिए अवलि, जाल, माला, राशि आदि समूहवाचक शब्दों का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त सर्वनाम हम, तुम आदि का प्रयोग कर बहुवचन का निर्माण किया है। कहीं- कहीं छायावादी कवियों ने अनेक स्थलों पर आदर सूचित करने के लिए एकवचन संज्ञा रूप का प्रयोग बहुवचन के समान किया है -

प्रकटे थे युग पुरुष उस समय[1]

यहाँ पर गाँधी जी के लिए बहुवचन क्रिया का प्रयोग हुआ है।

व्याकरण सम्मत वचन में विपर्यय करके वचनवक्रता उत्पन्न कर काव्यभाषा के स्तर पर चमत्कार उत्पन्न करने की कोशिश कवियों द्वारा लगातार की जाती रही है। छायावादी कवि इस दृष्टि से विशेष रूप से सफल रहे हैं। इस दृष्टि से कवि एकवचन के स्थान पर बहुवचन और बहुवचन के स्थान पर एकवचन का प्रयोग कर कविता के स्तर पर कलात्मकता लाने की कोशिश करता है। उपेक्षा और तिरस्कार को स्पष्ट करने के लिए बहुवचन के लिए भी एकवचन प्रयुक्त कर दिया जाता है,जबकि गुणों की अतिशयता में एकवचन के लिए भी बहुवचन का प्रयोग होता है -

> फिर मधुर दृष्टि से प्रिय कपि को खींचते हुए
> बोले प्रियतर स्वर से अन्तर सींचते हुए[2]
> चाहिए हमें एक सौ आठ कपि इन्दीवर ।

1- पन्त ग्रन्थावली, भाग- 2, पृ०- 32.
2- निराला रचनावली, भाग-1,पृ०-314.

उपर्युक्त पंक्तियों में राम मुझे के स्थान पर बहुवचन सूचक "हमेंड का प्रयोग किया है। इस प्रयोग द्वारा राम के महामानवत्व अथवा देवत्व की विशिष्टता का बोध कराना ही कवि का लक्ष्य रहा है, इसी तरह से -

> अगम हो जाम्बवान से पथ, दूरत्व स्थान
> प्रभु-पद-रज सिर धर चले हर्ष भर हनुमान ।[1]

"चले" क्रिया बहुवचन में रहकर हनुमान के प्रति पूज्य बुद्धि को द्योतित करती है। इसी तरह से बहुवचन के स्थान पर एकवचन का भी प्रयोग दिखाई पड़ता है -

> इन्द्रधनुष प्रभु सेतु बाँधने सुर नर मोहन,
> अप्सरियों के रंजित पदों से मौन गुंजरित ।[2]

इस तरह इन कवियों ने बहुवचन बनाने के लिए सर्वनाम, विशेषण, परसर्ग तथा कृदन्तीय क्रिया रूपों का सहारा लिया है और उसी की सहायता से कविता में चमत्कार लाने की कोशिश की है।

छायावादी कविता में संस्कृत के आधार पर एकवचन से बहुवचन करने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। जबकि हिन्दी में इस तरह से एकवचन से बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती

यहाँ "अप्सरा" स्त्रीवाचक शब्द को लेकर उसी रूप में बहुवचन बना दिया है। छायावाद के बाद के कवियों में इस तरह के प्रयोग बहुत कम दिखाई देते हैं, वहाँ सामान्यतया एकवचन एवं बहुवचन का अपना व्याकरण सम्मत प्रयोग हुआ है, फिर भी इस तरह के कतिपय [illegible] उदाहरण मिलते हैं जो सामान्यतया किसी वस्तु आदि के प्रतीकन का कार्य करते हैं -

---

1- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0- 317.
2- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1, (आँसू), 315.

यौवन की उमड़ती हुई यमुनाएँ
फन-मणि की गुथी हुई लहर- कलियाँ
रस- रंग में घोरी हुई राधाएँ
रस रंग में माती हुई कामिनियाँ
फिर लायी वसंत ।

यहाँ यमुनाएँ, कलियाँ, राधाएँ, कामिनियाँ- शृंगारिक काम और उल्लास में निहित उपादानों को संकेतित करने का कार्य कर रही हैं ।

एकवचन को बहुवचन में बदलकर कलात्मक भंगिमा उत्पन्न करने के प्रयास में कुछ कवियों ने कहीं- कहीं खटकने वाले प्रयोग किए हैं जो संवेदना को विस्तार देने में किसी भी प्रकार से सहायक होते नहीं दिखते। इस तरह के प्रयोग छायावादी कवियों विशेषकर महादेवी में अधिक दिखाई पड़ते हैं -

(1) होकर सीमाहीन शून्य में,
मँडरायेगी अभिलाषें ।[2]

(2) यह दोनों दो ओरें थीं,
संसृति की चित्रपटी की ।[3]

प्रथम में अभिलाषा को बहुवचन में बदलकर अभिलाषें तथा द्वितीय में "ओर" को बहुवचन में ओरें कर दिया गया है जो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता।

वचन के उपर्युक्त विवेचन के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं -

---

1- कुछ कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृ0- 53.
2- यामा : महादेवी, पृ0- 5.
3- यामा : महादेवी, पृ0-37.

१- सर्वनाम, संज्ञा, क्रिया के सहारे कवियों ने वचन में परिवर्तन किया है, एकवचन के साथ बहुवचन सूचक सर्वनाम का प्रयोग छायावादी कवियों ने व्यापक स्तर पर किया है।

२- वचन-विपर्यय के द्वारा भी छायावादी तथा प्रगति-प्रयोगवादी कवियों ने कविता को अर्थ एवं सम्प्रेषण दोनों स्तरों पर प्रभावशाली बनाया है।

3- आधुनिक कवियों ने वस्तु एवं गुणों के प्रतीक के रूप में संज्ञावाची शब्दों को बहुवचन में बदल दिया है ।

४- हिन्दी में बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति जहाँ- जहाँ संस्कृत के रूप में सीधे-सीधे आ गई है ।

प्रत्यय

कवियों ने प्रत्यय प्रयोग की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता में कृदन्त प्रत्यय और विशेषण की सहायता से निर्मित तद्धित प्रत्यय का निर्माण एवं प्रयोग किया है । कृदन्तीय प्रत्ययों में इन कवियों ने मुख्य रूप से अ, आ, ए, आई, ना, ता प्रत्ययों का प्रयोग किया है । जहाँ छायावादी कवियों ने अ, आ एवं ना प्रत्यय का ही मुख्य रूप से प्रयोग किया है । अ एवं आ प्रत्यय की सहायता से ये छायावादी कवि भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण करते हैं -

> मेरी जीवन स्मृति के जिसमें
> खिल उठते वे रूप मधुर थे ।[1]

यहाँ खिलना क्रिया को "खिल" के द्वारा भाववाचक संज्ञा बनाकर उठते क्रिया का प्रयोग किया है । "आ" प्रत्यय के प्रयोग से भी भाववाचक संज्ञाओं का निर्माण किया जाता है । छायावादी कविता में इसके उदाहरण भरे पड़े हैं -

> फटा हुआ था नील वसन क्या
> ओ यौवन की मतवाली ।[2]

यहाँ फटना क्रिया के द्वारा फटा का निर्माण करके भाववाचक संज्ञा के रूप में प्रयुक्त है ।

उसके बाद के प्रगतिवादी प्रयोगवादी कवियों ने भी इस तरह के प्रयोग किये हैं -

> पान्थ है प्यासा थका सा घूम
> पीठ पर है ज्ञान की गठरी कहाँ ।[3]

1- प्रसाद ग्रन्थावली (लहर) पृ० 323

2- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ० 450

3- तारसप्तक: (मुक्तिबोध) पृ० 53

कृदन्तों का प्रयोग सामान्यतया कवि विशेषण तथा काल को स्पष्ट करने के लिए बहुत समय से ही करते रहे हैं।

"ता" कृदन्त प्रत्यय का उपयोग इन कवियों ने सामान्यतया क्रिया को विशेषण के रूप में प्रयुक्त करने के लिए किया है। इस प्रत्यय का उपयोग छायावादी एवं उसके बाद के कवियों ने भी किया है –

घन रे घन–
मेरे पागल बादल।
धँसता दलदल,
हँसता है नद खल्-खल्
बहता कहता कुलकुल कलकल कलकल।
देख-देख नाचता हृदय।

यहाँ बादल के विशेषण के रूप में धँसता हँसता बहता, कहता नाचता का प्रयोग हुआ है जो मूलतः कृदन्त हैं और प्रत्यय के योग से निर्मित है। छायावादी कवियों में पंत में यह विशेषता सर्वाधिक मिलती है। बाद के कवियों ने भी इस प्रत्यय का उपयोग अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए किया है –

चित्र हठीला
फिर-फिर पलटता अतिथि स्वप्न सा
सदा टूटता रहा।[2]

"ना" प्रत्यय के योग से इन कवियों ने क्रियार्थक, कर्मवाचक एवं करणवाचक संज्ञाओं का निर्माण किया है। इसका प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। "ए" प्रत्यय का प्रयोग इन कवियों ने अव्यय के रूप में किया है। अर्थात् "ए" प्रत्ययान्त शब्द तीनों कालों में बिना परिवर्तन के प्रयुक्त होते हैं –

1– निराला रचनावली, भाग-1 पृ0 116
2– शिलापंख चमकीले, गिरिजाकुमार माथुर पृ0 15

बुन्द बुन्द से वह चलते अपार
उसमें विहगों के मधुर राग ।[1]

तद्धितवाची शब्द कई तरह से केवें सहयोग से बनते हैं । इसमें से -संज्ञा के सहयोग से और विशेषण के सहयोग से निर्मित पदों प्रयोग अधिक होता है । संज्ञावाची तद्धितों का प्रयोग अधिकतर "ता" प्रत्यय लगाकर विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है -

चिर अक्षयकल्प से मानव तेरी प्रभुता को गाते ।[2]

इसके अतिरिक्त संज्ञा से निर्मित होने वाले तद्धित प्रत्ययों में ई, मय, आ, इक प्रत्यय का प्रयोग काफी मात्रा में मिलता है जिनमें से अधिकांश भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए अथवा विशेषण के रूप में प्रयुक्त करने के लिए हुई है ।

विशेषण वाची शब्दों की सहायता से तद्धित प्रत्यय बनाने में अधिकांशतः आ, ता एवं ई प्रत्ययों का प्रयोग हुआ है । जो भाववाची एवं गुणवाची संज्ञाओं का निर्माण करते हैं । सर्वनाम की सहायता से निर्मित तद्धित प्रत्ययों का कविता में बहुत कम प्रयोग दिखाई देता है -

अपना शरीर, निजता का सर्वस्व मन
वारती थी सेवा में सत्य आदर्श की ।[3]

इन कवियों ने उर्दू-फारसी एवं अंग्रेजी के दार, वाज, वाद, नाक, हार, दानी दान इज्म, इस्ट आदि प्रत्ययों का हिन्दी कविता में उपयोग करके संज्ञावाचक एवं विशेषणमूलक पदों का निर्माण किया है । निराला को छोड़कर छायावादी कवियों ने इन विदेशी प्रत्ययों का उपयोग नहीं किया है । बाद के नये कवियों ने ही इन प्रत्ययों का उपयोग किया है -

चली गोली आगे जैसे डिक्टेटर
बहार उसके पीछे जैसे भुक्खड़ फालोवर ।[4]

1- रश्मि पृ० 13
2- सदानीरा:भाग-1 पृ०सं० 140
3- निराला रचनावली भाग-1 पृ0173

उपसर्ग

आधुनिक हिन्दी कविता में शब्दनिर्माण की दृष्टि से उपसर्गों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आधुनिक हिन्दी कविता में उपसर्गों की दृष्टि से तीन प्रकार के उपसर्ग प्रयुक्त हुए हैं - संस्कृत के उपसर्ग, हिन्दी के उपसर्ग तथा विदेशी उपसर्ग।

छायावादी कवियों ने अपने संस्कृत लगाव के चलते संस्कृत के उपसर्गों की सहायता से अधिकतर शब्दों का निर्माण किया है। इन उपसर्गों की सहायता से उन्होंने भावों के एवं विषय के अनुरूप शब्दों का निर्माण किया है। उन्होंने इन संस्कृत के उपसर्गों में नि, निर, सु, वि, प्र, परा आदि का प्रयोग बहुतायत में किया है-

> आज भेंट होगी -
> हाँ होगी निस्सन्देह,
> आज सदा सुख-छाया होगा कानन गेह
> आज अनिश्चित पूरा होगा श्रमित प्रवास[1]।

छायावादी कवियों ने संस्कृत के उपसर्गों के अतिरिक्त अपनी कविताओं में हिन्दी के उपसर्गों का भी प्रयोग किया है। इनमें अ, स, कु, अन, दु आदि उपसर्गों का प्रयोग किया है।

> मिलती शुचि आँसुओं की सरिता
> मृगमारि का सिन्धु अथाह नहीं
> हँसता अनुराग का इन्दु सदा
> छलना की कुहू का निबाह नहीं[2]।

छायावादी कवियों द्वारा प्रयुक्त विदेशी प्रत्ययों की दृष्टि से पन्त एवं प्रसाद की कविताओं में इनका प्रयोग नहीं हुआ है। निराला तथा बच्चन में ही इन उपसर्गों का अत्यधिक प्रयोग दिखाई पड़ता है -

---

1- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0- 118.
2- रश्मि : महादेवी, पृ0- 47.

मैला जितना भड़कीला रंग-रंगीला था,
मानस के अन्दर उतनी ही कमजोरी थी,
जितना ज्यादा संचित करने की ख्वाहिश थी
उतनी ही छोटी अपने कर की झोरी थी।[1]

छायावाद के बाद की कविता अपनी प्रकृतिगत विशेषता के कारण संस्कृत-हिन्दी तथा विदेशी उपसर्गों का खुलकर सहारा लिया है। प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कवियों ने अपनी कविताओं में समाज की भिन्न- भिन्न स्थितियों एवं सन्दर्भों का यथार्थ चित्र रखने के प्रयास में कई भाषाओं के उपसर्गों का सहारा लिया है। संस्कृत उपसर्गों में इन कवियों ने प्र, वि, नि, निर, प्रति आदि का ही अधिकतर उपयोग किया है -

भिन्न- भिन्न कर कागजी विस्मय
सत्य के बल शूल बुलूं मैं।[2]
शाम निर्धन की न भूलूं मैं।

हिन्दी उपसर्ग संस्कृत उपसर्गों के अपभ्रंश हैं और ये सामान्यतः तद्भव शब्दों के ही पूर्व जगते हैं। प्रगतिवादी - प्रयोगवादी कविता के निर्माण में अधिकांश हिन्दी के उपसर्गों की सहायता ली गई है -

लाख रहूँ छोटा, पर मुकुर हूँ पूरा ही
और
मेरे अनगढ़, कुरूप चौखटे में बँधी
जीवन की झाँकी जो,
पूरी है अखण्ड है[3]।

1- अभिनव सोपान (मिलन यामिनी), पृ0- 255.
2- कुछ कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृ0- 25.
3- अनुपस्थित लोग : भारतभूषण अग्रवाल, पृ0-13.

विदेशी उपसर्गों में अधिकतर अरबी-फारसी के उपसर्ग हैं जो बहुत समय से भारतीय समाज के अंग रहे हैं, प्रगतिवादी- प्रयोगवादी कविता जन सामान्य से जुड़ी होने के कारण, जनसामान्य के जीवन के वर्णन प्रसंग में उस भाषा के साथ कविता में आ गए हैं। इनमें से सामान्यतया कम, खुश, गैर, दर, ना, ब, बे, बद, ला, हर आदि उपसर्ग मुख्य हैं -

मेरे दर्द से हमकलाम
न हो ।
जा, अब सो,
न रो
तू मेरी बेबस बाँहों पर, सर रखकर औंध,
न रो[1] ।

उपसर्गों के उपर्युक्त विवेचन के बाद निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं -

(1) छायावादी कवियों ने अपने वर्ण्य-विषय के चलते संस्कृत भाषा के उपसर्गों को ग्रहण किया है और उन्हीं के सहारे उनके अधिकांश शब्द निर्मित हैं। केवल निराला में ही हिन्दी और विदेशी उपसर्गों का भी प्रचुर प्रयोग हुआ है, जिससे उनकी कविता की सम्प्रेषण क्षमता एवं संवेदना दोनों प्रभावी ढंग से उभरकर सामने आए हैं ।

(2) प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविता मानव जीवन के सभी पक्षों को व्यक्त करने वाली कविता है अत: उसमें सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा दोनों के गुण आ गए हैं। इसीलिए उपसर्गों की दृष्टि से संस्कृत, हिन्दी एवं विदेशी उपसर्गों का उनकी कविता में खुलकर प्रयोग हुआ है।

1- कुछ कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृ0- 19.

समास

छायावादी कवि संस्कृत की शब्दयोजना एवं सम्प्रेषण शैली से प्रभावित होने के कारण उनकी कविताओं में सामासिकता पर अत्यधिक जोर है। छायावादी कविता एवं उसके बाद की कविता में मुख्य अन्तर यह है कि छायावादी कवियों की समास वृत्ति अत्यन्त सघन है और लम्बे- लम्बे सामासिक शब्दों की योजना की गयी है। वहीं बाद की कविता में यह प्रवृत्ति कुछ शिथिल हुई है जिसके कारण समास सहज एवं छोटे-छोटे हो गए हैं। प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविता में कई कवियों ने चिह्नयुक्त चिह्नों के साथ समास का कविता में उपयोग किया है और इससे सम्प्रेषण में और विस्तार ही आया है। छायावादी कविता में भी अपेक्षाकृत छोटे-छोटे समासों का प्रयोग है लेकिन निराला एवं पन्त की कुछ कविताओं में अत्यन्त लम्बे-लम्बे समासों की योजना हुई है। इनके प्रयोग में संस्कृत की संश्लिष्ट शैली के अभाव में इन कवियों ने लम्बे समासों को योजकचिह्नों (हाईफन) की सहायता से कविता में स्थान दिया है। निराला की कविता "राम की शक्तिपूजा" इस तरह के समासों का उत्कृष्ट उदाहरण है -

राघव-लाघव-रावण-वारण-गत-युग्म- प्रहर,
उद्धत- लंकापति- मर्दित- कपि-दल-बल-विस्तर,
अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य-शर-भङ्ग- भाव-
विद्धाङ्ग-बद्ध-कोदण्ड- मुष्टि-खर-रुधिर-स्राव ।[1]

बाद के कवियों की कविताओं में भी कहीं- कहीं लम्बे समासों की योजना देखने को मिलती है, लेकिन उनमें बीच-बीच में कारकीय चिह्नों का प्रयोग होता रहता है -

---

1- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0- 310.

फैला आयामहीन- नामहीन दिक्-कराल
काल की अनावृत्त अक्रान्त का अभंग जाल
तेज सूक्ष्म, नैतिकाय, सृष्टि परिधि, निराकार
बहती है वह अक्षय अजल में निराधार ।[1]

इन कुछ अपवाद की कविताओं को छोड़कर शेष कवियों की कविताओं में छोटे-छोटे समास ही प्रयुक्त हुए हैं -

मेरा चिन्ता-रहित अलसित
वारि बिम्ब-सा विमल हृदय,
इन्द्रचाप- सा वह बचपन के
मृदुल अनुभवों का समुदय ।[2]

अव्ययीभाव समासों का निर्माण तथा हिन्दी में प्रयोग मुख्यरूप से- यथा, आ, प्रति, वि, नि, निर् आदि अव्ययों की सहायता से हुआ है। ये मुख्यत: संस्कृत के उपसर्ग हैं -

कर गई शीत की निठुर रात
हू अब तेरा जीवन तुषार ।[3]

अव्ययीभाव समास के निर्माण में इन कवियों ने संस्कृत के अव्ययों का सहारा लिया है, लेकिन छायावाद के बाद के कवियों ने अपने व्यापक अनुभव विस्तार को सम्प्रेषित करने के लिए फारसी परसर्गों का भी सहारा लिया। इन उपसर्गों में अधिकतर बे, बा, कम, गैर, दर आदि प्रमुख हैं -

बेखबर मैं,
बाखबर आधी- सी रात
बेखबर सपने हैं ।
बाखबर है एक, बस, उसकी जात।[4]

1- तारसप्तक, : गिरिजा कुमार माथुर, पृ0- 163.
2- पन्त ग्रन्थावली: भाग-1, पृ0- 220.
3- रश्मि : महादेवी, पृ0- 34.
4- कुछ कवितायें : शमशेर बहादुर सिंह, पृ0- 20

तत्पुरुष समास का ~~ब्रवक~~ छायावादी कवियों ने संस्कृत की तरह से ही कविता में प्रयोग किया है, लेकिन बाद की कविताओं में यह विग्रह के साथ भी मिलता है-

> प्राची के दिक्पाल इन्द्र ने
> छिटका सोने का आलोक
>
> विहगों के शिशु गंधर्वों के
> कण्ठों में फूटे मधु-श्लोक ।[1]

साथ ही विग्रहविहीन पदों की भी योजना मिलती है -

> वैभव वाले ये राजभवन जगमग सुख के साधन,
> ये इन्द्रधनुष से रँग-भरे जग के अनमोल रतन ।[2]

छायावादी कविता भावप्रधान और विशेषणप्रधान होने के कारण कर्मधारय समास का प्रयोग काफी मात्रा में देखा जा सकता है, जबकि बाद की कविताओं में इतने अधिक प्रयोग दिखाई नहीं देते, केवल गिरिजाकुमार माथुर की ही कविताएँ इस दृष्टि से अपवाद मानी जा सकती हैं। छायावादी कवियों में पन्त का झुकाव इस ओर अधिक दिखाई पड़ता है, जिसका कारण काफी हद तक उनकी मृदु कल्पनागत सुकुमार भाव योजना है -

~~कळकविता~~

1- अविरल देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश ।[3]

1- ~~डू~~ दूसरा सप्तक : नरेश मेहता, पृ0- 128.
2- तीसरा सप्तक : विजयदेव नारायण साही, पृ0-179.
3- पन्त ग्रन्थावली, भाग-1, पृ0- 224.

{2} लौट आयी देश की ज्यों गंध गरिमा
वन्द्रका नक्षत्रमन, ले गान संयम
क्रान्तिवादी यह के ज्वाला कमल पर
मुक्ति के कंचनकलश लेकर रँगीले
लौन विद्युरेखामयी आयीं उदित हो
तुम दुरागम इन्दिरा-सी चारुशीले।[1]

बहुव्रीहि समास की छायावादी काव्यगत विशेषता के अनुरूप एवं सम्प्रेषण में प्रभावी होने के कारण छायावादी कवियों ने कविता में इसे काफी महत्व दिया है -

तुमने भौंरों की गुंजित ज्यों,
कुसुमों का लीलायुध याम।[2]

बाद में यद्यपि यह प्रवृत्ति बहुत कम हो गई फिर भी कविता में बनी हुई है -

लोहे के से पींजरे में फारस की बुलबुल सा
दारा वहाँ बैठा था अनाथ शिशु के समान।[3]

छायावादी कविता में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के कम प्रयोग के कारण द्वन्द्व समास का प्रयोग बहुत कम मिलता है। दिन-रात, सुख-दुःख, क्षेम-मंगल, पूर्व-पश्चिम आदि इसी तरह के द्वन्द्वसमास अत्यन्त सीमित मात्रा में कविता में प्रयुक्त हुए हैं। इसी तरह द्विगुसमास भी छायावाद एवं बाद की कविताओं में अत्यन्त अल्पमात्रा में प्राप्त होते हैं और जो मिलते भी हैं वे रूढ़िगत द्विगु समास ही हैं, जैसे :- पंचानन, त्रिलोकी, पंचनद, पात्रदल, सप्तसिन्धु, सप्तर्षि, त्रिभुवन आदि -

यदि एक वस्तु भी सदा रही
तो सदा रहेंगी वस्तु सभी
त्रैलोक्य बिना जलहीन हुए,
सकती न सूख कोई धारा।[4]

1- धूप के धान : गिरिजाकुमार माथुर, पृ0-1।
2- पन्त ग्रन्थावली: पृ0- 102।
3- तारसप्तक : रामविलास शर्मा, पृ0- 243।
4- अभिनव सोपान : मधुबाला, पृ0- 82।

समासों के विवेचन के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष सार रूप में प्राप्त होते हैं -

1- छायावादी कवियों ने अपनी भावमूलक कल्पनात्मक प्रवृत्ति के कारण कर्मधारय समास और बहुव्रीहि समास का अधिक उपयोग किया है जो उनकी कविता के सन्दर्भ एवं संवेदना के अनुकूल है ।

2- आधुनिक कवियों ने संस्कृत उपसर्गों की सहायता से हिन्दी में अव्ययीभाव समास के निर्माण के साथ-साथ फारसी परसर्गों की सहायता से भी अव्ययीभाव समास का निर्माण किया है ।

3- छायावाद के बाद की कविता में समासों का प्रयोग घटने लगा था और नयी कविता में सामासिक वृत्ति अत्यन्त न्यून है ।

========

चतुर्थ - अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता की शैल्पिक संरचना

शैल्पिक-संरचना का अर्थ एवं स्वरूप

॥ क ॥ शैल्पिक संरचना का अर्थ -

कविता में शैल्पिक-संरचना का उपयोग कवि अधिकतर अपनी संवेदना को विस्तार देने तथा प्रभावी बनाने के लिए करता है क्योंकि सृजन के क्षणों में कविता की व्याकरणिक संरचना में अनेक सार्थक प्रयोगों के बाद भी सम्प्रेषण के स्तर पर उसकी भूमिका प्रभावी नहीं हो पाती । कविता की प्रकृति मुख्यतः विस्तार-मूलक न होकर व्यंग्यमूलक होती है, इसी व्यंग्यार्थ-निरूपण हेतु या अपनी संवेदना एवं अनुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिए रचनाकार शैल्पिक संरचना के अंगों अर्थात् अलंकार प्रतीक आदि का उपयोग करता है । कविता की शैल्पिक-संरचना एक साथ कई सन्दर्भों एवं भावबोधों को उभारने के लिए भी होती है । कवि को भाषा द्वारा अपनी संवेदना रखने के लिए भावचित्रों एवं दृश्यचित्रों का निर्माण करना पड़ता है । इस दृष्टि से कवि की मजबूरी यह होती है कि वह परम्परा में स्वीकृत रूढ़ भावचित्रों एवं दृश्यचित्रों को कविता में ग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि ऐसे में उसकी कविता न तो सम्प्रेषण के स्तर पर और न ही कलात्मकता के स्तर पर ही कोई प्रभाव छोड़ सकने में समर्थ होगी । इसीलिए रचनाकार को सृजन-प्रक्रिया में निरन्तर नयें भावचित्रों एवं अर्थचित्रों का निर्माण करना पड़ता है और उनके प्रयोगों के प्रति भी अत्यन्त सजग भी रहना पड़ता है जिससे भाषिक सम्प्रेषण के स्तर पर कवि की अनुभूतिगत संवेदना की प्रभावोत्पादकता बढ़ सके । काव्यभाषा में कलात्मकता के स्तर पर भी कवि के लिए यह जरूरी है ।

अनुभूति कविता में संकेतों के सहारे ही अभिव्यक्ति पाती है । संकेत शैल्पिक संरचना का प्रमुख गुण है जिसके सहारे कवि रचना में अर्थविधान की योजना करता है । शब्द, व्यंग्य एवं सम्प्रेषण की सही स्थिति ही कविता को प्रभावी बनाती है । शैल्पिक संरचना में कवि युग के अनुरूप परिवर्तन लाता रहता है क्योंकि इसका एक रूप जब सम्प्रेषण के स्तर पर रूढ़ हो जाता है तो वह अपनी ताजगी खोने लगता है, इसीलिए प्रत्येक समर्थ कवि अपनी अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने के क्रम में

लगातार भिन्न-भिन्न शैल्पिक अंगों का कविता में उपयोग करते हैं । कामायनी का परिष्कृत शैल्पिक स्तर पर अधिक दिखाई पड़ता है जिसका कारण है कि शैल्पिक स्तर पर कविता की दृष्टि से कामायनी सक्षम है और प्रभावकारी भी । यद्यपि यह मान्य तथ्य है कि कविता भाषा के द्वारा अभिव्यक्ति पाती है लेकिन शैल्पिक तत्व उसमें आकर सम्प्रेषणीयता एवं कलात्मकता दोनों में वृद्धि करते हैं । इसके अतिरिक्त अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने की दृष्टि से व्याकरणिक संरचना के अवयवों की एक सीमा है क्योंकि वे मानव मन की सूक्ष्म मनोवृत्तियों एवं मनोवेगों को पाठक की संवेदना का अंग बनाने में विशेष प्रभावी नहीं है ।

(ख) शैल्पिक संरचना का स्वरूप -

हिन्दी काव्यभाषा की व्याकरणिक संरचना का रूप कविता में परम्परित रहता है, इसके ठीक विपरीत संरचना का शैल्पिक रूप कविता में लगातार विकसित होता रहता है। इस विकास क्रम में पुराने रूप जहाँ प्रचलन में रहते हैं वहीं नये शिल्प रूप भी आकर उससे जुड़ते रहते हैं। इस तरह काव्य-भाषा की शैल्पिक संरचना में वर्तमान के पुराने पड़ने और नये के जुड़ने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। कविता में शैल्पिक संरचना के निम्नलिखित स्वरूप प्रचलित हैं -

(1) अलंकार -

अर्थ तथा शब्द की वह युक्ति जिससे काव्य की शोभा बढ़े उसे अलंकार कहा जाता है। कविता में अलंकारों का प्रयोग निम्नलिखित सन्दर्भों में निर्दिष्ट किया गया है - (क) चमत्कृति (ख) अर्थोत्कर्ष (ग) स्पष्टताबोध के लिए (भावोत्कर्ष) (घ) विस्तारपूर्वक (ङ) आश्चर्यपूर्वक (च) जिज्ञासापूर्वक (छ) कौतूहलपूर्वक। अलंकार काव्यभाषा की शैल्पिक संरचना का सबसे पुराना एवं प्रभावी रूप है। आधुनिक हिन्दी कविता के विकास के साथ-साथ इसका महत्त्व क्रमशः क्षीण होता गया है। पुरानी कविताओं में अलंकार जहाँ मुख्यतः कविता का शोभा विधायक धर्म था वहीं आधुनिक कविता में वह भाव तथा अर्थोत्कर्ष के लिए मुख्यरूप से प्रयुक्त किया जाने लगा। इसका प्रमुख कारण कविता की प्रकृति का बदलाव है। पुरानी कविताओं में अलंकारों के सभी रूपों - सादृश्यगर्भ अलंकार, विरोधगर्भ अलंकार, शृंखलाबद्ध अलंकार, न्यायमूलक अलंकार तथा गूढ़ार्थ प्रतीतिमूल अलंकारों का प्रचुर प्रयोग दिखाई पड़ता है, इसके विपरीत आधुनिक कविता में अधिकतर सादृश्यमूलक अलंकारों का ही प्रयोग दिखाई पड़ता है और वह भी अधिकांशतः भावोत्कर्ष के लिए। अलंकार के सन्दर्भ में सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व अर्थ-रचना का है। प्राचीन काव्य में इस अर्थ रचना को रस को प्रकाशित करने वाले वाच्यक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। इसके अतिरिक्त कवि

अपनी विशिष्ट अनुभूतियों को अलंकार विधान के माध्यम से सम्प्रेषित करना चाहता है । भाषिक-सम्प्रेषण के सामान्य रूप में जहाँ अर्थ-निर्धारण की भाषिक प्रक्रिया दिखाई पड़ती है, वहाँ काव्यभाषा में ठीक इसके विपरीत कवि सन्दर्भित अर्थ के माध्यम से निर्णीत संवेदना को जगाने के स्थान पर सादृश्य आदि विधानों के उपयोग द्वारा उसे पाठक के मन तक सम्प्रेषित करने का प्रयास करता है, और अलंकार के मूलभूत गुण इसके उत्कृष्ट माध्यम हैं । विद्वान आचार्यों ने अलंकार का मुख्य कार्य-व्यापार स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, जिज्ञासा, कौतूहल, चमत्कृति तथा अर्थोत्कर्ष माना है और कवियों द्वारा कविता में अलंकारों की सहायता से इन्हीं चमत्कारी धर्मों को रखने का प्रयास किया है ।

आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकारों की दृष्टि से सादृश्यविधान का प्रयोग अधिक किया है । रचनात्मक संरचना के लिए सादृश्य अनिवार्यता है क्योंकि इससे शब्दों के अर्थ ज्ञापन के साथ-साथ सौन्दर्यबोध के सम्पूर्ण सन्दर्भों एवं मानसिक संवेदना में भी काफी बदलाव आ जाता है । सादृश्य विधान से कवि के भाषिक-सामर्थ्य का ज्ञान नहीं होता है, वह केवल संवेदना को सम्प्रेषित करने की ही सामर्थ्य रखता है, और इसी विशिष्टता के चलते कविता में इसका प्रयोग होता है । लेकिन आज की कविता में भाषिक सम्प्रेषण के भिन्न-भिन्न रूप विकसित होते रहने के कारण सादृश्यविधान अलंकारों का भी प्रयोग घटता जा रहा है । फिर भी आधुनिक कविता में सादृश्यविधान अलंकारों का प्रयोग कवियों ने सामान्यतया निम्नलिखित सन्दर्भों में किया है -

[1] चमत्कार के लिए सादृश्यमूलक अलंकारों का प्रयोग -

अलंकारों का चमत्कारमूलक अर्थ के लिए प्रयोग कवियों को अत्यन्त प्रिय रहा है । आधुनिक हिन्दी कविता में यद्यपि इस प्रवृत्ति से छुटकारा पाने की कोशिश मिलती है लेकिन वे इस प्रवृत्ति से पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सके हैं ।

विशेषकर छायावादी कवियों प्रसाद, पंत, महादेवी, दिनकर आदि की कविताओं में अलंकारों द्वारा इस प्रवृत्ति को उभारने का प्रयास दिखाई पड़ता है। प्रसाद की कामायनी तथा आँसू में यह प्रवृत्ति विशेषरूप से देखी जा सकती है -

> सुना यह मनु ने मधु गुंजार
> मधुकरी का सा जब सानंद,
> किए मुख नीचा कमल समान
> प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द। 1

> थक जाती थी सुख रजनी
> मुख चन्द्र हृदय में होता
> श्रम सीकर सदृश नखत से
> अम्बर पट भीगा होता। 2

यहाँ प्रसाद सादृश्यमूलक अलंकारों, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि की सहायता से कल्पनामूलक सादृश्य की योजना करके पाठक के मन को चमत्कृत कर देने का प्रयास किया है। पंत, महादेवी तथा दिनकर आदि की कविताओं में सादृश्यविधान अलंकारों की इसी तरह से योजना मिलती है जबकि निराला में इसकी योजना कुछ भिन्न प्रकार की है। यहाँ काव्य में मानसिक विकास से संयुक्त सादृश्यविधान न तो प्रतीकों की ओर न ही रूपक विधान की सहायता से कविता में आया है। बल्कि निराला की कविता में यह काफी कुछ सादृश्य के मूल भाव के साथ विकसित हुआ है। लेकिन फिर भी निराला भी चमत्कार प्रदर्शन का लोभ संवरण नहीं कर पाते हैं -

> अश्रु बहे जाते थे
> कामिनी के कोरों से
> कमल के कोषों से प्रातः की ओस ज्यों। 3

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 455

2- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 311

3- निराला रचनावली, भाग-1 पृ0309

छायावाद के बाद के कवियों में सादृश्य मूलक अलंकारों की सहायता से वर्ण्य-वस्तु को स्पष्ट करने की प्रवृत्ति कम दिखाई पड़ती है ।

> कभी बदली की तहों में डूब जाता है
> सुलगता लाल दिन का,
> बलाका रेख सी स्मृति की
> कभी नभ पार करती चली जाती है । [1]

यहाँ "लाल" रंग एवं बेटा" दोनों का चामत्कारिक अर्थ दे रहा है । उसके बाद के कवियों में भारत भूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में भी कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है-

> उग रहा है नया दूध का चाँद
> दूधिया चाँद श्वेत हँसुली सा । [2]

(2) <u>अर्थोत्कर्ष के लिए अलंकारों का प्रयोग</u> -

आधुनिक कवियों में सादृश्यमूलक अलंकारों की सहायता से कविता में सम्प्रेषण के स्तर पर जो दूसरी प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है वह अर्थोत्कर्ष की है । इसमें कवि सादृश्यमूलक अलंकारों की सहायता से कविता में अर्थ के स्तर पर उत्कृष्टता लाने का प्रयास करते हैं । प्रसाद में सादृश्य विधान के द्वारा अर्थोत्कर्ष की प्रवृत्ति विशेष रूप से देखी जाती है -

---

1- बावरा अहेरी: अज्ञेय, पृ0 22
2- धूप के धान, गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 80

नव नील कुंज हैं झीम रहे
कुसुमों की कथा न बन्द हुई,
है अंतरिक्ष आमोद भरा
हिम कणिका ही मकरंद हुई ।
इस इंदीवर से गंध भरी
बुनती जाली मधु की धारा
मन मधुकर की अनुरागमयी
बन रही मोहिनी सी कारा ॥[1]

यहाँ प्रसंग में मनु के प्रति श्रद्धा काम वासना को स्पष्ट करने के लिए प्रसाद ने अनेक सादृश्यों की योजना की है । इन सादृश्यों की सहायता से मानव मन के सूक्ष्म विकारों को स्पष्ट करने की कोशिश दिखाई पड़ती है । पंत में भी सादृश्यमूलक अलंकारों की सहायता से अर्थोत्कर्ष की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है -

सज कर सरस तरंगों को
इन्द्रधनुष के रंगों को
तेरे भ्रूभंगों से कैसे विंधवा दूँ निज मृग सा मन ?[2]

"मन" के लिए मृग की योजना करके कवि ने मन की चंचलता सरलता एवं कोमलता को एक साथ पाठक तक सम्प्रेषित कर दिया है । और उसके विंधने के भाव में विच्छित्ति की सारी अर्थोत्कर्षता सिमट आई है । निराला, महादेवी दिनकर तथा बच्चन की कविताओं में भी अर्थोत्कर्ष के निमित्त सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना दिखाई पड़ती है ।

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1, पृ0 475
2- पंत ग्रन्थावली, भाग-1, पृ0 195

छायावाद के बाद के कवियों में भी अर्थोत्कर्ष के निमित्त सादृश्य-मूलक अलंकारों का कतिपय प्रयोग दिखाई पड़ता है । अंत में यह प्रवृत्ति बहुत कम ही दिखाई पड़ती है । आधुनिक कवियों में गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में इस तरह के प्रयोग अधिक दिखाई पड़ते हैं, जो अधिकतर सर्वोत्कृष्ट को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं -

> क्रान्तिवाही यह के ज्वाला कमल पर
> मुक्ति के कंचन-कलश लेकर रँगीले
> नील विद्युरेखामयी आयीं उदित हो
> तुम स्वराज्य इन्दिरा-सी पारुशीले ।[1]

नागार्जुन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह, भारतभूषण अग्रवाल आदि की कविताओं में अर्थोत्कर्ष के निमित्त सादृश्यमूलक अलंकारों का बहुत कम प्रयोग दिखाई पड़ता है ।

(3) भावोत्कर्ष के लिए अलंकारों का प्रयोग -

आधुनिक हिन्दी कविता में सादृश्यमूलक अलंकारों का सबसे अधिक उपयोग भावोत्कर्ष के लिए हुआ है । छायावादी कवियों विशेषकर प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी ने सादृश्यमूलक अलंकारों का उपयोग कर सृजन के स्तर पर कविता को जहाँ प्रभावशाली बनाया है वहीं इसकी सहायता से इन कवियों को अपनी कविता की संवेदना को बढ़ाने में भी सहायता मिली है । छायावादी कविता चूँकि कल्पना-वैभव, रहस्य एवं मानव मन के सुकोमल भावों की कविता है इसी लिए सादृश्यविधान का इनकी कविताओं में बड़ा ही सूक्ष्म एवं कलात्मक प्रयोग मिलता है । प्रसाद और पंत में इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है -

---

1- धूप के धान : गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 ।

हीरे सा हृदय हमारा
कुचला शिरीष कोमल ने
हिमशीतल प्रणय अनल बन
अब लगा विरह से जलने ।[1]

इनमें मानव मन के सूक्ष्म मनोभावों का चित्रण कवि ने विरोधधर्मी सादृश्यमूलक अलंकारों की सहायता से किया है । पंत ने भी उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा आदि की सहायता से कविता में उत्कर्ष लाने की कोशिश की है -

मधुप बाला का मधुर मधु गुंज राग
पद्मदल में संपुटित था हो मूक,
काम्य उपवन में प्रथम था जब खिला
प्रणय पद्म कुमुद कली के साथ ही ।
शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर
शशि कला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा अचल
सदय भीरु, अधीर, चिन्तित दृष्टि से ।[2]

छायावाद के बाद की कविता में भावोत्कर्ष एवं सम्प्रेषण के अनेक साधन विकसित होने के बाद अलंकारों का प्रयोग बहुत कम हो गया फिर भी अज्ञेय गिरिजाकुमार माथुर तथा भारतभूषण अग्रवाल की रचनाओं इसके छिटपुट उदाहरण मिलते हैं । इसके द्वारा इन कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति शैली में बदलाव लाने तथा अभिव्यक्ति को प्रभावी बनाने के लिए किया है ।-

यहाँ करोड़ों मधुमालाएँ खड़ी विकल और अकुंठित
प्रकाश के कुचले गुच्छे सी नगरिका में झुकी हुई थीं ।[3]

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 313
2- पंत ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 124
3- सदा नीरा, अज्ञेय, भाग-1 पृ0 171

यहाँ भारत की करोड़ों माताएँ और बहनें अपने ही लोगों की इच्छाओं की पूर्ति में लगी हुई हैं, वे अंगूर के कुचले हुए गुच्छे की स्थिति की तरह विवश हैं । भारतभूषण अग्रवाल में भी अलंकारों के प्रयोग द्वारा भावोत्कर्ष की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है –

> मेरा अहंकार आज
> भक्तों की भीड़ से कुचल अधीर चरणों से
> कुचले हुए पूजा के फूल-सा
> ध्वस्त, छिन्न-भिन्न है ।[1]

अलंकारों द्वारा भावोत्कर्ष की यह उत्कृष्टता क्रमशः सम्प्रेषण के अन्य उपकरणों के विकास के साथ-साथ क्षीण होती गई है । भावोत्कर्ष के क्रम में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि परम्परागत ढाँचे में नवीन उपमानों को रखने की जिस प्रक्रिया का शुरुआत छायावादी कवियों ने की, वह आगे और भी अधिक प्रभावी होकर उभरी है ।

(4) <u>विस्तार के लिए अलंकारों का प्रयोग</u> –

छायावादी कवियों में सादृश्यमूलक अलंकारों की सहायता से अर्थोत्कर्ष एवं भावोत्कर्ष में विस्तार लाने की कोशिश दिखाई पड़ती है । प्रसाद निराला तथा दिनकर में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है । निराला कुकुरमुत्ता कविता में सादृश्यमूलक अलंकारों, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि की सहायता से समसामयिक सामाजिक वैचारिक एवं राजनैतिक सन्दर्भ को भी उभारने में सफल रहे हैं, जो निराला की रचना सामर्थ्य की विशेषता है –

1– अनुपस्थित लोग, भारतभूषण अग्रवाल, पृ0 15

ओमफलस और ब्रह्मावर्त
वैसे ही दुनिया के गोल और पर्त
जैसे सिकुड़न और साड़ी
ज्यों सफाई और माड़ी ।
कास्मोपालिटन और मेट्रोपालिटन
जैसे फ्रायड और लीटन
फिलसी और फलसफा
जरूरत और हो रफा ।
सरसता में फ्राड
केपीटल में जैसे लेनिनग्राड
सच समझ जैसे रकीब
लेखकों में लण्ठ जैसे खुशनसीब ।[1]

अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल तथा नागार्जुन आदि की कविताओं में सादृश्यमूलक अलंकारों की सहायता से अपनी अनुभूति को विस्तार देने की प्रवृत्ति पायी जाती है –

मैं अधिक सुंदर हूँ
बिल्लौरी काँच-सी काँति वाली यह गर्दन
बरगद-सी छायादार ऐसी पीठ
नन्हें मयूर से ऐसे ये नेत्र
देखी नहीं होगी ऐसी खूबसूरती ।[2]

1- निराला रचनावली, भाग-2 पृ0 47
2- सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन पृ0 40

[5] आश्चर्य के लिए अलंकारों का प्रयोग –

आधुनिक हिन्दी कवियों में सादृश्यमूलक अलंकारों के द्वारा आश्चर्य आधिक्य करने की प्रवृत्ति भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ती है। इस आश्चर्य मूलक प्रवृत्ति का छायावादी कवियों ने अपनी कविताओं में काफी उपयोग किया है। इनकी कविताओं में प्रकृति एवं असाधारण कार्यों के वर्णन में सामान्यतयाप्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि सभी में इस तरह के वर्णन में सादृश्यमूलक अलंकारों का खुलकर उपयोग हुआ है। कुकुरमुत्ता, कविता में निराला कुकुरमुत्ता के विभिन्न सादृश्यों की रचना करके आश्चर्यमूलक तत्त्वों को उभारने की कोशिश कर रहे हैं जो साथ-साथ जनसामान्य वर्ग के बहुआयामी व्यक्तित्व का भी संकेत देता गया है –

> मैं डबल जब, बना डमरू
> इकबाल, तब बना वीणा
> मन्द्र होकर कभी निकला
> कभी बनकर ध्वनि क्षीणा
> मैं पुरुष और मैं ही अबला
> मैं मृदंग और मैं ही तबला
> चुन्ने खाँ के हाथ का मैं ही सितार
> दिगम्बर का तानपूरा, हसीना का सुरबहार।[1]

छायावादी कवियों के अतिरिक्त बाद के कवियों में भी कहीं-कहीं यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। नये कवियों में शमशेरबहादुर सिंह का झुकाव इस ओर अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक है। नये कवियों में आश्चर्य के लिए सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना प्रायः मन की कोमल भावनाओं एवं प्रणय-व्यापार के चित्रण प्रसंग में

1- निराला रचनावली, भाग-1 पृष्ठ 48.

ही अधिक दिखाई पड़ता है -

> पलकों पर धीरे-धीरे
> तुम्हारे फूल से पाँव
> मानों भूल कर पड़ते
> हृदय के सपनों पर मेरे।[1]

[6-7] जिज्ञासा तथा कौतूहल के लिए अलंकारों का प्रयोग

छायावादी कविता अपनी प्रकृति एवं स्वभाव के कारण प्रकृति के रहस्यमिश्रित मनमोहक क्रियाव्यापारों को अभिव्यक्ति देने के निमित्त सादृश्यमूलक अलंकारों उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, आदि के सहारे कविता में कौतूहल एवं जिज्ञासा की सृष्टि की है। प्रसाद, पंत, महादेवी एवं निराला की कविताएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं -

> किसी नक्षत्रलोक से टूट
> विश्व के शतदल पर अज्ञात
> ढुलक जो पड़ी ओस की बूँद
> तरल मोती सा ले मुस्कात।[2]

यहाँ महादेवी मनुष्य के जीवन एवं मृत्यु आदि के वर्णन प्रसंग में सादृश्यमूलक अलंकारों के द्वारा विश्व के शतदल, ओस की बूँद, तरल मोती सा मुस्कात आदि की योजना करके कविता में मनुष्य की जिज्ञासा मूलक प्रवृत्ति को उभारने में सफल रही हैं। इसी तरह से अन्य छायावादी कवियों में कौतूहल वृत्ति को

1- फूल कविताएँ: शमशेर बहादुर सिंह, पृ० 28
2- रश्मि : महादेवी पृ0 43

उभारने की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है । इस प्रवृत्ति में कवियों की सामान्यतः रहस्यवादी भावना उभर कर सामने आई है -

> जागरि बेलि-सी फैल अमूल
> छा अपर सरिता के कूल,
> विकसा औ सकुचा नवजात
> बिना नाल के फेनिल फूल
> छुई मुई सी तुम पश्चात्
> छूकर अपना ही मृदुगात।
> मुरझा जाती हो अज्ञात[1]।

इस तरह की कौतूहल उत्पन्न करने की प्रवृत्ति बाद की कविताओं में अपेक्षाकृत बहुत कम हो गई है -

> आँखें मूँद गई
> सरलता का आकाश था
> जैसे त्रिलोचन की रचनाएँ
> नींद ही इच्छाएँ ।[2]

स्पष्ट है कि आधुनिक कविता में अलंकार वृत्तियाँ यद्यपि कहीं-कहीं बनी हुई हैं लेकिन उनके लिए प्राचीन उपमेय एवं उपमान परम्परा का पालन नहीं दिखाई देता । आधुनिक कवियों ने विषय एवं सन्दर्भ के अनुकूल नये भावबोधों से युक्त नवीन एवं अप्रचलित उपमानों का उपयोग किया है ।

1- पंत ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 189

2- कुछ कविताएँ: शमशेर बहादुर सिंह पृ0 9

अलंकार-विधान की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी काव्यधारा की संरचना के अध्ययन के बाद निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित तथ्य उभर कर सामने आते हैं -

§1§ छायावादी कवियों और उसके बाद के कवियों में अलंकारों के प्रति मोह अपने पूर्ववर्ती कवियों की अपेक्षा बहुत कम है । वे अलंकार के सभी रूपों को अपनी कविता में स्थान न देकर प्रायः सादृश्यमूलक अलंकारों का ही उपयोग किया है ।

§2§ छायावादी कवि सादृश्यमूलक अलंकारों की सहायता से अपनी वर्ण्यवस्तु विस्तार कल्पना एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति के चलते, कविता में चमत्कृति, भावोत्कर्ष, जिज्ञासा, आश्चर्य एवं कौतूहल की सृष्टि करते दिखाई पड़ते हैं । जबकि उसके बाद के कवियों ने इनकी सहायता से सन्दर्भ को स्पष्ट करने के लिए अलंकारों के विस्तारमूलक प्रवृत्ति को ग्रहण किया है ।

§3§ छायावादी कवियों के उपमान जहाँ परम्परा से जुड़कर कविता में आए हैं वहीं बाद के कवियों से इनसे हटकर नवीन उपमानों की योजना की है ।

§4§ छायावादी कविता में सादृश्यमूलक अलंकारों की दृष्टि से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का उपयोग किया है जबकि उसके बाद के कवियों ने उपमा, उदाहरण दृष्टांत आदि की ही सहायता से अपनी अनुभूतियों को रखा है ।

§5§ छायावादी कवियों ने अपनी सादृश्य योजना परम्परागत आधारों पर ही की है लेकिन उसमें कुछ भिन्नता भी है । वे न तो वाच्य की अपेक्षा करता है और न व्यंग्य की । ये कवि वाच्य एवं व्यंग्य व्यापार में निहित सदृश अनुभव को एक साथ पूरी जीवन्ततापूर्वक मन तक पहुँचाने की कोशिश करते हैं ।

कविता में अलंकारों के रूढ़ प्रयोग एवं रूढ़ अर्थधारणाओं के कारण आधुनिक कवियों ने अपनी अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने के लिए अलंकारों के मोह को छोड़ कर नये-नये शैल्पिक माध्यमों को विकसित करने की कोशिश की । शैल्पिक संरचना की दृष्टि से भावों के सम्प्रेषण का जो शक्तिशाली माध्यम दिखाई पड़ता है - वह प्रतीक है । कविता में प्रतीकों का प्रयोग प्राचीन काल से ही हो रहा है किन्तु आधुनिक कविता में उसकी महत्ता समृद्ध हुई है । प्रतीक में कुछ गुण उस वस्तु के होते हैं जिसका वह वाचक होता है और कुछ गुण उस वस्तु के होते हैं जिसका वह प्रतीक होता है । प्रायः सभी कवियों ने कम या अधिक मात्रा में प्रतीकों का उपयोग किया है । नये कवियों ने कविता में इसका प्रमुख रूप से उपयोग अनुभूतियों और अर्थ को सम्प्रेषित करने के लिए तथा उसे पाठक की संवेदना का अंग बनाने के लिए किया है । आधुनिक कवियों की प्रतीकों की योजना में सफलता का मुख्य कारण उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और मार्मिक दृष्टि है ।

1.1 मूर्त प्रतीक -

प्रतीक की योजना सामान्यतः दो प्रकार से कविता में उपस्थित हुई है - मूर्त प्रतीकों के रूप में तथा अमूर्त प्रतीकों के रूप में । कवियों ने मूर्त प्रतीकों की कई दृष्टियों को ध्यान में रखकर कविता में उपयोग किया है । आधुनिक हिन्दी कविता में कवियों ने सामान्यतः सादृश्यमूलक, साधर्म्यमूलक, लक्षणामूलक, व्यंजनामूलक तथा बिम्बमूलक प्रतीकों का उपयोग किया है ।

(क) सादृश्यगर्भमूलक प्रतीक -

छायावादी कवियों ने सादृश्यमूलक प्रतीकों के द्वारा अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है । प्रसाद, निराला, महादेवी आदि ने सादृश्यगर्भ प्रतीकों में केवल उन्हीं प्रतीकों को ग्रहण किया है जो सादृश्य पर आधारित होते हुए भी

उनसे उठकर किसी सूक्ष्म-अमूर्त प्रतीयमान अर्थ की व्यंजना की क्षमता रखते हैं -

(।) तिर रही अतृप्ति जलधि में
नीलम की नाव निराली ।[1]

(।।) तरल मोती से नयन भरे
तारे भरकर नील तरी से
सूखे पुलिनों की करुणी से
फेनिल फूल झरे ।।[2]

इसके विपरीत निराला ने तादूप्यगर्भ प्रतीकों का उपयोग प्रसाद तथा महादेवी की अपेक्षा कम ही किया है । तुलसीदास में वे रत्नावली को मानवीय पात्रता से उभार उठाकर प्रतिभा और ज्योति का प्रतीक बना देते हैं -

> देखा शारदा नील वसना
> हैं सम्मुख स्वयं सृष्टि-रशना
> जीवन-समीर-शुचि-निःश्वसना वरदात्री
> वाणी वह स्वयं सुवासित-स्वर
> फूटी तर अमृताक्षर-निर्झर
> यह विश्वहंस है चरण सुघर जिस पर श्री ।[3]

यहाँ शारदा स्वयं ज्ञान एवं पवित्रता की प्रतीक हैं । अतः रत्नावली में उन्हीं तादूप्यों को आरोपित किया गया है । आधुनिक कवियों में अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर आदि कवियों ने अपने रचना सामर्थ्य एवं सम्प्रेषण शक्ति को बढ़ाने के लिए कहीं-कहीं तादूप्यमूलक प्रतीकों का भी सहारा लिया लेकिन इन कवियों का इन प्रतीकों पर अधिक जोर नहीं है क्योंकि इनके सहारे कविता में रूढ़ काव्य-

---

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ० 309
2- दीपशिखा, महादेवी, पृ० 85
3- निराला रचनावली, भाग-1 पृ० 286

परम्परा को फिर स्थापित होने का आसरा बना रहता है। क्योंकि इन प्रतीकों का परम्परा से जुड़ाव बना हुआ है। शमशेर बहादुर की एक कविता द्रष्टव्य है -

> फिर आया वसंत :
> फिर बाल गुलाबों का, फिर लाल गुलाबों का
> आया वसंत।
> यौवन की उमड़ती हुई यमुनाएँ
> पन्न-मणि की गुंथी हुई लहर कलियाँ
> रस-रंग में तैरती हुई राधाएँ
> रस-रंग में भाती हुई कामिनियाँ
> फिर आया वसंत।[1]

यहाँ पर वसंत यौवनागमन उल्लास का प्रतीक है और इसी तरह यमुनाएँ कलियाँ, राधाएँ, कामिनियाँ आदि स्त्रियों के विभिन्न स्थितियों एवं रूपों के प्रतीक हैं। छायावादी एवं उसके बाद के कवियों द्वारा प्रयुक्त तद्रूप विधान प्रतीकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये प्रतीक सामान्यतया प्रकृति एवं संस्कृति को ही आधार बनाकर कविता में आए हैं।

(ख) साधर्म्यमूलक प्रतीक -

साधर्म्यमूलक प्रतीकों की भी कविता में कमोबेश यही स्थिति है। छायावादी कवियों ने विषयवस्तु में रहस्य एवं कल्पना की प्रधानता तथा भावुकतापूर्ण रागात्मक चित्रण के कारण अपनी कविता में साधर्म्य प्रतीकों का अत्यधिक उपयोग किया है। प्रसाद तथा महादेवी की अधिकांश काल्पनिक

1- कुछ कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृ0 53

लक्षणापरक चित्र-विधान साधर्म्यप्रतीकों की ही सहायता से कविता में हुआ है। प्रसाद की कविता-

> निचय हृदय में हूक उठी क्या,
> सोकर पहली चूक उठी क्या,
> अरे कसक वह कूक उठी क्या
> झंकृत कर सूखी डाली को ?[1]

यहाँ पर सूखी डाली की नीरसता, जीवन की नीरसता का प्रतीक है। प्रसाद की कविताओं में इसी तरह से अनेक प्रकार के साधर्म्य प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। जिसमें डाली पुष्प-कोमलता का मतवाली कोयल-हृदय के उल्लास का कलियाँ नवीन भाव का होने के अपने-आनन्दमय जीवन, मरुज्वाला- अनन्त पीड़ा के प्रतीक के रूप में अधिकांशतः प्रयुक्त हुए हैं। छायावादी कवियों में साधर्म्य प्रतीकों की दृष्टि से महादेवी की कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके काव्य में विरह की एकान्तिकता अर्थात् निराश तथा असफल प्रेम की विरह वेदना- को स्पष्ट करने के लिए अधिकांशतः इसी कोटि के प्रतीकों का उपयोग किया गया है -

> किन उपकरणों का दीपक,
> किसका जलता है तेल ?
> किसकी वर्ति, कौन करता
> इसका ज्वाला से मेल ?[2]

यहाँ पर दीपक-आत्मा का, तेल-आयु का, वर्ति-जीवन का, ज्वाला-चेतनता का प्रतीक है। दिनकर की कविताओं में विषय अर्थपरक होने के कारण साधर्म्य प्रतीकों की ही योजना दिखाई पड़ती है -

---

1- प्रसाद ग्रन्थावली भाग-1 पृ0367.

2- रश्मि: महादेवी पृ0 25

धन-पिशाच की विजय, धर्म की पावन ज्योति अदृश्य हुई,
दोड़ो बोधिसत्व । भारत में मानवता अस्पृश्य हुई ।[1]

यहाँ पर "धन पिशाच" धन लोलुप, व्यक्तियों दुष्ट एवं बुरे लोगों का प्रतीक है जबकि बोधिसत्व-लोगों के बीच अभेद स्थिति तथा मानवता का प्रतीक है ।

तादृश्यमूलक प्रतीकों की तरह छायावादोत्तर कवियों ने साधर्म्य प्रतीकों का अधिक उपयोग नहीं किया है -

तम्मय था मन की वल्लरियाँ कोकिल कलरव कूजित होतीं
राग-पराग-विहीना कलियाँ भ्रान्त-भ्रमर से पूजित होतीं ।[2]

केदारनाथ सिंह-

गुफा कोटर
कुआँ पोखर
एक स्वर के सूत से
सब ओर छोर मिला गए ।
फिर पपीहा दिन आ गए ।
बाँसुरी अपनी
धुन रखो ।[3]

यहाँ वल्लरियाँ और रागपराग विहीना कलियाँ ऐसी स्त्रियों को प्रतीक हैं जिनका यौवन समाप्त होने को है तथा दूसरे में "पपीहा दिन" दुःख के दिनों का प्रतीक है और बाँसुरी संयोगावस्था का प्रतीक है अतः जहाँ दुखों का आगमन होता है सुख की स्थितियाँ स्वयं हैं समाप्त हो जाती है ।

1- रश्मिलोक {रेणुका} पृ0 11
2- सदानीरा: अज्ञेय पृ0 122
3- कुछ कविताएँ केदारनाथ सिंह, पृ0 73

[ग] बिम्बमूलक प्रतीक -

आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा के भाषिक सामर्थ्य एवं सम्प्रेषण विस्तार में प्रतीकों की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान बिम्बमूलक प्रतीकों का है । छायावादी भाषा एवं भावकल्पना की समृद्धि में सर्वाधिक योगदान बिम्बात्मक प्रतीकों का ही है । लेकिन ये प्रतीक अधिकांशतः इन्द्रियबोधगम्य और चित्रात्मक विधान तक ही सीमित है फिर भी अभीष्ट अर्थ एवं भाव का बोध कराते हैं । इस प्रकार की बिम्बात्मक प्रतीकात्मकता निराला की कविता की प्रमुख विशेषता है -

> यह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी
> वह दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
> वह क्रूर काल ताँडव की स्मृति-रेखा-सी
> वह टूटे तरु की छुटी-लता सी दीन ।[1]

यहाँ "लता" स्त्री का प्रतीक है और तरु-पुरुष का । इसमें विधवा की पवित्रता सादगी का वर्णन है । अतः मंदिर की पूजा सी-उसकी पवित्रता, दीपशिखा सी शांत उसके मन की एकनिष्ठता का प्रतीक है । [2]इसी तरह प्रसाद के भी बिम्बमूलक प्रतीकों की की सम्प्रेषणीयता केवल वर्ण्य के मूर्त इन्द्रियबोध्युक्त चित्रांकन तक ही सीमित न रहकर सूक्ष्म, अमूर्त प्रतीयमान अर्थ की सांकेतिक व्यंजना का भी संकेत करती है । इन बिम्बमूलक प्रतीकों द्वारा व्यंग्यार्थ का संकेत प्रसाद के काव्य की एक प्रमुख विशेषता है-

> आँखों के साँचे में आकर
> रमणीय रूप बन ढलता-सा
> नयनों की नीलम की घाटी
> जिस रसघन से छा जाती हो,
> हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का
> गोधूली की सी ममता हो,
> जागरण प्रात सा हँसता हो
> जिसमें मध्यान्ह निखरता हो ।

---

1. निराला रचनावली, भाग-1 पृ0-40

छायावाद के बाद के कवियों ने भी अपनी संवेदना के विस्तार के लिए बिम्बवादी प्रतीकों का उपयोग किया है। अज्ञेय की कविताओं में बिम्बवादी प्रतीक प्रचुर हैं। इस समय के बिम्बवादी प्रतीकों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इन कवियों ने प्रतीकों के लिए बिम्बों का ग्रहण जनसामान्य में प्रचलित समाज की वस्तुओं से किया है। अज्ञेय की कविता है –

मैं ही हूँ वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता ![1]

यहाँ पर "रिरियाता कुत्ता" समाज द्वारा पददलित शोषित एवं कुंठित व्यक्ति का प्रतीक है। इस प्रकार की बिम्बवादी प्रतीक योजना की सहायता से समसामयिक जीवन एवं समाज की कुरूपता एवं गर्हित विचारों को ही नहीं बल्कि जीवन के मानवीय पक्षों को भी उभारा गया है –

जब जगत की चाहिए फुलवारियाँ
हो रहीं तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति समाई जा रही।[2]

यहाँ सीता के सताने के बिम्बात्मक प्रतीक द्वारा पौराणिक आख्यान बोध से सीता के अपहरण पीड़ा आदि भाव उपस्थित किया गया है। यहाँ फुलवारी-प्रसन्नता, सीता बेगुनाह व्यक्तियों तथा असुर संस्कृति बुरी संस्कृतियों या लोगों का प्रतीक है। दूसरा सप्तक में शमशेर बहादुर सिंह की एक कविता इस प्रकार है-

तरु गिरा
जो –
झुक गया था, गहन
छायाएँ लिये।
अब
हो उठा है मौन का डर

1– इत्यलम् : अज्ञेय, पृ० 165
2– धूप के धानः गिरिजा कुमार माथुर, पृ० 12

और भी यौन ---
दुःख उठा है करुण सागर का हृदय
तांव कोमल और भी अपनाव का आँचल
डालती है दिवस पैरै मुख पर ।[1]

यहाँ विस्तारात्मक प्रतीक द्वारा कवि व्यक्ति के जीवन की अंतिम अवस्था का वर्णन किया है इसे प्रकार हुआ तक-वृद्धावस्था का सांझ बेला-जीवन की अंतिम अवस्था, मोन-मृत्यु का तथा दिवस-व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवनकाल प्रतीक है । यहाँ पर तरु झुक गया" वृद्धावस्था का प्रतीक है और सान्ध्य बेला"जीवन की अंतिम अवस्था का करुण दृश्यचित्र उपस्थित किया है ।

(घ) विरोधमूलक प्रतीक -

छायावादी कवियों ने ईश्वर-आत्मा आदि से सम्बन्धित अनुभवोंके सैन्दृष्टियों को अंकित करने के लिए विरोधमूलक प्रतीकों का उपयोग किया है । प्रसाद तथा महादेवी की कविताएँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं -

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग-जल का ।[2]

यहाँ करोड़ा वेदना को स्पष्ट करने के लिए शीतल ज्वाला के रूप में विरोधमूलक प्रतीकों की योजना की है यहाँ ज्वाला जलना विरह का प्रतीक है ।

मैं दिन को ढूँढ रही हूँ
जुगनू की उजियाली में,
मन माँग रहा है मेरा
सिकता हीरक प्याली में ।[3]

1- धारा तपक:शमशेर बहादुर सिंह(भाई)पृ0 112
2- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 304
3- रश्मि,महादेवी पृ0 37

यहाँ पर महादेवी ने विरोधमूलक प्रतीकों के द्वारा जीवन में व्यक्तिगत सुख कामना की निरर्थकता की ओर संकेत किया है । यहाँ किस पारलौकिक सुख,कुसुम की उपेक्षा की–लौकिक सुख,निकास–पुष्पवस्तु, हीरक प्याली–मूल्यवान वस्तु का प्रतीक है।

छायावाद के बाद के कवियों ने विरोधमूलक प्रतीकों द्वारा जीवन एवं समाज की कुरूपता एवं मानसिक वृत्तियों के द्वन्द्व को भी उभारा है –

> तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान
> मृतक में भी डाल देगी जान
> धूलि–धूसर तुम्हारे ये गात ---
> छोड़कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जल जात ।[1]

यहाँ मृतक जिजीविषाशून्य व्यक्ति का प्रतीक है,जबकि जलजात छोटे बच्चों का प्रतीक है । यहाँ कवि विरोधमूलक प्रतीक द्वारा शिशु की सहज विमुग्धकारी मनोवृत्तियों एवं कार्यकलापों की सहजता की ओर संकेत किया है जिससे कठोर से कठोर हृदय वाले व्यक्ति भी प्रभावित हो जाते हैं । सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता–

> डरो की मुझको जरूरत नहीं है रहने दो–
> इस बार राख को अब कोई क्या जलायेगा ।[2]

यहाँ राख को जलाना" ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है जो समाज एवं जीवन की बुराइयों से लड़कर हार गया है और बुरी तरह टूट चुका है । इस तरह विरोधमूलक प्रतीकों की दृष्टि से नये कवियों का सन्दर्भ अधिक व्यापक एवं प्रभावी है ।

5. 8 लक्षणामूलक प्रतीक–

प्रतीकों की दृष्टि से छायावादी कवियों ने तथा उसके बाद के कवियों ने व्यंजनामूलक एवं लक्षणामूलक प्रतीकों का बड़ा ही कलात्मक उपयोग किया है । ये प्रतीक अधिकतर प्रभावसाम्य पर आधारित है । ये प्रतीक जहाँ

1– सतरंगे पंखों वाली, नागार्जुन, पृ0 49
2– काठ की घंटियाँ: सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ0 17

एक ओर कवि की संवेदना और अनुभूति पक्ष को विस्तार देते हैं वहीं दूसरी ओर धार्मिक सम्प्रेषण के स्तर पर भी प्रभावी भूमिका निभाते हैं । छायावादी कवियों ने सामान्यतया लक्षणामूलक प्रतीकों का उपयोग अपनी कविता में अधिक किया है । इसके लिए वे प्रभावसाम्य पर अधिक जोर देते हैं लेकिन कहीं-कहीं बाह्य सादृश्य या साधर्म्य की भी सहायता लेते हैं -

> खंडहर खड़े हो तुम आज भी
> अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज
> विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें
> करुणाकर करुणामय गीत सदा गाते हुए ?
> पवन-सञ्चरण के साथ ही
> परिमल-पराग-सम-अतीत की विभूति रज
> आशीर्वाद पुरुष पुरातन का
> भेजते सब देश में ।[1]

यहाँ 'खंडहर' के द्वारा कवि ने भारतीय प्राचीन संस्कृति के वैभवशाली इतिहास मूल्यवादी एवं उच्च आचरण के गौरवपूर्ण पक्ष की ओर संकेत किया है । निराला की, कुकुरमुत्ता, बादलराग आदि कविताएँ भी लाक्षणिक प्रतीकों का उत्कृष्ट उदाहरण है । पंत की कविता -

> तुम्हारे छूने में था प्राण
> संग में पावन गंगा स्नान,
> तुम्हारी वाणी में कल्याणि ।
> त्रिवेणी के लहरों का गान ।
> अपरिचित चितवन में था प्रात
> सुधामय आँखों में उपचार ।[2]

1- निराला रचनावली, भाग-1 पृ० 68-69

2- पंत ग्रन्थावली भाग-1 पृ० 187

यहाँ गंगास्नान-मन की पवित्रता एवं शुचिता का प्रतीक है जबकि त्रिवेणी स्नान-लोकमंगल की भावना का प्रतीक है ।

छायावाद के बाद के कवियों ने लाक्षणिक प्रतीकों सन्दर्भ एवं सम्प्रेषण दोनों दृष्टियों से कलात्मक प्रयोग किया है । ये लाक्षणिक प्रतीक अधिकतर समाज की समस्याओं से ही जुड़े हुए हैं-

> धुआँ - धुआँ
> सुलग रहा
> ग्वालियार के मजूर का हृदय
> कराहती धरा
> कि हायमय विषाक्त वायु
> धूम तिक्त आज
> रिक्त आज
> सोखती हृदय
> ग्वालियार के मजूर का ।[1]

उपर्युक्त लाक्षणिक प्रतीकों द्वारा कवि ने मजदूरों पर अत्याचार और उनकी आंतरिक स्थिति की ओर संकेत किया है । इन आधुनिक कवियों में गिरिजाकुमार माथुर तथा सर्वेश्वरदयाल सक्सेना में लाक्षणिक प्रतीकों का उपयोग अधिक दिखाई पड़ता है। गिरिजा कुमार माथुर ने जहाँ सामान्यतया प्राकृतिक प्रतीकों एवं ऐतिहासिक प्रतीकों का चयन किया है वहीं सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में समाज एवं जीवन-व्यापार के क्षेत्र से प्रतीक जुटाए गए हैं ।

1- कुछ कविताएँ: शमशेर बहादुर सिंह पृ० 32

{च} <u>व्यंजनामूलक प्रतीक</u> -

व्यंजनामूलक प्रतीक की दृष्टि से छायावादी कविता और उसके बाद की कविता दोनों समृद्ध है । छायावादी कवियों में निराला ने अधिकांशतः इसी प्रतीक-पद्धति के सहारे अपने भावों तथा अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है । यहाँ पर कविता सामान्य विषयवस्तु से हटकर प्रतीत होने वाले अभीष्ट संकेतार्थ के लिए ही प्रयुक्त हुई है । इस अभीष्ट अर्थ संकेत में निराला के व्यक्तित्व ने भी प्रभावशाली भूमिका निभाई है -

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत पाई गर खुशबू रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट ।[1]

इसमें गुलाब शोषक निम्नवर्ग के मेहनत पर फूले-फले वाले व्यक्तियों का प्रतीक है । यहाँ गुलाब के प्रतीकार्थ की प्रतीति व्यंजनागम्य ही है क्योंकि कैपिटलिस्ट गुलाब का वाच्यार्थ नहीं है । इसी तरह जुही की कली कविता में निराला पवन और कली के प्रतीक द्वारा प्रणय क्रीड़ा की व्यंजना करते हैं । दिनकर तथा बच्चन की कविताएँ में भी व्यंजनामूलक प्रतीकों का उपयोग हुआ है, भावोनुकूल एवं प्रभावशाली है- ि

किन द्रौपदियों के बाल खुले ?
किन-किन कलियों का अंत हुआ ?
कह हृदय खोल चित्तौर यहाँ
कितने दिन ज्वाल-वसंत हुआ ?[2]

1- निराला रचनावली, भाग-2 पृ0 45
2- रश्मिलोक: {रेणुका}: रामधारी सिंह दिनकर, पृ0 5

यहाँ द्रोपदियाँ और कलियाँ प्रतीक है । यहाँ द्रोपदी नारियों की नैतिक पवित्रता और कलियाँ कच्ची उम्र की बालिकाओं के कुचले जाने का प्रतीक है । जबकि बच्चन ने अपनी लगभग सारी की सारी रोमांटिक कविताएँ व्यंजना के उपयोग से ही निर्मित की है –

> एक बरस में एक बार ही
> जगती होली की ज्वाला,
> एक बार ही लगती बाजी
> जलती दीपों की माला
> दुनियावालों, किन्तु किसी दिन
> आ मदिरालय में देखो
> दिन को होली रात दिवाली
> रोज मनाती मधुशाला ।[1]

यहाँ होली, दीपों की माला, मदिरालय, दिवाली, मधुशाला सभी के सभी का प्रतीकात्मक उपयोग हुआ है ।

छायावाद के बाद के कवियों अज्ञेय, नागार्जुन, शमशेर, सर्वेश्वर, गिरिजाकुमार माथुर आदि सभी कवियों ने समाज एवं जीवन की कुरूपता एवं असंगतियों को उभारने तथा अपनी कविता को जनसामान्य के स्तर पर संप्रेष्य बनाने के लिए व्यंजनायुक्त प्रतीकों का उपयोग किया है । सर्वेश्वर की चुपाई-मारो दुलहिन कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है–

> दे रोटी ?
> गयी कहाँ थी बड़े सबेरे
> कर चोटी ?
> लाला के बाजार में,

1– अभिनवसोपान (मधुशाला) हरिवंशराय बच्चन, पृ०58

मिली छुअनी
पर वह भी निकली खोटी,
दिन भर खोयी
बीच बाजार में बैठ के रोयी,
साँझ को लौटी
ले बासी औजार ।[1]

यहाँ रोटी-भूख का, नारी का बाजार-रूप बेचने के बाजार, दिन भर खोई-रूप का सौदा, लौटी-लगने का, बासी-औजार-मन की स्थिति का प्रतीक है ।

अपह्नुत्यमूलक वाच्यमूलक तथा कारण-कार्यमूलक प्रतीक -

इन प्रमुख प्रतीकों के अतिरिक्त अपह्नुत्यमूलक प्रतीक वाच्यमूलक प्रतीक तथा कारण कार्यमूलक प्रतीक का आधुनिक हिन्दी कविता में कम ही प्रयोग दिखाई पड़ता है । इसका प्रमुख कारण है कि अपह्नुत्य प्रतीक का प्रमुख गुण ही है, अर्थात् सादृश्य विधान या साधर्म्य विधानमूलक या प्रभावसाम्य की दृष्टि से युक्त प्रतीक ही सामान्यतया कविता में प्रयुक्त हुए हैं, और इनके निर्माण के मूल में अपह्नुत्य वृत्ति ही देखी जा सकती है । कविता भावों की भाषा होने के कारण उसे तार्किक अर्थ-पद्धति या विवरण की आवश्यकता नहीं होती । इसलिए कविता में कारण कार्य मूल तार्किक वाक्य-योजना नहीं की जाती फिर भी छायावादी कविता की रहस्यवादी अर्थयोजना के नाते तथा उसके बाद के अज्ञेय आदि कवियों में कहीं-कहीं व्याकरणकार्य मूलक प्रतीकों का उपयोग किया गया है लेकिन ये भाव तथा अर्थ-सम्प्रेषण दोनों दृष्टियों से अन्य प्रतीकों की तरह प्रभावशाली नहीं हैं -

भर दिया रस प्रथम उर में कर दिया फिर प्यार वर्जित-
तब बने अन्धे पतंगे हो पुलक जब दीप निर्मित ।[2]

1- काठ की घंटियाँ: सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ0 144

2- सदानीरा: अज्ञेय, पृ0 160

यही स्थिति गद्यखण्ड प्रतीकों की भी है । कविता में मात्र नहीं शब्दों की योजना और उनके द्वारा दृश्यबिम्बों एवं अर्थबिम्बों की योजना की जाती है । लेकिन फिर भी आधुनिक काव्यभाषा की नवीन संरचनात्मक ढाँचा के कारण कहीं-कहीं पूरे के पूरे वाक्य प्रतीक का कार्य करने लगते हैं । छायावाद के बाद के कविता में इसके अधिक उदाहरण प्राप्त होते हैं -

यह शाम है
कि आसमान खेत है, पके हुए अनाज का ।
लपक उठीं लहू भरी दरातियाँ
-कि आग है :
गरीब के हृदय
टँगे हुए
कि रोटियाँ लिए हुए निशान
लाल-लाल
जा रहे । 1

यहाँ आग-क्रांति का, लपक उठीं लहू भरी दरातियाँ- आंदोलन एवं प्रदर्शन का, गरीब के हृदय-मजदूरों का, लाल-लाल निशान-मार्क्सवादी विचारधारा का प्रतीक है ।

(2) <u>अमूर्त प्रतीक</u> -

छायावादी कवियों की कविताएँ में स्थित प्रतीक अधिकांशतः अमूर्त प्रतीक ही हैं क्योंकि छायावादी कविता की प्रकृति ही कल्पना एवं भावकी विरलता पर आधारित है । इसलिए प्रसाद-पंत-महादेवी आदि ने अमूर्त प्रतीकों की सहायता से प्रकृति एवं ईश्वर के अमानवीय कार्य-व्यापारों का चित्रण

1- कुछ कविताएँ: शमशेर बहादुर सिंह, पृ0 32-33

किया है । इसके साथ-साथ इन कवियों ने संयोगमूलक क्रियाव्यापारों का भी अधिकतर अमूर्त चित्रण ही किया है । प्रसाद ने कामायनी में वसंत के प्रतीक द्वारा यौवन का चित्रण किया है –

> मधुमय वसंत जीवन वन के वह अन्तरिक्ष की लहरों में
> कब आये थे तुम चुपके से, रजनी के पिछले पहरों में,[1]

यहाँ मधुमयवसंत– जीवन के सुखों का, अंतरिक्ष की लहरों–जीवन में सुखों के आगमन का तथा रजनी के पिछले पहर–दुःखों के बीत जाने का प्रतीक है ।

पंत एवं निराला अमूर्त प्रतीकों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । उन्होंने भी प्रकृति एवं श्रृंगार सम्बन्धिा भावनाओं को सम्प्रेषित करने के लिए अमूर्त प्रतीकों का ही चयन किया है –

> उषा की कनक मदिर मुसकान
> उसी में था क्या यह अनजान ?
> भला उठते ही तुमको आज
> दिलाया किसने इसका ध्यान ।[2]

कनक मदिर मुसकान अमूर्त प्रतीक द्वारा कवि प्रसन्नता की ओर संकेत किया है । छायावाद के बाद के कवियों में अज्ञेय, नागार्जुन गिरिजाकुमार माथुर सर्वेश्वर आदि कवियों ने अमूर्त प्रतीकों का उपयोग अधिकतर कामपरक भावनाओं को स्पष्ट करने के लिए ही किया है –

> सो रहा है झोंप अँधियाला नदी की जाँघ पर
> डाह से सिहरी हुई यह चाँदनी
> चोर पैरों से उझक कर झाँक जाती है ।[3]

यहाँ अँधियाला–पुरुष और नदी–प्रिया, चाँदनी–सपत्नी प्रतीक के द्वारा कामपरक क्रिया व्यापार की व्यंजना कराईगई है ।

1– प्रसाद ग्रन्थावली भाग–1 पृ0 473

2– पंत ग्रन्थावली, भाग–1 पृ0 211

3– [illegible]

प्रतीकों के विस्तृत अध्ययन के उपरान्त निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित तथ्य दिखाई देते हैं -

1- आधुनिक हिन्दी कविता में भाव तथा अर्थसम्प्रेषण के लिए प्रतीकों का अत्यधिक प्रयोग मिलता है । छायावादी प्रतीकों का चयन अधिकतर प्रकृति संस्कृति एवं इतिहास से हुआ है जबकि छायावाद के बाद के कवि इसके अतिरिक्त जनजीवन से सम्बन्धित विषयों तथा वैज्ञानिक आविष्कारों को भी प्रतीक रूप में ग्रहण किया है ।

2- छायावादी कविता में अमूर्त प्रतीकों का उपयोग अधिक जबकि उसके बाद की कविता में मूर्त प्रतीकों का । अमूर्त प्रतीकों का विषय छायावादी कविता में प्रकृति, ईश्वर तथा शृंगार से ही अधिकांशतः सम्बन्धित हैं जबकि बाद की कविता में कामगरक, मनोविकारों के प्रतीक अधिक हैं ।

3- मूर्त प्रतीकों की दृष्टि से छायावादी तथा बाद के कवियों की कविताओं में मुख्यतः साधर्म्य मूलक प्रतीक, सादृश्यमूलक प्रतीक बिम्बमूलक प्रतीक, लक्षणामूलक प्रतीक तथा व्यंजनामूलक प्रतीकों का उपयोग अधिक हुआ है ।

4- इन कवियों में प्रतीकों का अत्यन्त कलात्मक प्रयोग मिलता है ।अनुभवगत अर्थ सामर्थ्य को सम्प्रेषित करने के लिए कवियों ने प्रतीकों को एक समर्थ भाषिक संरचना के रूप में विकसित किया । जिसके कारण सम्प्रेषण के स्तर पर अर्थ की कमी महसूस नहीं की गई ।

5- छायावादी कविता में जहाँ रूढ़ प्रतीक भी दिखाई पड़ते हैं बाद की कविता में रूढ़ प्रतीकों का प्रयोग बहुत ही कम है, यदि वे हैं भी तो नये सन्दर्भों में प्रयुक्त हुए हैं ।

6- छायावादी भाषा एवं भावकल्पना की समृद्धि में जहाँ सर्वाधिक रूप से बिम्बात्मक प्रतीकों का योगदान है वहीं बाद के कवियों ने व्यंजनामूलक प्रतीकों का अधिक सहारा लिया ।

7- छायावादी तथा बाद के कवियों के प्रतीक अधिकांशतः प्रभाववाम्य पर ही आधारित हैं ।

बिम्ब-विधान

बिम्ब की सहायता से कवि सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाव छवियों को शब्दों के द्वारा चित्रों के रूप में प्रस्तुत करता है । बिम्ब जहाँ एक ओर कवि की अनुभूतियों एवं संवेदनाओं को व्यक्त करने में सहायक होते हैं, वहीं दूसरी ओर उसका पाठक पर प्रभाव भी अचूक होता है । यह जितना अधिक व्यंग्यार्थ गर्भित होगा उसकी सम्प्रेषणीयता उतनी ही अधिक विस्तृत होगी । बिम्ब की व्यंजकता उसकी पूर्णता और संक्षिप्तता पर निर्भर रहती है । यही कारण है कि आधुनिक हिन्दी कविता बिम्बों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है । इन कवियों ने बिम्बों की सहायता से बिना किसी कठिनाई के जटिल से जटिल भावों की अभिव्यक्ति की है । आधुनिक हिन्दी कविता में जीवन-व्यापार की जटिलता भी बिम्बों के उत्कर्ष में सहायक हुई है । वर्ण्य को अभिव्यक्ति देने के लिए कवियों ने बिम्बों का माध्यम में उपयोग किया है । इन आधुनिक कवियों ने लगभग सभी प्रकार के बिम्बों का प्रयोग अपनी कविता में किया है । कविता में संक्षेप रूप में बिम्बों की स्थिति को उनके प्रकार-भेदों को ध्यान में रखकर देखा जा सकता है -

आप्त बिम्ब -

आप्त बिम्ब में आधुनिक हिन्दी कवियों ने पुराने सन्दर्भों, वस्तुओं एवं परम्पराओं को लेकर अभीष्ट अर्थ का संकेत किया है । इन बिम्बों की सहायता से हमारी प्राचीन संस्कृति एवं जीवन के बहाने आधुनिक सामाजिक स्थिति की जाँच-पड़ताल की प्रवृत्ति अधिकतर दिखाई पड़ती है । आधुनिक हिन्दी कविता में कवियों ने आप्त बिम्ब के प्रयोग में सामान्यतः सन्दर्भों को ग्रहण किया है और उन्हीं के सहारे कविता में आप्तबिम्बों की योजना की है -

[क] धर्मसम्बन्धी आप्तबिम्ब -

आप्त बिम्बों का आधुनिक हिन्दी कविता में प्रयोग अधिकतर प्रतीकात्मक ही है । अर्थात् धर्म, इतिहास, लोकसम्बन्धी प्रचलित मान्यताओं को इन बिम्बों

का आधार बनाया गया है । धर्मसम्बन्धी आद्य बिम्बों में यह आधार धर्म से सम्बन्धित है । इन बिम्बों को कवियों ने अपनी कविताओं में दो तरह से प्रयोग किया है - विभिन्न प्रसंगों में एक ही बिम्ब की अनेक कलात्मक आवृत्तियों के द्वारा तथा दूसरे सांकेतिक व्यंजनाओं के द्वारा । छायावादी कवियों में निराला ने धर्मसम्बन्धी आद्य बिम्बों का बड़ा ही कलात्मक प्रयोग किया है । "राम की शक्तिपूजा" कुकुरमुत्ता आदि कविताओं में धार्मिक बिम्बों की योजना हुई है जो प्रकारान्तर से अभिजात्य के प्रति व्यंग्य है -

> विष्णु का मैं ही सुदर्शन चक्र हूँ
> काम दुनिया में पड़ा ज्यों वक्र हूँ
> उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी
> और भी लम्बी कहानी-
> सामने ला, कर मुझे बेंड़ा
> देख बेंड़ा
> तीर से खींचा धनुष मैं राम का
> काम का -
> पड़ा कन्धे पर हूँ हल बलराम का ।[1]

इसमें कवि कुकुरमुत्ता के छत्र और डंठल को लेकर धर्मसम्बन्धी बिम्बों की श्रृंखला खड़ीकर दी है और उसके सहारे वर्तमान निम्नवर्गीय जीवन के कटु यथार्थ को पाठक तक सम्प्रेषित करने की कोशिश की है ।

उपर्युक्त पंक्तियों में विष्णु का सुदर्शन चक्र, जसोदा की मथानी, धनुष पर खिंचा राम का तीर तथा बलराम का हल कुकुरमुत्ते के लिए प्रयुक्तहुए धर्मसम्बन्धी आद्यबिम्ब है । उपर्युक्त अस्त्रों की उपेक्षा के सहारे कवि कुकुरमुत्ते की उपेक्षा की ओर संकेत कर रहा है । क्योंकि निम्न एवं दलित वर्ग जब किसी अत्याचारी के विरुद्ध खड़ा होता है तो उसका सर्वस्व नाश करके ही दम लेता है । साथ ही साथ कवि ने निम्न लोगों की पवित्रता एवं निश्छल प्रेम को भी जसोदा की मथानी के बिम्ब द्वारा स्पष्ट किया है क्योंकि निम्नवर्ग के लोग बिना किसी स्वार्थभावना के सभी के साथ मन से प्रेम करते हैं ।

1- निराला रचनावली, भाग-2, पृ-46-47

छायावाद की कविता में धर्म सम्बन्धी जो बिम्ब आए है वे अधिकार भावसंवेदना को ही स्पष्ट करने के लिए आए हैं । छायावाद के बाद के कवियों में गिरिजाकुमार माथुर नरेश मेहता तथा भारतभूषण अग्रवाल की ही कविताओं में धार्मिक बिम्बों का प्रयोग अधिकांशतः दिखाई पड़ता है अन्यथा अज्ञेय, नागार्जुन शमशेर, केदारनाथ सिंह आदि की कविताओं में ये बिम्ब अपवाद स्वरूपही दिखाई देते हैं । सर्वेश्वर में धार्मिक बिम्बों के द्वारा जनसामान्य की मनोबोध को रेखांकित करने की कोशिश दिखाई पड़ती है –

सूखे बछड़े का मुख सहलाकर
रामायण की चौपाई गाकर
बैलों की गाड़ी में अधलेटा
कोई रात के संग-संग जाता है ।
ठाकुरद्वारे की घंटी चुप हो जाती है
अँधियारी पेड़ों के तले फैल जाती है
कोई तिनकों का ईंधन भर-भर
ठण्डे चूल्हों को गरमाता है ।[1]

इसमें कवि धार्मिक बिम्बों रामायण की चौपाई ठाकुरद्वारे की घंटी की सहायता से कृषक वर्ग के सभी समस्याओं से जूझने और संतोष करने की संवेदना को उजागर किया है उसे न तो भरपेट भोजन उपलब्ध है, न सोने के लिए पर्याप्त समय है, न उसके बैलों के लिए पर्याप्त चारा है, इस पर भी वह कड़ी मेहनत करते हुए, रामायण की चौपाई गाकर संतोष करता हुआ दिन काट रहा है । उसका संतोष एवं आशा भी "ठाकुरद्वारे की घंटी की तरह चुप है । उसे आशा की कोई किरण नहीं दिखाई दे रही है जो उसके जीवन में प्रकाश कर सके जीवन अँधियारा(अर्थात् दुःख-दर्द गरीबी, शोषण आदि) उसके जीवन पर लगातार फैलता हुआ गहन से गहनतर होता जा रहा है और मजबूरी में उसे अपना सारा परिश्रम ठण्डे चूल्हे को गरमाने में ही लगाना पड़ रहा है ।

1– काठ की घंटियाँ: सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ0 66

धार्मिक बिम्बों की दृष्टि से छायावादी एवं उसके बाद की कविता में यह अन्तर है कि छायावादी के बाद की कविता में धार्मिक बिम्बों की सहायता से जहाँ समाज एवं वर्तमान जीवन की परख, स्थिति को उभारा गया है वहीं छायावाद की कविता उसके सहारे मानव के मनोगत भावों और अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने की कोशिश की है।

(ख) लोकसम्बन्धी आप्त बिम्ब –

आधुनिक हिन्दी कविता में आप्त बिम्बों के प्रयोग की दृष्टि से लोकसम्बन्धी बिम्बों का अत्यधिक प्रयोग दिखाई पड़ता है, इसका प्रमुख कारण आधुनिक हिन्दी कविता की प्रकृति है। आधुनिक हिन्दी कविता जनसामान्य के जीवन और समस्याओं से जुड़ी होने के कारण कवि सामाजिक सन्दर्भ में और सांस्कृतिक सन्दर्भ में जीवन की वर्तमान स्थितियों को उभारने की कोशिश करता है। इस कोशिश में वह अपनी अनुभूतियों को पाठक तक सम्प्रेषित करने के लिए लोक बिम्बों का सहारा लेता है क्योंकि ये प्रयोग एवं समझ दोनों स्तरों पर सहज रूप से ग्राह्य होते हैं। प्रसाद, पंत, महादेवी, बच्चन आदि में लोकबिम्ब जहाँ केवल भावोत्कर्ष और अलंकृत करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं वहीं निराला की कविताओं में यह मानव संवेदनाओं को उभारने में सफल हैं –

> ये जो जमुना के से कछार
> पद फटे बिवाई के उधार
> खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
> चमरौधे जूते से सकेल
> निकले जी लेते घोर गंध
> उन चरणों को मैं यथा अन्ध
> कल घ्राण-प्राण से रहित व्यक्ति
> हो पूजूँ, ऐसी नहीं शक्ति।[1]

1– निराला रचनावली, भाग-1 पृ0 305

निराला ने जमुना के कछार और यमरौधे जूते के बिम्ब को अपनी सुंदरी युवी के तर के लिए उपस्थित करके एक विलग पिता तथा सामाजिक बंधनों की संकीर्णताओं को उभारने की कोशिश की है । जबकि अन्य छायावादी कवियों सामान्यतया प्रकृति के छायों केउभारने अथवा लोक अनुभवों को विस्तार देने के लिए लोक बिम्बों का आश्रय ग्रहण किया है -

> उल्लास रहा युवकों का
> शिशुगण का था मृदु कलकल
> महिला मंगल गानों से
> मुखरित था वह यानी दल । [1]

छायावाद के बाद की कविता में लोकबिम्बों की दृष्टि से लोगों के जीवन तथा समाज की कुरूपताओं को उभारने की कोशिश दिखाई पड़ती है । अज्ञेय ने इन लोकबिम्बों के सहारे आज के मानव के विविध पक्षों को उभारने की कोशिश की है-

> खेली विविध मानवों से ? काश, हम भी खेल सकते ।
> भाग्य के हमले अनोखे हम हँसी में झेल सकते ।
> पर हमें शतरंज के प्यादों सरीखा है हटाता
> काश, हम में शक्ति होती भाग्य को हम ठेल सकते । [2]

इसमें अज्ञेय मानव की नियति को शतरंज के प्यादों के बिम्ब द्वारा स्पष्ट किया है । नरेश मेहता ने लोकबिम्बों के सहारे प्रकृति के मानवीय स्वरूप को उभार कर सामने रखा है -

---

1- प्रसाद ग्रन्थावली भाग-1 पृ0 688
2- सदा नीरा, भाग-1 पृ0-160

गगन बीड़ से सूरज ग्वाला हाँक रहा है दिन की गायें
नभ का नीलापन चुप है दिशि के कन्धे पर सिर धर
उस उतराई मार्ग दिवस के सैन्धव नतशिर होकर उतरे लथे चरण से,
चमक रही पीले बालों वाली अयाल उनके गर्दन की
साँझ दिवस की पत्नी, अपने नील महल में बैठी कात रही है बादल
दिशि की चारों कन्याएँ हैं माँग रहीं तारों की गुड़ियाँ ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने प्रकृति के कार्य-व्यापार को लोकबिम्बों की सहायता से उभारा है । यहाँ गगन के लिए बीड़ (चारागाह) सूरज के ग्वाला दिन के लिए गायें, रोशनी के लिए पीला बाल साँझ को पत्नी, नीले आकाश के लिए नीला महल, दिशाओं को कन्या और तारों के लिए गुड़िया इत्यादि लोकबिम्बों का प्रयोग कर सायंकाल से रात्रि होने तक के दृश्य को उभारा है ।

आधुनिक हिन्दी कविता में लोकबिम्बों की दृष्टि से छायावादी कवियों ने अधिकतर लोक अनुभवों को उभारने के लिए इस तरह के बिम्बों का सहारा लिया है जबकि निराला की कविताओं में इसके सहारे लोगों की समस्याओं को उभारने की कोशिश दिखाई पड़ती है ।

<u>ऐतिहासिक आद्य प्रतीक बिम्ब -</u>

आधुनिक हिन्दी कविता में आद्य ऐतिहासिक बिम्बों का प्रयोग बहुत ही कम हुआ है । छायावादी कवियों में विशेषकर प्रसाद में आद्य ऐतिहासिक बिम्बों का बहुत अधिक प्रयोग दिखाई पड़ता है प्रसाद ने ऐतिहासिक बिम्बों के सहारे अपने अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने की सफल कोशिश की है-

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो ।
जीवनधन ! इस जले जगत को वृन्दावन बन जाने दो ।[2]

1- दूसरासप्तक: नरेश मेहता (समयदेवता) पृ० 132

2- प्रसादग्रन्थावली, भाग-1 पृ० 355

यहाँ पर "वृन्दावन" ऐतिहासिक" आद्यप्रतीक बिम्ब है । इसमें प्रसाद ने व्यक्ति को सांसारिक दुःखदर्द को भुलाकर वृन्दावन बनाने की कामना की है। वृन्दावन कृष्ण के बचपन एवं युवावस्था के उद्दाम एवं अनियंत्रित प्रेम से ओतप्रोत नगरी है जहाँ किसी भी प्रकार के अभाव या दुःख शेष नहीं है अतः व्यक्ति भी अपने समस्याओं को त्याग उसी प्रेम में डूबे रहने की बात कवि ने की है ।

छायावाद के बाद की कविता में कवियों ने ऐतिहासिक बिम्बो के सहारे वर्तमान सन्दर्भों को उभारने की कोशिश की है । गिरिजाकुमार माथुर ने "बुद्ध" कविता में विभिन्न मानवीय पक्षों की ओर संकेत करने की कोशिश की है-

दीर्घ विदेशों के अशोक-साम्राज्यों अमर
नहीं रहे वे महावंश अब,
वे कनिष्क से विक्रमादित्य से नाम हजारों,
किन्तु तक्षिला, साँची, सारनाथ के मन्दिर,
और कीर्ति-स्तम्भ धर्म के बोल रहे हैं -
जिस सीमा पर पहुँच न पायीं, हुई पराजित
कुद्ध तोड़ने की ग्रीकों की तलवारें
वहाँ विश्व-जय हुई प्यार के एक घूँट से ।[1]

इसमें कवि ने भगवान बुद्ध के सिद्धान्तों के अनुयायी सम्राट अशोक, कनिष्क और विक्रमादित्य, तक्षशिला साँची सारनाथ के मंदिर, ग्रीकों की तलवार आदि को ऐतिहासिक आद्य प्रतीक के रूप में ग्रहण किया है । इसमें ग्रीकों की ताकत ने जहाँ ताकत के द्वारा विश्वविजय करने कोशिश की लेकिन वह इसमें असफल रहा न तो उसका साम्राज्य बहुत दिनों तक रहा और न ही लोगों को जीत कर वश में होकर सका उसके विपरीत अशोक कनिष्क हर्ष आदि ने अहिंसा के संदेश द्वारा प्रेम से अत्यन्त विशाल साम्राज्य स्थापित किया और लोगों के हृदय तक को भी जीत लिया और वे अनेक धर्मस्तम्भों आदि मानवीय पूर्ण कार्यों के कारण आज भी विश्व भर में लोगों के हृदय पर राज्य कर रहे हैं ।

1- तारसप्तक: गिरिजाकुमार माथुर {बुद्ध} पृ0 147

इस प्रकार छायावादी कविता तथा उसके बाद की कविता में ऐतिहासिक आदि बिम्बों का प्रयोग सामान्यतः मानव के संवेदनात्मक पक्षों को उभारने के लिए हुआ है ।

ऐन्द्रिय बिम्ब -

{क} ऐन्द्रिय दृश्य बिम्ब

आधुनिक हिन्दी कविता में ऐन्द्रिय बिम्ब कविता के विषय एवं कवि की अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने में अधिक प्रभावी सिद्ध हुए हैं । ऐन्द्रिय बिम्बों में कवियों ने दृश्य-व्यापार बिम्बों की योजना अधिक की है । इसका प्रमुख कारण यह है कि छायावादी कविता में प्रकृति से जुड़कर रहस्य तथा कल्पना को उभारने की कोशिश के कारण दृश्य-व्यापार बिम्बों का प्रयोग अधिक है जबकि उसके बादकी कविता मानवीय संवेदनाओं तथा जीवन की जटिलताओं को लोगों की अनुभूतियों का विषय बनाने के लिए ऐन्द्रिय दृश्य व्यापार बिम्बों का सहारा लियाहै -

{1} दृश्य वस्तु बिम्ब -

कवि दृश्य बिम्ब के सहारे किसी वस्तु को स्पष्ट करने की कोशिश करता है । छायावादी कवियों में प्रसाद पंत, निराला आदि ने अपने वर्ण्य विषय को पाठक तक सम्प्रेषित करने के लिए दृश्यवस्तु बिम्बों की योजना की है -

श्यामल अंचल धरणी का
भर मुक्ता आँसू कन से
छूँछा बादल बन आया
मैं प्रेम प्रभात गगन से ।[1]

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 313

इसी तरह निराला ने भी दृश्यव्यापार बिम्बों के सहारे अनेक कलात्मक एवं प्रभावशाली, सन्दर्भों को अंकित करने का प्रयास किया है ।

छायावाद के बाद के कवियों ने भी ऐन्द्रिय दृश्यबिम्बों का प्रयोग बहुधा प्रकृति के सहारे मानवीय अनुभूतियों को ही स्पष्ट किया है । इन कवियों में नरेश मेहता, गिरिजाकुमार माथुर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि विशेष सफल रहे हैं । गिरिजा कुमार माथुर के चित्रांकन में अनेक दृश्य बिम्बों की योजना की है-

> उजला पाख क्वार का फूला कास सा
> खिली चाँदनी रात कि कली सुहावनी
> नरम नखूनी रंग छुले आकाश में
> छिटक रही है पूरनमा की चाँदनी
> आसमान में भरा श्वेत सा सोम का
> नयनों में मदभरी ललाई झूलती
> हिम के मृग भर रहे चौकड़ी चाँद में
> नवल नारि सी अलस केतकी फूलती ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने क्वार मास केशुक्ल पक्ष के सौन्दर्य को स्पष्ट करने के लिये अनेक दृश्य बिम्बों की योजना की है उन्होंने शुक्ल पक्ष को काँसके फूल की तरह, रात को कली, स्वच्छ आकाश को स्पष्ट करने के लिए नाखूनों के रंग, नयनों की ललाई, हिम के मृग तथा फूली हुई केतकी के लिए नववधू के आलस्ययुक्त नेत्रों का बिम्ब रखा है ।

(11) दृश्य-व्यापार बिम्ब -

दृश्य वस्तु बिम्ब की अपेक्षा दृश्य व्यापार बिम्ब में कलात्मकता अधिक पायी जाती है । छायावादी कविता में जहाँ सामान्यतया दृश्यवस्तु बिम्बों की योजना अधिक है वहीं छायावाद के बाद की कविता में दृश्य-व्यापार बिम्ब की योजना अधिक है । छायावादीकविता में दृश्यव्यापार बिम्बों की दृष्टि

1- धूप के धान: गिरिजा कुमार माथुर, पृ067

से निराला तथा प्रसाद की कविताएँ महत्वपूर्ण हैं क्योंकि निराला ने जहाँ जनजीवन के कार्यव्यापारों की विवशता को सम्प्रेषित किया है वहाँ प्रसाद ने प्राकृतिक कार्य व्यापारों का संकेत किया है -

> काँप रहे थे चरण पवन के
> विस्तृत नीरवता सी
> घुली जा रही है दिशि दिशि की
> नभ में मलिन उदासी ।[1]

यहाँ कवि ने प्रकृति के कार्य-व्यापार को स्पष्ट करने के लिए दृश्य बिम्बों की योजना रखी है, ये दृश्यबिम्ब भी प्रकृति से है । ये दृश्यबिम्ब मानवीयकरण के सहारे कविता में आए हैं । यहाँ मन्द वायु चल रही है जो पवन के काँपते चरण से प्रतीत हो रहे है और नीरवता का अँधेरा उदासी बनकर फैल रहा है । निराला की कविता-

> उमड़ सृष्टि के अन्तहीन-अम्बर से
> घर के क्रीड़ारत बालक- से
> ऐ अनन्त के चन्चल शिशु सुकुमार ।
> स्तब्ध गगन को करते हो तुम पार ।
> अंधकार-घन अन्धकार ही
> क्रीड़ा का आगार ।
> चौंक चमक छिप जाती विद्युत
> तड़िद्दाम अभिराम ।[2]

इसमें निराला ने बादल के कार्य-व्यापार को स्पष्ट करने के लिए क्रीड़ारत चंचल शिशु का बिम्ब रखा है । वह क्रान्तिकारी बादल की चमक जो पूँजीपति वर्ग में भय का संचार कर देता है यहाँ बालक की करधनी की तरह से चमक रही है । यहाँ बादल का उद्दाम, उच्छृंखल वेग नहीं है वरन शांत होकर गगन को पार कर रहा है ।

1- प्रसादग्रन्थावली, भाग-1 पृ0 530
2- निराला रचनावली भाग, 1पृ0121

छायावाद के बाद के कवि दृश्यवस्तु बिम्ब योजना में संदर्भों का चित्रण गहरे स्तर तक हुआ है जिसके कारण वे जब अनुभूतियों को सम्प्रेषित करते हैं तो कविता में बिम्बों की प्रवाहमान शृंखला सी खड़ी कर देते हैं और उसके सहारे अनुभूतियों को गहरे स्तर तक संवेद्य बनाने की कोशिश रहती है । व्यापार बिम्ब की दृष्टि से छायावाद के बाद की कविता की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि इन कवियों ने सामान्यतः पशुचारण, कृषि, वाणिज्य-व्यापार से सम्बन्धित बिम्बों को भी ग्रहण किया है, जो उनकी प्रकृति के कारण उचित ही है गिरिजाकुमार माथुर द्वारा अंकित कृषि से सम्बन्धित एक चित्र -

> उड़ रहा है वह नया दूज का चाँद
> दुधिया चाँद श्वेत हँसली सा
> बालिका साँझ की सिमट साड़ी
> जा रही सँकरे मैदानों से
> जैसे घर लौटती किसान बहू
> काम दिन भर का करके खेतों से
> लाल मुँह हो रहा मेहनत से
> कच्ची मिट्टी से भरे
> साँवले रखौड़े हाथ
> जिनमें पहने हैं लाख के कंगन
> हाथ में चाँद सा चमक हँसिया ।[1]

ऐन्द्रिय दृश्य की दृष्टि से छायावादी कविता में जहाँ प्रकृति को सामान्यतया साधन एवं साध्य दोनों रूपों में ग्रहण किया है वहीं उसके बाद की कविता प्रकृति की बिम्बात्मक दृश्यावलियों को साधन के रूप में ग्रहण किया है और उसके सहारे अपनी संवेदना को अभिव्यक्ति दी है ।

1- धूप के धान: गिरिजा कुमार माथुर, पृ074

(ख) अन्य संवेद बिम्ब –

अन्य ऐन्द्रिय संवेद बिम्बों में स्पर्श घ्राण, श्रवण, आस्वाद को शामिल किया जाता है । छायावादी कविता की प्रकृति सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होने कारण अन्य संवेद बिम्बों का आश्रय अधिक लिया गया है । छायावादी कवियों में निराला इन बिम्बों की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । उनके श्रवण तथा घ्राण बिम्ब भावों तथा प्रकृति के अधिक अनुकूल तथा अलंकारात्मक है । छायावादी कवियों के ये बिम्ब अधिकतर प्रकृति से जुड़कर ही कविता में आए हैं । स्पर्श बिम्ब में यद्यपि अनुभूति सम्प्रेषण की दृष्टि से अन्य बिम्बों की अपेक्षा भाव सम्प्रेषण की कम गुंजाइश रहती है फिर भी छायावादी कवियों ने स्पर्श बिम्ब का भी कलात्मक प्रयोग किया है । अन्य संवेद बिम्बों की छायावादी कविता में स्थिति इस प्रकार है –

स्पर्श बिम्ब –

> निर्दय उस नायक ने
> निपट निठुराई की
> कि झोंकों की झाड़ियों से
> सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
> मसल दिये गोरे कपोल गोल
> चौंक पड़ी युवती –[1]

यहाँ पर कवि मानवीयकरण अलंकार का सहारा लेता हुआ जुही की कली तथा पवन के प्रणय-व्यापार की ओर संकेत किया है । पवन एवं कली के कार्य-व्यापार को स्पष्ट करने के लिए कवि ने नायक- नायिका के स्पर्श मय प्रणय के द्वारा स्पर्श बिम्ब की योजना की है ।

1– निराला रचनावली, भाग-1 पृ0 3।

घ्राण बिम्ब –

> पुरा सुरभिमय वदन अरुण वे
> नयन भरे आलस अनुराग
> कल कपोल था जहाँ बिछलता
> कल्प वृक्ष का पीत पराग ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रसाद नायिका के काम में लाल हुए वदन के लिए सुगन्धित मदिरा का बिम्ब रखा है जो घ्राण बिम्ब है और इसकी सहायता से कवि ने नायिका के अप्रतिम सौन्दर्य को स्पष्ट करने की कोशिश की है ।

श्रवण बिम्ब –

> नव इन्द्रधनुषों सा चीर
> महावर अंजन ले
> अलि गुंजित मीलित पंकज
> नूपुर रुनझुन ले ।[2]

महादेवी ने इसमें अलि के गुंजार में नायिका के नूपुर की रुनझुन ध्वनि की ओर संकेत कर श्रवण बिम्ब की योजना की है । जहाँ आकाश में इन्द्रधनुषों के रूप में चीर है और पंकज से निकली भौंरों की गुंजार नायिका की नूपुर ध्वनि की तरह झनकारी है ।

आस्वाद बिम्ब –

> पाहुना सी
> शीतल सरोवर पर
> प्रेम सुधा कौमुदी पी

1– प्रसादग्रन्थावली, भाग–1 पृ० 42।
2– यामा महादेवी, पृ० 149

खिल-खिल हँसती हुई
भाग्यवती कुमुदिनी सी
तोरे का अधर मधुपानकर
तुझ से बिताऊँ दिन । [1]

इसमें कवि ने नायिका के मन की इच्छाओं की ओर संकेत करने के लिए आस्वाद बिम्ब का सहारा लिया है । इसमें नायिका प्रेम के सरोवर में प्रेम का पान तथा कुमुदिनी की तरह से नायक के अधरों का मधुपान करती हुई सुख से दिन को बिताने की इच्छा रखती है । इसमें कवि ने इस सम्पूर्ण प्रणय-व्यापार को स्पष्ट करने के लिए नीलनकोरोवर, कौमुदी, कुमुदिनी, मधुपान आदि बिम्बों की योजना की है ।

छायावादोत्तर कवियों ने अन्य विविध बिम्बों की सहायता से जनजीवन से जुड़े सामाजिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों को ही पकड़ने की कोशिश की है । अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना इस दृष्टि से अत्यन्त सफल हैं । इन कवियों ने इन बिम्बों को व्यापक पृष्ठभूमि पर निर्मित किया है जिसके कारण वे छायावादी कवियों की अपेक्षा मानवीय अनुभूतियों को व्यक्त करने में अधिक सक्षम हैं ।

स्पर्श बिम्ब -

रात सलौनी बूँदों वाली
जैसे देह रसाल
यहाँ महक उठती मेंहदी की
वहाँ हाथ हैं लाल
विद्युत दीपन कंगन की चमकार सी
अधर चुम्बन की निर्झरमन्द फुहार सी । [2]

1- परिमल: निराला, पृ0 232

2- धूप के धान: गिरिजाकुमार माथुर, पृ0 102

इसमें कवि ने प्रणय-व्यापार के भावों की अभिव्यक्ति के लिए अनेक बिम्बों का सहारा लिया है -रात रसीली बूँदों वाली, देह-रसाल, मेंहदी की महक, विद्युत दीपन की कंपन, फुहार की सिहरन आदि बिम्बों की योजना की है । अधर रसपान की सिहरन को स्पष्ट करने के लिए वर्षा की फुहार का बिम्ब रखा है जो मन के कोमलतम भावों की अभिव्यक्ति करता है । यह स्पर्श बिम्ब है ।

घ्राण -

> इस प्रकार, सोंधी धरती की सोंधी उसास
> कच्ची मिट्टी का ठण्डापन
> मदमाता सा छलका सावा
> तन मन में साँसों में छाया
> जिसकी सुधि आते ही फूली
> ऐसी ठंडक इन प्रानों में
> ज्यों सुबह ओस भीगे खेतों से आती है
> मीठी हरियाली-खुशबू मन्द हवाओं में ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने धरती की सोंधी खुशबू, हवाओं की खुशबू को अभिव्यक्ति देने के लिए घ्राण बिम्बों की योजना हुई है । जिसका प्रयोग मानवीयकरण के सहारे किया गया है । किसान का परिश्रम ही पूरे खेत में महक रहा है ।

श्रवण -

> होले-होले की पदचाप
> दबी पवन के साथ सुनायी पड़ती
> तन्द्रिल आँखों का अटकाव
> सुलझना फिर-फिर साफ सुनाई पड़ता
> चुप सोयी इस गयी चमेली के नीचे
> नूपुर किसी के मन्द लजीले बज उठते हैं
> उतनी रात गये ।[2]

1- धूप के धान: गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ४३

2- [illegible]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि श्रवण बिम्बों के सहारे प्रेयसी के प्रणय-व्यापार का अनुभव करता है। इसमें पवन का चलना- प्रेयसी के सावधानी पूर्वक रखे जा रहे पदचाप हैं, अलकों के सुलझाने में हो रही ध्वनि, पत्तों के पेड़ के नीचे लाज भरे नूपुर का बजना सुनाई पड़ रहा है। जिससे कवि के मन में एक अनुभूति जगती है और यह अनुभूति श्रवण बिम्बों की सहायता से कविता में आई है।

आस्वाद -

> उसमें जो रस था (मद ?)
> मिट्टी में रिस
> वह धीरे-धीरे चुक गया-
> पर रस की प्यास नहीं चुकी
> इसलिए हृदय में गाला हमने एक कुआँ
> रस से मेरे मन सींच।[1]

इसमें अज्ञेय ने हृदय-रस के आस्वाद को ग्रहण करने की बात की है और इसके लिए उन्होंने कुएँ का बिम्ब रखा है। व्यक्ति का जो घमंड था वह धीरे-धीरे परिस्थितियों ने धरती की मिट्टी की तरह से खींच लिया और उसके सम्पूर्ण अहंकार के नष्ट होने पर अब वह प्रेम-रस को लोगों के बीच बाँट रहा है और उस प्रेम रस के लिए उसने अपने हृदय में कुआँ खोद लिया है।

ऐन्द्रिय अन्य विविध बिम्बों की दृष्टि से छायावादी कविता में (निराला को छोड़कर) वर्ण्य विषय को उभारने की ही कोशिश दिखाई पड़ती है। जबकि निराला ने इन बिम्बों के सहारे समाज एवं व्यक्ति की अनुभूतिगत संवेदनाओं को सम्प्रेषित करने की कोशिश की है। छायावाद के बाद की कविता में इन बिम्बों का कम ही प्रयोग दिखाई पड़ता है और जो प्रयोग है वह तारसप्तक दूसरासप्तक के कवियों में ही अधिकांशतः दिखाई पड़ता है। इन बिम्बों

1- अरी ओ करुणा प्रभामय, अज्ञेय पृ0 29

के सहारे कवियों की आत्मगत तथा वस्तुगत संवेदना एकाकार हो गयी है। बिम्बों के प्रचलन और नवीनता के मोह में कवियों ने बिम्बों का अकुंठ प्रयोग भी किया है जो भावावेगशून्य हैं इस दृष्टि से दूसरा सप्तक में नरेश मेहता की कविताएँ देखी जा सकती है। छायावादी कविता में अन्य प्रायः दूसरे इन्द्रिय बोधों के रूप में परिवर्तित हो जाता है जबकि बाद की कविता में यह प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती।

(ग) मानस बिम्ब -

(1) भाव बिम्ब -

आधुनिक हिन्दी कविता में मानसबिम्बों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। इसका प्रमुख कारण आधुनिक कविता की प्रकृति है। छायावादी कविता स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह थी, इसलिए उसमें सूक्ष्म भावनाओं और अनुभूतियों को ही अभिव्यक्ति करने की प्रवृत्ति मिलती है। कविता द्वारा कवि अपनी भावनाओं, अनुभवों और विचारों को ही अभिव्यक्ति देता है और आधुनिक कविता में यह बिम्बों के सहारे कविता में आता है। छायावादी कविता में भावबिम्बों का अत्यधिक प्रयोग मिलता है। प्रसाद-निराला-पंत-महादेवी आदि सभी कवियों ने प्रकृति के सहारे छोटे-छोटे भाव बिम्बों की रचना करके वर्ण्य वस्तु के अमूर्त भावों को सम्प्रेषित करने की कोशिश मिलती है -

> इन कलियों की कोमल साँस
> किसलय अधरों का हिम-हास
> फिर अलि स्मृति-सी अनजान
> जा सुमनों की मृदुल सुवास
> पिघला देते तन, मन, प्राण।[1]

1- पंत ग्रन्थावली भाग-1 पृ0 202

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि व्यक्ति के अन्दर निहित गुणों की श्रेष्ठता क्षमता एवं प्रभाव का वर्णन किया है इसके लिए उन्होंने कलियों की कोमल तान, किसलय के अधरों के हास, सुमनों की तानें आदि भावबिम्बों का कवि चयन किया है और व्यक्ति की ये कोमल अनुभूतियाँ किसी भी व्यक्ति के तन, मन, प्राण सभी को वश में कर सकती हैं।

भावोत्कर्ष में सहायक सर्वाधिक प्रभावशाली बिम्बों का चयन कवि निराला ने किया है जो जीवन की सूक्ष्म संवेदनाओं को सम्प्रेषित करने में पूर्ण सफल हैं -

> जगे नयनों में स्वप्न
> खोल बहुरंगी पंख विहग-से,
> सो गया सुरा-स्वर
> प्रिया के मौन अधरों में
> क्षुब्ध एक कम्पन-सा निद्रित
> सरोवर में।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि निराला ने व्यक्ति की भविष्य कल्पना के लिए नयन में स्वप्न, बहुरंगी पंख विहग, निद्रित सरोवर आदि भाव बिम्बों की योजना की है। व्यक्ति के मन में उठने वाली तमाम रंगीनियों को कवि ने इन बिम्बों के सहारे उभारा है।

छायावाद के बाद की कविता में भाव बिम्ब जनजीवन से उपजे हैं अर्थात् ये कवि अपनी भोगी हुई अथवा जनसामान्य वर्ग की विषमताओं तथा जीवन में आने वाली कठिनाइयों को पाठक तक सम्प्रेषित करने के लिए भावबिम्बों का उपयोग अपनी कविता में किया है। छायावाद के बाद कवियों में इस दृष्टि से गिरिजाकुमार माथुर, अज्ञेय, नागार्जुन, भारतभूषण अग्रवाल तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना मुख्य हैं -

---

1- निराला रचनावली, भाग-1 पृ0 132.

थकी-पकी तनी-घनी भौंहें
नीली नसों वाले ढाके पपोटे
सवत्न विस्फारित कोए
कोरों में जमा हुआ कीचड़
कुछ नहीं होता
होती बस आँखें ही आँखें ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने थकी-पकी, तनी-घनी भौंहें, नीली नसों, विस्फारित कोए, आँखों के कोने जमा कीचड़-आदि भाव बिम्ब के सहारे एक मध्यम वर्गीय व्यक्ति की जी तोड़ मेहनत के बाद भर पेट भोजन न मिलने का डर, समस्याएँ जीवन का संघर्ष आदि को उभारने की कोशिश की है और वे इस कोशिश में पूर्ण रूप से सफल भी रहे हैं ।

उपर्युक्त भावबिम्बों की सहायता से कवि ने निम्नवर्गीय जीवन की वर्तमान भावद्धपरक स्थिति को उभारने की कोशिश की है ।

भावबिम्बों की दृष्टि से छायावादी कवियों ने अमूर्त संवेदनाओं और अनुभूतियों को रहस्यवादिता के साथ कल्पनाशक्ति के सहारे भावबिम्बों की योजना की है । जो सामान्यतया प्रकृति या मानव के आन्तरिक भावों को ही स्पष्ट करती है जबकि छायावाद के बाद के भावबिम्ब की भोगी हुई संवेदनाओं के सहारे कविता में आया है । ये भावबिम्ब मात्र कल्पनिकविलास नहीं है ।

(11) अनुभव बिम्ब -

कवि समाज से प्राप्त अनुभवों को ही कविता के माध्यम से पाठक तक पहुँचाता है । इन्हीं अनुभवों को सम्प्रेषित करने के लिए आधुनिक हिन्दी कवियों ने अनुभव बिम्बों का सहारा लिया है । क्योंकि सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव उभरी

1- सतरंगे पंखों वाली: नागार्जुन, पृ0 30

को शाब्दिक चित्रों के सहारे दूसरे की अनुभूति का विषय बना देना सहज होता है । छायावादी कवियों ने अपने अनुभवों को मूर्त रूप देने के लिए इन्हीं बिम्बों को सहारा लिया है । प्रसाद और निराला की कविताएँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । प्रसाद में जहाँ कामपरक अनुभवबिम्बों की प्रधानता है वहीं निराला में यथार्थपरक अनुभवबिम्ब अधिक हैं लेकिन कामपरक बिम्ब जहाँ प्रयुक्त हुए हैं वे प्रसाद की अपेक्षा अधिक मांसल हैं –

> चुम्बन चकित चतुर्दिक चंचल
> हेर, फेर मुख, कर बहु सुख छल
> कभी हास, फिर त्रास, साँस बल
> उर सरिता उमगी ।
> प्रेम वचन के उठा नयन नव,
> विधु-चितवन, मन में मधु कलरव,
> मौन पान करती अधरासव
> कण्ठ लगी उरगी ।[1]

कवि ने प्रणयव्यापारगत अनुभवों को सम्प्रेषित करने के लिए सरिता का उमगना, विधु चितवन आदि बिम्बों एवं उनके क्रिया-व्यापार के सहारे नायिका की प्रणय अनुभूति को अभिव्यक्ति दी है । नायिका नायक के कंठ में लगी हुई इन अनुभूतियों का अनुभव कर रही है ।

छायावाद के बाद के कवियों अज्ञेय, नागार्जुन शमशेर भारतभूषण अग्रवाल आदि कवियों अनुभव बिम्बों का उपयोग जीवनसामाजिक यथार्थपरक अनुभवों को सम्प्रेषित करने के लिए किया है । ये अनुभव बिम्ब अधिकतर मानव जीवन के अनुभवों को ही आकार देते हैं । इस दृष्टि से इन कवियों में अज्ञेय की कविता उत्कृष्ट है क्योंकि यायावरी प्रकृति के कारण अज्ञेय के अनुभवों में सबसे अधिक विस्तार है और इसका उपयोग उन्होंने अनुभवबिम्बों को विस्तार देने के लिए किया है –

1- निराला रचनावली, भाग-1, पृ० 206

महाकाल का थप्पड़-सा जा पड़ा
चाँदपुर- नोआखाली- फेनी-चटग्राम-त्रिपुरा में
स्तब्ध रह गया लोक
सुना हिंसा का दैत्य, नशे में धुत्त, रौंद कर चला गया है
जाति-देह की दीमक-खायी पोली मिट्टी ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने स्वतन्त्रता के समय देश भर में अनेक जगहों पर हुए दंगों की विभीषिका को अनुभव बिम्बों के सहारे की कोशिश की है । वह चाँदपुर नोआखाली, फेनी, त्रिपुरा, चटगाँव आदि में हुए दंगों को महाकाल का थप्पड़ कहता है उस दैत्य ने नशे में धुत होकर सारे समाज को रौंद डाला और समाज दीमक खाई हुई पोली मिट्टी की तरह से लगा जो कि उस महाकाल के एक थप्पड़ में ही भरभरा कर बिखर गया । इसके महाकाल का थप्पड़, दैत्य नशे में धुत, दीमक खाई पोली मिट्टी आदि अनुभव बिम्ब है । अज्ञेय के बाद के कवियों में भी अनुभव बिम्बों के सहारे यथार्थपरक समस्याओं को ही अभिव्यक्ति दी है । विजयदेवनारायण साही की कविता –

उठ रहा धुएँ-सा [illegible] खाता शहरों का कोलाहल
जिसकी ऐंठन में डूब रहे मेरे सपने अनमन
हर शाम जहाँ मानव-लहरों से भर जाती सड़कें
हर बूँद अकेली किन्तु अकेला सब का रंग महल ।[2]

अनुभवविध मानस बिम्ब की दृष्टि से छायावादी कवियों ने अपने निजी मनोगत अनुभवों को कल्पना तत्त्व के सहारे आकार दिया है । छायावादी कवि के ये मनोगत अनुभव सामान्यतया कामपरक भावों एवं अनुभवों पर आश्रित हैं और उन्हें ही छायावादी कवि प्रकृति से चित्र लेकर अनुभवबिम्बों की रचना की जबकि छायावाद के बाद के कवियों ने अपने अनुभवगत विस्तार के कारण तथा अपनी कविता की वैचारिक प्रकृति के कारण समाज तथा जनजीवन की यथार्थपरक

1- सदा नीरा, भाग-1 पृ0 222

2- तीसरा सप्तक: [मानवराग]: विजयदेवनारायणसाही, पृ0 179

समस्याओं को अभिव्यक्ति दी है। अनुभवगत विस्तार के कारण इनका संवेदना बिम्ब सम्प्रेषणीयता की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावी है।

§111§ विचार बिम्ब -

आधुनिक हिन्दी कविता अभिव्यक्ति की दृष्टि से किसी न किसी विचारधारा से जुड़ी हुई है। ये कवि कविता के साथ-साथ अपने विचारों को भी सम्प्रेषित करने का प्रयास करते हैं। छायावादी कविता में कवियों का निजी विचार ही दिखाई पड़ता है। ये कवि अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार अपने-अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है। प्रसाद-पंत-महादेवी, बच्चन की कविता में जहाँ मानस बिम्बों की सहायता से एक तरह के भावों को अभिव्यक्ति दी है। निराला ने अपनी कविताओं में अनेक प्रकार के सन्दर्भों को इन बिम्बों की सहायता से उभारा है। निराला की कविता विचारबिम्बों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है -

> तिरती है समीर-सागर पर
> अस्थिर सुख पर दुख की छाया-
> जग के दग्ध हृदय पर
> निर्दय विप्लव की प्लावित माया-
> यह तेरी रण-तरी
> भरी आकांक्षाओं से,
> घन, भेरी-गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
> उर में पृथ्वी के आशाओं से
> नवजीवन की, ऊँचा कर सिर
> ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल![1]

1- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0 123

इस कविता में बादल के बिम्बों के सहारे न केवल निज के भावों को अभिव्यक्ति दी है वरन् विराट मानव समुदाय के सुख-समृद्धि तथा निम्न वर्ग की वैचारिक स्थिति को भी बिम्बों के सहारे उभारा है । इसमें कवि ने समीर सागर, घन भेरी, सुप्त अंकुर उर में पृथ्वी के विप्लव के बादल आदि वैचारिक बिम्बों का प्रयोग किया है । बादल के सहारे कवि ने युद्ध नौका की परिकल्पना की है । इस विप्लव के वीर बादल के मन में अपना लक्ष्य स्पष्ट है उसमें किसी भी प्रकार को दया नहीं है, लेकिन इस बादल को उच्चवर्ग के खिलाफ खड़े देखकर निम्नवर्गीय शोषित लोग उसमें पूरी आशा लगाए उसे देख रहे हैं ।

छायावाद के बाद की कविता में कवियों में विचारों की प्रचुरता है । छायावाद के बाद की कविता शैल्पिक दृष्टि से भी और वैचारिक दृष्टि से भी परम्परा से ही बँध कर चली है । यह वैचारिकता उनकी कविता में इतना प्रभावी है कि इसके कारण कहीं-कहीं कविता का कवित्व-धर्म बाधित हुआ है । यह प्रयोगवादी कविता की दृष्टि से विशेष रूप से देखा जा सकता है । लेकिन इसके बावजूद भी वैचारिक बिम्बों का प्रभावशाली प्रयोग इनकी कविताओं में देखा जा सकता है । शमशेर, नागार्जुन केदारनाथ सिंह तथा भारतभूषण के कवियों की कविताओं में वैचारिक बिम्बों का प्रयोग विशेष रूप से देखा जा सकता है–

य शाम है
कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का
लपक उठीं लहू-भरी दरातियाँ
    – कि आग है ।
गरीब के हृदय
    – टँगे हुए
कि रोटियाँ लिए हुए निशान
लाल लाल
    जा रहे
    कि चल रहा
लहू भरे ग्वालियार के बजार में जलूस

जल रहा
धुआँ-धुआँ
ग्वालियार के मजूर का हृदय ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने खेत में झूम पके हुए अनाज, नह भरी हरातियाँ, रोटियाँ लिए हुए किसान, आदि वैचारिक बिम्बों के सहारे मार्क्सवादी विचारधारा तथा गरीब-शोषित मजदूर एवं किसानों की जागरूकता की ओर संकेत किया है । इसमें ये मजदूर और किसान जो एक जमाने से कुचले जा रहे हैं वे आज अपने अधिकारों एवं हक को लेने के लिए एकजुट एवं प्रतिबद्ध है ।

विचार बिम्बों की दृष्टि से छायावादी कविता में निजी विचारों की अभिव्यक्ति अधिक है और वे बिम्बों के सहारे कविता में आए है । वैसे भी उन कवियों में विचार बिम्बों के स्थान पर भाव बिम्ब तथा अनुभव बिम्ब का प्रयोग अधिक किया है । छायावाद के बाद के कवि वैचारिक दृष्टि से किसी न किसी विचारधारा से जुड़े हुए हैं अतः उन कविताओं में भाव तथा अनुभव बिम्बों के साथ विचारबिम्ब भी काफी मात्रा में प्रयोग हुए हैं । इस विचार बिम्बों के कारण इन कवियों की कविताओं में हृदय-पक्ष कहीं-कहीं बाधित भी हुआ है ।

आधुनिक काव्य-भाषा संरचना की दृष्टि से बिम्ब-विधान के विश्लेषण के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष रूप में प्राप्त होते हैं -

1- भाव बिम्बों की दृष्टि से धर्म बिम्ब छायावादी कविता में पुराने सन्दर्भों को उभारने और सांस्कृतिक बोध के लिए आए हैं वहीं उसके बाद की कविता में धर्म बिम्बों के सहारे वर्तमान सन्दर्भों को उभारने का प्रयास दिखाई पड़ता है ।

2- लोक बिम्ब छायावाद में प्रकृति एवं संस्कृति से ही जुड़कर श्रृंगारिक अनुभूतियों और मनोगत भावों को व्यक्त किया है जबकि उसके बाद की कविता में लोकबिम्ब जीवन के सभी पक्षों को लेकर चला है और उसके सहारे जीवन की विसंगतियों को उभारने की कोशिश दिखाई पड़ती है । यही स्थिति कमोबेश ऐतिहासिक आद्य प्रतीक बिम्बों की है ।

1- कह कविताएं शमशेरबहादुर सिंह पृ032-34

3- छायावादी कविता में अंकवि प्रकृति से जुड़कर ऐन्द्रिय दृश्य-व्यापार बिम्बों के सहारे रहस्य एवं कल्पना को उभारने की कोशिश की है जबकि उसके बाद की कविता में दृश्य-व्यापार बिम्बों के सहारे प्रकृति के स्वाभाविक क्रिया-व्यापार और उसमें निहित सन्दर्भों को रेखांकित करने की कोशिश है। इस कारण छायावाद के बाद की कविता में दृश्य व्यापार बिम्ब कहीं विशुद्ध कल्पानिक रूप से तो कहीं गम्भीर विचारों को सम्प्रेषित करता है।

4- छायावादी कविता में अन्य रुचिर बिम्बों के सहारे प्रकृति के ही काल्पनिक रूप को स्पष्ट करने की कोशिश हुई है जबकि उसके बाद की कविता अन्य रुचिर बिम्बों के सहारे जनजीवन से जुड़े सामाजिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भों को ही पकड़ने की कोशिश दिखाई पड़ती है इस कारण से छायावाद की अपेक्षा छायावाद के बाद की कविता में इन प्रकार के बिम्बों का प्रयोग अधिक है।

5- छायावादी कवि भावबिम्बों के सहारे अपनी सूक्ष्म रहस्यमयी प्रकृतिगत अनुभूतियों को अभिव्यक्ति की है और ये बिम्ब मात्रा में अधिक है जबकि उसके बाद के कवि अपनी भोगी हुई अथवा जनसाधारण वर्ग की विषमताओं और संघर्षों को अभिव्यक्ति दी है।-

6- छायावादी कवियों ने अनुभव बिम्बों का उपयोग कामपरक अनुभवों के लिए ही अधिकतर किया है लेकिन निराला ने इसके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के अनुभवों को कविता में स्थान दिया है। जबकि छायावाद के बाद की कविता में कवियों ने जीवन्त सामाजिक यथार्थपरक अनुभवों को अनुभवबिम्बों के सहारे कविता में स्थान दिया है।

7- विचार बिम्ब की दृष्टि से छायावादी कवियों ने अपने निजी सोच को ही व्यक्त किया है जबकि छायावाद के बाद के कवि वैचारिक दृष्टि से किसी न किसी विचारधारा से जुड़े होने के कारण उस विचारधारा के सिद्धान्तों को कविता में इस बिम्ब के सहारे अभिव्यक्ति दी है।

काल प्रवाह में जब मूर्त घटना अमूर्त बन जाती है तो उसे मिथ कहा जाता है । आधुनिक हिन्दी कविता में मिथक शैल्पिक संरचना का एक प्रभावशाली अंग होकर उभरा है । इसमें काल प्रवाह के क्रम में मूर्त घटना जब अपना स्थूल सन्दर्भ छोड़कर अमूर्त सन्दर्भ को ग्रहण कर लेती है तो वह कविता में मिथ के दायरे में आ जाती है । मिथक की सबसे प्रमुख विशेषता है उसका अर्थगर्भा स्वरूप अर्थात् एक ही मिथ एक साथ अनेक अर्थगर्भार्थों का संकेत करता है । इसी कारण से आधुनिक कविता की भाषिक संरचना प्रकृति को देखते हुए इसकी उपयोगिता लगातार बढ़ती जा रही है । मिथकीय पात्रों, चरित्रों की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि ये पात्र एवं चरित्र देशकाल, परिस्थिति के अनुसार कभी भी पुराने नहीं पड़ते अर्थात् मैं मिथक प्रतीक बन होकर उस विशिष्ट घटना को प्रत्येक युग में प्रासंगिक बनाये रखते हैं । मिथकों की कालातीत प्रासंगिकता का प्रमुख कारण यह है कि मिथक हमारी आदिम प्रकृतस्थ मनोवृत्तियों को व्यक्त करते हैं । साथ ही हमारी पुरानी संस्कृति तथा अधुनातम प्रवृत्तियों को अपने से जोड़े रखते हैं। आधुनिक हिन्दी कवियों ने सामान्यतः प्राचीन मूल्यों के सन्दर्भ में आधुनिक समाज एवं जीवन की विसंगतियों को उभारने की कोशिश की है और वे कवि सफल भी रहे हैं । आधुनिक हिन्दी कविता में मिथक की सम्पूर्ण प्रयोग-पद्धति को उसके भेदों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है -

(क) देव सम्बन्धी मिथक -

छायावादी कवियों में लगभग सभी कवियों ने देवसम्बन्धी मिथकों का प्रयोग किया है । इन कवियों द्वारा कविता में रखे गए ये प्रतीक सामान्यतः मनोगत भावों के स्पष्ट करने के लिए रखे गए हैं, जो किसी विशिष्ट सन्दर्भों से जुड़कर अर्थ नहीं देते । कामायनी में प्रसाद ने देवसम्बन्धी मिथकों-श्रद्धा, मनु, इड़ा, आदि को ग्रहण किया है और अपने मनोगत भावों को अभिव्यक्ति दी है । मनु-मन, इड़ा

बुद्धि का तथा श्रद्धा-विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति के मिथकीय प्रतीक हैं -

> श्रद्धा का अवलम्ब मिला फिर
> कृतज्ञता से हृदय भरे,
> मनु उठ बैठे गद्गद होकर
> बोले कुछ अनुराग भरे ।[1]

निराला की अधिकांश प्रसिद्ध कविताओं में मिथकों का प्रचुर प्रयोग हुआ है । अथवा यह कहें कि वह मिथकीय आधार पर निर्मित ही हैं तो अनुचित नहीं । उदाहरण के रूप में राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता आदि लम्बी कविताओं को देखा जा सकता है । निराला ने इन मिथकीय प्रयोगों को उपयोग अधिकांशतः आधुनिक स्थितियों को उभारने के लिए ही किया है ।

छायावाद के बाद की कविता में देवसम्बन्धी मिथकों का प्रयोग प्राचीन सन्दर्भों में वर्तमान जीवन की बदल रही त्रासदपरक स्थितियों को स्पष्ट करने के लिए हुआ है । इस दृष्टि से अज्ञेय की कविताएँ उत्कृष्ट हैं । उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में देवसम्बन्धी मिथकों के सहारे अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति की है -

> फैली धुन्ध में बाँध दिए हुए हैं अखिल संस्कृति
> नियम में शिव के
> यही तो नाम ।[2]

यहाँ शिव जो सम्पूर्ण सृष्टि एवं संस्कृतियों के नियामक हैं स्वयं आज की परिस्थितियों में नियम से बँध कर रह गए हैं और उनका देवत्व आज की विषम परिस्थितियों में खो गया है । भारतभूषण अग्रवाल की एक कविता-

---

1- प्रसाद ग्रन्थावली भाग-1 [निर्वेद] पृ0 628
2- बावरा अहेरी [वह नाम] :अज्ञेय पृ0 44

कल रात मैंने एक स्वप्न देखा
मैंने देखा कि मेनका अस्पताल में नर्स हो गई है
और विश्वामित्र ट्यूशन पढ़ा रहे हैं
उर्वशी ने डांस स्कूल खोल लिया है
नारद गिटार सिखा रहे हैं
गणेश बिस्कुट खा रहे हैं
और
बृहस्पति अंग्रेजी में अनुवाद करा रहे हैं ।[1]

यहाँ मेनका, विश्वामित्र, उर्वशी और नारद आदि पौराणिक मिथकों के साथ गणेश एवं बृहस्पति के देवसम्बन्धी मिथक हैं । आज गणेश एवं बृहस्पति के विद्या-बुद्धि आदि की सार्थकता बदल कर भिन्न अर्थ ग्रहण कर लिया है ।

अवतार सम्बन्धी मिथक -

देवसम्बन्धी मिथकों की तरह छायावादी कवियों ने अवतार सम्बन्धी मिथकों का प्रयोग भी मनोभावों एवं अनुभूतियों को ही स्पष्ट करने के लिए किया है । लेकिन इस तरह प्रयोग अत्यन्त कम ही हुए हैं । लेकिन छायावाद के बाद की कविता में अवतार सम्बन्धी मिथकों के सहारे सामान्यतः लोक अनुभूतियों एवं अन्य मानवीयमूल्यों को स्पष्ट करने की कोशिश दिखाई पड़ती है -

> वामन ने तीन डग में त्रिलोक नाप लिया था,
> उसी-पूरे वामन की एक ही डकार से
> मच गया कहीं ब्रह्माण्ड में हाहाकार ।[2]

1- ओ अप्रस्तुत मनः भारतभूषण अग्रवाल पृ0 102

2- क्योंकि मैं उसे जानता हूँः अज्ञेय पृ0 73

जिस विष्णु के वामन अवतारग्रहण कर तीन डगों में त्रिलोक को नाप लेने पर ब्रह्माण्ड जितना नहीं घबड़ाया वह ब्रह्माण्ड आज एक ब्राह्मण के भरपेट भोजन से डरा हुआ है । यह आधुनिक परिस्थितियों में एक कटु व्यंग्य है । इस तरह शमशेर बहादुर सिंह की कविता-

> नींद के पहाड़ों के पार सोने का जागरण है, मौत का
> एक रंगीन हरण है, रात के पहाड़ों के पार
> राम यह पर्णकुटी छोड़ो, उधर चलो ।[1]

राम जिनका अवतार ही इसलिए हुआ था कि बुराइयों को नष्ट करके अच्छाईयों को स्थापित करें वही राम जो शक्ति वीरता, आदि के प्रतीक हैं आज वही राम कायर हो गए हैं और बुराइयों एवं मौत के भय से पर्णकुटी छोड़कर जाने को तत्पर हैं ।

(ग) कथा सम्बन्धी मिथक -

छायावादी कवियों में निराला तथा दिनकर ने कथा सम्बन्धी मिथक को अपनी कविताओं में स्थान दिया है । अन्य छायावादी कवियों ने अपनी कविताओं का वर्ण्य सूक्ष्म संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए कथाओं को ग्रहण न करने के कारण उनकी कविताओं में कथा सम्बन्धी मिथकों का प्रयोग नहीं है । दिनकर तथा निराला ने इन कथा सम्बन्धी मिथकों के सहारे वर्ण्य विषय की समस्त सन्दर्भों को गहरे स्तर तक उभारने की कोशिश दिखाई पड़ती है । उदाहरण के रूप में उनकी भिक्षुक-कविता देखी जा सकती है -

> ठहरो अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींचूँगा
> अभिमन्यु-जैसे हो सकोगे तुम
> तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा ।"[2]

1- चुका भी हूँ नहीं मैं: शमशेर बहादुर सिंह पृ0 59

2- निराला रचनावली, भाग-1 पृ0 64

यहाँ अभिमन्यु के द्वारा शिक्षक की संवेदनाओं को उजागर किया है, जब वह अभिमन्यु बहुत वीर और संघर्षशील, चक्रव्यूह को तोड़ने में निपुण हो जायेगा तभी वह जन्म पायेगा।

छायावाद के बाद के कवियों में अज्ञेय गिरिजाकुमार माथुर, नागार्जुन, आदि सभी कवियों ने तत्कालीन सन्दर्भों को उभारने के लिए कथा सम्बन्धी बिम्बों को ग्रहण किया है -

> वही है मेघदूत नए जमाने का
> वही है हंस
> दमयंती निकल को पास लाने का
> तीनों के नयन में अनिरुद्ध
> अपना कुछ उषा का है
> कमल की पंखुरी पर लिखा
> गीत शकुंतला का है
> या शायद बना काँटा किसी दिल का
> कि छूते ही खटकता है।[1]

कथा सम्बन्धी बिम्बों का छायावादी कविता में निराला एवं दिनकर को छोड़कर बहुत कम प्रयोग हुआ है। इन कवियों ने इन कथा बिम्बीय प्रतीकों के सहारे पक्ष एवं अनुभूति को और अधिक स्पष्ट तथा सजीव बनाने की कोशिश की है जबकि छायावाद के बाद के कवि अपनी अनुभूतियों एवं जीवन के विविध पक्षों को इनके सहारे स्पष्ट किया है।

1- शिलापंख चमकीले: गिरिजाकुमार माथुर, पृ0 26

(घ) इतिहासधर्मी चरित्र मिथक -

आधुनिक हिन्दी कविता में इतिहासधर्मी चरित्र मिथकों का प्रयोग अधिकतर छायावादोत्तर कविताओं में ही दिखाई पड़ता है । अज्ञेय की कविताओं में इतिहासधर्मी चरित्र मिथक का प्रयोग अत्यन्त व्यापक रूप में हुआ और इसके लिए उन्होंने सभी जगह से मिथकीय चरित्रों को ग्रहण किया है -

> शांत हो,
> काल को भी समय थोड़ा चाहिए
> जो घड़े कच्चे अगर तुम गए मँझधार
> तेरी सोहनी को चन्द्रभागा की उफनती छातियों में
> उन्हीं में से उसी का जल अनन्तर तू पी सकेगा ।[1]

सोहनी-महिवाल पंजाब का लौकिक आख्यान है । सोहनी घड़ों की नौका बनाकर महिवाल से मिलने जाती है, घड़े कच्चे होने के कारण बीच नदी में गल जाते हैं और सोहनी नदी में डूब जाती है । इस कथा मिथ का प्रयोग अज्ञेय ने समय की प्रबलता, आदर्श की अपेक्षा, यथार्थ की सत्यता को वर्णित करने के लिए किया है । जिस चन्द्रभागा में सोहनी डूब गई वह महिवाल के लिए करुण भाव का उद्दीपक है जिसे देखकर उसे दुःखी होना चाहिए लेकिन आज महिवाल उसकी सोहनी जिसमें डूबी है उसी का पानी पी रहा है । इसके सहारे कवि ने आज के प्रेम के छिछलेपन की ओर संकेत किया है । लगभग सभी नये कवियों ने ऐतिहासिक चरित्र मिथकों के सहारे बदलते जीवनमूल्यों की ओर संकेत करने की कोशिश की है-

> जहाँ रूसो की
> समता बन्धुत्व और स्वतन्त्रतावाली
> एक छोटी सी दुकान थी
> जिसे हटा दिया गया था
> लेकिन जिसकी ठंडी दीवार पर

1- अज्ञेय ।

अब भी गरम धाय लिखा रह गया था,
जहाँ मार्क्स का
एक छोटा सा अखाड़ा था,
जिसमें क्रांति का सबक रट लेने के बाद भी
अपनी ही हाथों में तलवार थामकर
अपनी ही लाश को कुला लेने का
यह शीघन जरूरी नहीं था ।[1]

यहाँ मार्क्स एवं रूसों के वैचारिक मूल्यों की सार्थकता व्यक्तियों द्वारा केवल अपने हितों को फायदा पहुँचाने तक ही निहित रह गई है । आज व्यक्ति केवल दिखावे के लिए ही इनके अनुयायी बनते हैं क्योंकि उनके कार्य उन मूल्यवादी सिद्धान्तों पर नहीं रहते हैं जिनकी स्थापना इन लोगों ने की है ।

{3} धारणा प्रतीक उपकरणात्मक एवं अनुभवप्रतीक बिम्ब

छायावादी कवियों में निराला एवं प्रसाद ने अनुभव की अर्थवत्ता को उसी रूप में सम्प्रेषित करने के लिए धारणा प्रतीक बिम्बों का उपयोग किया है । इन कवियों ने इस बिम्ब के द्वारा प्रेम ज्ञान,भक्ति आदि से सम्बन्धित अनुभवों को कविता में प्रस्तुत किया है । निराला की बादलराग, पंचवटी प्रसंग आदि कविताएँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं ।

उसके मधु-सुहाग का दर्पण
जिसमें देखा था उसने
बस एक बार बिम्बित अपना जीवन-धन
अबल हाथों का एक सहारा-
लक्ष्य जीवन का प्यारा-वह ध्रुवतारा-
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा ।[2]

1- काठ की घंटियाँ: सर्वेश्वरदयालसक्सेना पृ० 140
2- निराला रचनावली भाग-1 {विधवा} पृ० 60

प्रकाश यहाँ केवल प्रिय का ही प्रतीक नहीं है वरन् वह निष्ठा के आशा और विश्वास को भी अभिव्यक्ति देता है ।

छायावाद के बाद की कविता में धारणा प्रतीक मिथकों का वर्तमान जीवन की विसंगतियों को उभारने के लिए शैल्पिक संरचना की दृष्टि से बड़ा कलात्मक प्रयोग मिलता है । काल प्रवाह के किसी भी देवता, चरित्र, इतिहास पुरुष आदि के सम्बन्ध में एक रूढ़ धारणाएं होती हैं । कवि इन्हीं अवधारणाओं का आधुनिक जीवन की विसंगतियों के सन्दर्भ में पुर्नव्याख्या करता है । कविता में यह पुनर्व्याख्या पाठक तक अनुभव सम्प्रेषण की दृष्टि से अत्यन्त प्रभावी है-

> क्रौंच बैठा हो कभी वल्मीक पर
> तो मत समझ कर वह अनुष्टुप् बाँचता है,
> संगिनी के स्मरण में,
> जान ले वह दीमकों की टोह में है ।[1]

क्रौंच की प्रिया विरह कातर वाणी से प्रभावित होकर बाल्मीकि ने श्लोक रचा था, जो अनुष्टुप छन्द था । आज यदि वह बाल्मीकि के पास दिखाई दे तो यह मत समझो कि वह उनसे मूल्यों की शिक्षा ले रहा है बल्कि वह अपनी जीविका को खोज रहा है ।

धारणा प्रतीक मिथ आदि की दृष्टि से छायावादी कविता में अपने वर्ण्य विषय को ही उभारने की कोशिश दिखाई पड़ती है जबकि छायावाद के बाद के कवियों में ये प्रतीक मिथक अपने युगीन प्रतिबद्ध धारणाओं को छोड़कर आधुनिक विषमताओं को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।

1- सदानीरा, भाग-1: अज्ञेय पृ0 228

मिथक की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता के विश्लेषण के बाद निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं -

1- आधुनिक हिन्दी कविता में मिथकों के सहारे आदिम मनोवृत्तियों को वर्तमान सन्दर्भ में स्पष्ट करने की कोशिश दिखाई पड़ती है ।

2- छायावादी कविता में निराला तथा दिनकर ने ही सामान्यतः मिथकों का उपयोग अपनी कविता को प्रभावी बनाने के लिए किया है जबकि छायावाद के बाद की कविता में मिथक शैल्पिक संरचना का एक प्रभावशाली अंग है ।

3- मिथक की सहायता से छायावादी कवि वर्ण्य विषय को तथा अपने अनुभवों को ही सम्प्रेषित करने की कोशिश की है जबकि छायावाद के बाद के कवियों ने मिथकों के सहारे आधुनिक समाज की विसंगतियों को उभारने की कोशिश की है ।

4- छायावादी कविता में इतिहासधर्मी वर्तमान चरित्र मिथक मात्र वर्णन की दृष्टि से ही कवियों ने रखा है जबकि छायावाद के बाद की कविता में ये सामाजिक राजनैतिक विसंगतियों को स्पष्ट किया है ।

5- मिथकों का सबसे कलात्मक प्रयोग आधुनिक कवियों ने धारणा प्रतीक मिथकों का किया है । इन धारणाओं की वर्तमान जीवन के सन्दर्भ में पुर्नव्याख्या की है ।

6- छायावादी कविता में मिथक मात्र भारतीय सन्दर्भ से ही ग्रहण किए गए हैं जबकि छायावाद के बाद की कविता में सभी धर्मों एवं राष्ट्रों के मिथकीय सन्दर्भों को ग्रहण किया है ।

फैंटसी

फैंटसी बिम्ब प्रतीक मिथ,आदि को अतर्कानुमोदित ढंग से कविता में उपस्थित करती है । आधुनिक हिन्दी कविता के साथ फैंटसी काव्यभाषा की शैल्पिक संरचना का अंग बनकर कविता में आयी । फैंटसी में कवि प्रतीकों एवं बिम्बों को मनमाने ढंग से बिना किसी तादृश्य सम्बन्ध के कविता में लाकर मानसिक सन्दर्भों एवं अवचेतन अनुभूतियों को कविता में स्थान देता है । आधुनिक हिन्दी कविता में फैंटसी का सबसे सार्थक एवं प्रभावशाली उपयोग वहाँ दिखाई पड़ता है जहाँ व्यक्ति की कुंठा या विवशता व्यक्त होती है । इन कविताओं में कुंठित व्यक्ति जब आत्मकेन्द्रित होता है तो वह प्रायः स्वप्नों,अतिकल्पनाओं में जीने लगता है और ऐसी स्थिति फैंटसी के सहारे ही अभिव्यक्ति पाती है । मनोविकृतियों पर किए गए नये अनुसंधानों के कारण मनोगत स्वप्नों और अति कल्पनाओं को पहचानने में विशेष सहायता मिली है । नयी कविता में स्वप्न प्रतीकों की एवं फैंटसीय बिम्बात्मक प्रतीकों की प्रचुरता का यही कारण है । नये कवियों ने शैल्पिक संरचना के इस अंग के सहारे जीवन के जटिल मानसिक अनुभवों, व्यक्तिवादी अस्तित्व चेतना, व्यक्ति की जीजीविषा,सत्य के नये सन्दर्भों को कविता में उभारने की सफल कोशिश की है । इसके पूर्व इस तरह के अनुभव समर्थ शैल्पिक संरचना के अभाव में आधे-अधूरे ढंग से व्यक्त होते रहे हैं । फैंटसी के प्रयोग में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसका प्रयोग अत्यन्त अमूर्त हो जाता है क्योंकि इसमें बिम्बों एवं प्रतीकों की तर्केतर ढंग से इतनी जल्दी-जल्दी योजना की जाती है कि वह सम्प्रेषण के सामान्य रूप से हट जाता है । आधुनिक हिन्दी कविता में फैंटसी का प्रयोग सामान्यतः आन्तरिक अनुभव, अतीतानुचिन्तन, स्वप्न लोक में विचरण, बीती हुई घटनाओं का विश्लेषण, आगामी स्थितियों की पूर्वकल्पना आदि स्थितियों के लिए होता है ।

छायावादी कविता में फैंटसी की दृष्टि से प्रयोग बहुत कम दिखाई पड़ता है । इन कवियों ने मानसिक जटिलताओं और अनुभूतियों को प्रकृति के

सहारे व्यक्त करते-करते कहीं-कहीं फैंटसी का उपयोग किया है । जहाँ उनका मूल उद्देश्य भावों की अतिशयता दिखाना है – प्रसाद की कविता–

(1) चंचला स्नान कर आवे
चंद्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा
आलोक मधुर थी ऐसी ।[1]

(2) परिरम्भ कुम्भ की मदिरा
निश्वास मलय के झोंके
मुख चन्द्र चाँदनी जल से
मैं उठता था मुँह धोके ।[2]

यहाँ कवि चंचला के स्नान के लिए चन्द्रिका पर्व की बिम्बात्मक योजना तथा चाँदनी जल, की योजना करके फैंटसी को रखा है । निराला की कविता में फैंटसी द्वारा बीती हुई स्मृतियों को उभारने एवं उसके आवेगों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । इस दृष्टि से उनकी "स्मृति-चुम्बन" कविता देखी जा सकती है –

सोने के निर्झर
प्रति-चरण चूम-चूम तट
मिलते थे सरिता से
चुम्बन का अन्त ज्यों
देते सर्वस्व निज
छोड़ क्षुद्र सीमा-बन्ध
पलकों के नीड़ से
सोने के नभ में
उड़ जाते थे नयन पे
चूमकर असीम को
लौटते आनन्द भर ।[3]

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग।-पृ0310 । 2-प्रसाद ग्रन्थावली, भाग ।पृ0311।
3- निराला रचनावली, भाग-। पृ0 183

पैंटली की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण परिवर्तन छायावाद के बाद अज्ञेय की कविताओं से दिखाई देने लगता है । अज्ञेय ने पैंटली के सहारे व्यक्ति के मानसिक उद्वेगों, आन्तरिक मानसिक संघर्षों, उसकी जिजीविषा शक्ति को उभारने की कोशिश की है । इसके लिए उन्होंने मछली के बिम्बों का आश्रय अधिक लिया है । अज्ञेय ने पैंटली की सहायता से आधुनिक जीवन के विभिन्न सन्दर्भों को विस्तार देने की कोशिश की है -

तिरती नाव नदी में,
धूल भरे पथ पर असाढ़ की भभक, झील में साथ तैरना
हँसी अकारण खड़े महा-वट की छाया में
वदन घाम से लाल, स्वेद से जमी अलक-लट
चीड़ों का वनगन्ध-साथ झुकी चली दो घोड़े
गीली हवा नदी की, फूले नथुने भर्राई सीटी स्टीमर की,
खँडहर ग्रथित अँगुलियाँ, बाँसे का मधु
डाकिये के पैरों की चाँप
अधजली बबूल की धूल मिली-सी गन्ध
झरा रेशम शिरीष का कविता के पद
मसजिद के गुम्बद के पीछे सूर्य डूबता धीरे-धीरे
झरने के चमकीले पत्थर, मोर-मोरनी घुँघरू
सन्थाली झूमर का लम्बा करुण भरा आलाप,
रेल की आह की तरह धीरे-धीरे खिंचना लहरें ।[1]

नागार्जुन की कविताओं में आगामी स्थितियों के विश्लेषण क्रम में पैंटली का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है । मनुष्य का यान्त्रिक और चेतनाशून्य यथार्थवाद वर्तमान जीवन से संगति बैठा चुका है । ऐसी स्थिति में जब व्यक्ति को अपने भविष्य या अपने टूटने की आशंका सताती है । तो वह बेचैनी से ग्रस्त हो उठता है । ऐसी स्थिति में विघटित मूल्यों और स्वत्वहीन व्यक्तित्वों के इस युग में उसका आक्रोश कई व्यंग्यार्थों की सृष्टि एक साथ करता है । नये मूल्यों एवं

1- सदानीरा: भाग-1 पृ० 256 (हरी घास पर क्षणभर)

सन्दर्भों का न विकसित हो पाना भी उसके मनुष्य जाति के प्रति भविष्य की आशंका का एक प्रमुख कारण है –

> बारूदी गोलों से दहके अमराइयाँ
> झुलस-झुलस राख हों ताम्रचूड़ आम्रपल्लव
> नेणून ठूँठ हों, शालवन
> खा-खाकर आँच पके महुआ की रग रग
> दूधिया झाग बहे, बह-बहकर जमता जाय
> कैसा लगेगा तुम्हें [1]

आधुनिक हिन्दी कविता में मुक्तिबोध की कविताओं का मूल तत्व फैंटसी है। ये फैंटसी के सहारे अपनी कविता में मन की निगूढ़ वृत्तियों का जीवन की निगूढ़ यथार्थपरक समस्याओं, इच्छित विरासतों और इच्छित जीवन स्थितियों को बार-बार उभार कर पाठक तक सम्प्रेषित करने की कोशिश की है। इन मानसिक निगूढ़ तत्वों को उभारने के लिए जिन काल्पनिक बिम्बों एवं प्रतीकों का आश्रय ग्रहण करते हैं वे जनजीवन एवं समाज से ही जुड़कर आए हैं –

> मेरे हृदय का चित्र है।
> जो हृदय-सागर युगों से लहरता,
> आनन्द से व्याकुल चला आता
> कि नीला मौन क्षण-क्षण गूँजता है,
> उस जलधि की श्याम लहरों पर जुड़ा आता
> सघनतम श्वेत स्वर्गिक फेन, चंचल फेन।
> जिसको नित लगाने निजमुखों पर स्वप्न की शुद्ध मूर्तियों सी
> अप्सराएँ अरुण-प्रातः
> शुद्ध हवा की लहर पर से सिन्धु पर रख अरुण तलुए
> उतर आतीं, कान्तिमय नव हास लेकर। [2]

1– सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन पृ0 57

2– तारसप्तक : मुक्तिबोध (आत्मा के मित्र मेरे) पृ0 44

मुक्तिबोध की कविता में आत्मसंघर्ष की स्थिति बार-बार उभर कर पाठक के सामने आई है किन्तु अन्तर्विरोध भी इतना तीव्र है कि व्यक्ति विभाजन की समस्या उठ खड़ी होती है । इसलिए मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष एक विभाजित व्यक्ति का आत्मसंघर्ष दिखाई पड़ता है । इसीलिए उनकी कविताओं में समाज से विद्रोह-करते करते कवि स्वयं से विद्रोह कर बैठता है । कवि के मन में अविश्वास से उपजा डर और पराजय का भय अत्यन्त तीव्र है, जिसका प्रमुख कारण अकेलेपन की भावना है -

> वह छिपा प्रत्येक उर में,
> प्रति हृदय के कल्मषों के बाद
> जैसे बादलों के बाद भी है शून्य नीलाकाश ।
> उसमें भागता है एक तारा,
> जो कि अपने ही प्रगति-पथ का सहारा,
> जो कि अपना ही स्वयं बन चला चित्र
> भीतिहीन विरागपुत्र ।
> इसीलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास करना चाहता हूँ ।[1]

मुक्तिबोध स्वप्न की स्थिति का निर्माण करके सामाजिक तथा राजनैतिक विरोधों को उजागर करते हैं । उनकी कविता में यह विरोध अन्तर्बाह्यविरोध परिस्थितिगत विरोध एवं आत्मगतविरोध के सहारे क्रमशः आते आते पूरी कविता पर हावी हो जाता है । मुक्तिबोध का आत्मग्रस्त, आत्मसम्मोहितमन जब कष्ट पाता है तब उनकी कविता में गहरी वेदना के दर्शन होते हैं और मन क्षुब्ध होकर स्वप्न में विचरण करने लगता है वह यहाँ-वहाँ भटकते हुए सन्दर्भों को उभारने के लिए अनेक बिम्बावलियों को लाकर कविता में रखता है । स्वप्न उनके मन की सहज वृत्ति है यथार्थ को स्वप्नचित्रों में बदले बिना मानों उनकी कविता पूरी नहीं होती -

---

1- तारसप्तक: मुक्तिबोध (दूर तारा) पृ० 49

देख-जलते स्पन्दनों में क्या उलझता ही गया है,
जो नयी चिनगारियाँ
नव स्वप्न का आलोक ले
उत्पन्न होती जा रहीं हैं,
उन सघनतम तीव्र कोमल वेदना की
चिनगारियों में
जो छिपे हैं स्वप्न रक्तिम
देख लो जी-भर उन्हें तू ।
उस असीम विकल रस की पी स्पर्शमी ।[1]

इस तरह मुक्तिबोध ने फैंटसी के सहारे आत्मसंघर्ष को रखने की कोशिश की है जो प्रत्येक निम्नवर्ग के लोगों का संघर्ष है ।

आधुनिक हिन्दी कविता की फैंटसी की दृष्टि से अध्ययन के बाद निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित निष्कर्षों को रख सकते हैं -

§1§ छायावादी कविता में फैंटसी के सहारे प्रकृति के चमत्कृत स्वरूप को रखने की कोशिश दिखाई पड़ती है तथा बिम्बावलियाँ अधिकतर प्रकृति के उपादानों से ली गई है । छायावादी कविता में प्रसाद और निराला में इस तरह के प्रयोग दिखाई देते हैं, वह भी सीमित परिमाण में ।

§2§ छायावाद के बाद की कविता में फैंटसी का कुछ सीमित रूप है दिखाई पड़ता है । अज्ञेय, नागार्जुन गिरिजाकुमार माथुर: शमशेर आदि कवियों ने इसके सहारे अपने आंतरिक अनुभवों एवं आगामी स्थितियों के विश्लेषण का प्रयास किया है ।

3- छायावाद के बाद के कवियों में मुक्तिबोध ने फैंटसी का अत्यन्त समर्थ एवं कलात्मक प्रयोग किया है । उन्होंने इसके सहारे जीवन की समस्याओं, निगूढ आन्तरिक मनोभावों, आत्मसंघर्ष एवं व्यक्ति के खंडित होते हुए व्यक्तित्व को उभारने का सफल प्रयास किया है । उनकी फैंटसी की प्रमुख विशेषता अतीतानुचिन्तन तथा राजनीतिक एवं सामाजिक विषमताओं को व्यक्त करने के लिए स्वप्न लोक में विचरण पर विशेष जोर है ।

1- [illegible] पृ0 50

पंचम अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता की आन्तरिक संरचना

आन्तरिक संरचना

भावोत्कर्ष तथा अनुभूतिगत सम्प्रेषण की दृष्टि से कविता के निर्माण में आन्तरिक संरचना के अवयवों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सृजन के क्षणों में कवि मात्र व्याकरणिक एवं शैल्पिक संरचना के तत्वों का भी कलात्मक प्रयोग कविता में करता है। आन्तरिक संरचना के समर्थक विद्वान् इस संरचना की कविता के के निर्माण में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका मानते हैं। इनका मानना है कि कविता में प्रत्येक शब्द, वाक्य एवं विराम चिह्नादि सभी कुछ इसी आन्तरिक संरचना के अनुरूप ही रखे जाते हैं। इसका उचित प्रयोग कविता की उत्कृष्टता का कारण होता है। कविता में यह आन्तरिक संरचना शब्द एवं अर्थ के बीच आन्तरिक संतुलन का कार्य करती है। शब्द एवं अर्थ तथा भाव एवं अनुभूति के बीच आंतरिक सन्तुलन के अतिरिक्त आन्तरिक भाषिक संरचना के अंगों की जो सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका है वह कविता में निहित कवि के भावों को सम्प्रेषण के रूप में है।कविता का यह अगोचर तत्त्व है अर्थात् ऊपर से इसकी स्थिति का पता नहीं चलता। इस तरह व्याकरणिक संरचना कविता की स्थूल स्थिति है, शैल्पिक संरचना सूक्ष्म स्थिति तथा आन्तरिक संरचना कविता की सूक्ष्मतम स्थिति है। इसकी स्थिति का ज्ञान उच्चारण अवस्था में ही होता है। इस काव्यभाषा संरचना के निम्न-लिखित अंग हैं -

(1) लय :- आन्तरिक संरचना का मुख्य तत्त्व लय है। इसका उद्देश्य कविता को इन्द्रियबोध्य बनाना है, जिससे पाठक कवि की अनुभूतियों एवं भावनाओं को सहजतापूर्वक ग्रहण कर सके। लय ही कविता की कलात्मकता का मूलाधार है। तथा यह कविता का अनिवार्य धर्म भी है। आधुनिक हिन्दी कविता में लय के सामान्यत: दो भेद हैं -

(क) पारम्परिक लय

(ख) अर्थ लय ।

परम्परित लय के भी दो उपभेद हैं -

§अ§ शास्त्रीय लय § नियमबद्ध लय §

§ब§ मुक्त लय

§2§ बिडम्बना -
------------- बिडम्बना में शब्दों का ऐसा कौतुकपरक संयोजन होता है जिससे कविता में शब्द एवं सन्दर्भ की दूरी दिखाई पड़ने लगती है। इसमें निजी सन्दर्भ के द्वारा शब्दों की दूरी समाप्त करने पर बल दिया जाता है।

§3§ विरोधाभास :-
--------------- इसका अर्थ विरोध न होकर विरोध की प्रतीति होना है। नयी समीक्षा में इसके अर्थ को विस्तार दे दिया गया है। अब यह अलंकार से बाहर निकलकर "बिवलन" के सम्पूर्ण क्षेत्र को अपने में समेट लिया है। ब्रुक्स ने इसका प्रयोग वक्रोक्ति के अर्थ में किया है ।

§4§ व्यंजना -
------------ व्यंजना का मूल हेतु कविस प्रतिभा है। यह शब्द एवं अर्थ दोनों पर आधारित होती है। यह शब्द के मूल में स्थित अकथित अर्थ को स्पष्ट करती है ।

लयात्मक संरचना का स्वरूप

लयात्मकता कवि की अनुभूति औं और वस्तुओं की स्थिति को इन्द्रिय-बोध्य बनाता है। इसी लय की सहायता से सामान्य पाठक कवि की अनुभूतियों को सहजतापूर्वक ग्रहण करता है। जिस कवि की अनुभूति लयात्मकता के जितनी अधिक अनुकूल होगी उस कवि की भाषिक प्रेषणीयता उतनी ही अधिक होगी। लय की सहायता से कवि कविता के सौन्दर्य को यथाशक्ति उभारने की कोशिश करता है। कविता जीवन से गहरे स्तर पर जुड़ी है और इन दोनों के मूल में लय की ही स्थिति है। लय की उत्पत्ति प्रत्येक अवस्था में गति, प्रवाह, और यति,

विराम के पारस्परिक एवं क्रमिक संघात से होती है। इसका स्वरूप तत्वत: आवृत्तिमूलक है। कविता मे में प्रयुक्त छन्द लय का आधार लेकर ही खड़ा होता है। लय कविता का गुण अर्थात् अनिवार्य धर्म है और छन्द उसका काव्यशास्त्रीय रूप। छन्दोबद्धता लय के मुक्त सम्प्रेषण को बाधित करती है, इसीलिए आधुनिक हिन्दी कविता में कवियों ने लयात्मकता को आधार बनाकर अपनी अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने की कोशिश की है। लय उत्पन्न करने में सर्वाधिक सहायता स्वरों से मिलती है, नये कवियों में अपनी कविता की सम्प्रेषणीयता बढ़ाने के लिए स्वरों को साधने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। अज्ञेय ने कविता में अनुभूति के साथ-साथ भाषा एवं लय की संगति रखने का प्रयास किया है, तथा जो कविताएँ गद्यात्मक हैं वहाँ भी स्वर ध्वनियों से आन्तरिक लय उत्पन्न कर लिया गया है। लय उत्पन्न करने के साधनों में कवियों ने नादात्मक, अनुरणात्मक एवं स्फोटात्मक शब्दों का सहारा लेने के साथ-साथ उच्चरण अवयवों का भी उपयोग किया है।

आधुनिक कविता में भी कवि लयों को रखने के लिए वर्ण एवं मात्राओं के समानुपातिक संतुलन, तुक-व्यवस्था, विराम तथा लघु-गुरू योजना का कलात्मक उपयोग करता है। कवि कविता में स्वाभाविक संगीत लाने के लिए ह्रस्व-दीर्घ मात्राओं को उच्चरित होने के लिए पूरा समय देता है। वह कविता में पुराने कवित्त आदि छन्दों को तोड़कर उसके लय को इस तरह से उपयोग करता है कि अर्थ एवं भाव दोनों को उत्कर्ष देने के साथ-साथ प्रेषणीयता में भी वृद्धि कर सके। इस लय के मूल में संगीत की भूमिका महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि वह मानव की आदिम प्रवृत्ति है जिस प्रकार कविता भावों को सम्प्रेषित करने के लिए निर्मित होती है वैसे ही लय संगीतात्मकता को उद्घाटित करता है। इसीलिए कविता की लय के मूल में राग- रागनियों, ताल, नाद आदि का प्रभाव होता है।

कविता की लयात्मक गतियाँ मात्रा एवं वर्णों से निर्धारित होती है, किन्तु जहाँ मात्राओं और वर्णों का ख्याल नहीं किया जाता वहाँ भी कविता की एक अपनी ही लय होती है जो शब्दों के आवर्त- विवर्त, विराम चिह्नों, वाचन पद्धति आदि के द्वारा निर्धारित एवं नियंत्रित होती है।जहाँ कविता में आवर्तो का अभाव है वहाँ कविता में प्रयुक्त शब्दों और वाक्यों के बीच के "स्पेस" से लय की पहचान होती है।

लय के तत्त्व तथा भेद -

लय कविता की आन्तरिक संरचना का सबसे मुख्य तत्त्व है। कवि के अभि-प्रेत अर्थ एवं भाव को लय अनुकूलतम रूप में भाषा के सहारे मूर्त रूप देता है। अभीष्ट लय की संकल्पना में निश्चय ही व्याख्येय वस्तु भी समाहित है और इस व्याख्येय वस्तु का अर्थ एवं सन्दर्भ उस लय में ही समाहित होता है। आधु-निक हिन्दी कविता में लय प्रयोग की दृष्टि से वैशिष्ट्य इस बात में है कि कविता की लय गद्य की लय के बहुत ही निकट पहुँच गयी है। आधुनिक हिन्दी कविता में लय के सामान्यतः दो भेद हैं -

{1} पारम्परित लय

{2} अर्थ लय ।

पारम्परित लय को कवियों ने दो प्रकार से कविता में प्रयोग किया है -

{क} शास्त्रीय लय,

{ख} मुक्त लय ।

शास्त्रीय लय के अन्तर्गत नये कवियों ने पुराने वर्णिक या मात्रिक छन्दों को स्थान दिया है। इस प्रकार के छन्दों को इन कवियों ने दो प्रकार से प्रयोग किया है। प्रथम वे कुछ प्रचलित नये तथा पुराने छन्दों को उनके मात्रा- विराम आदि नियमों के साथ कविता में प्रयोग किया है तथा कहीं- कहीं इन कवियों ने केवल रूढ़िबद्ध प्राचीन छन्दों की लयात्मकता का ही उपयोग किया है। आधु-निक कवियों में दूसरे प्रकार की प्रवृत्ति अधिक मिलती है क्योंकि इसके कारण कविता में कुछ खुलापन आ गया है ।

मुक्त लय की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता में कई प्रकार के प्रयोग दिखाई पड़ते हैं। यह वस्तुतः छन्दगत रूढ़ नियमों के प्रति विद्रोह था। इसमें संगीतात्मकता की मात्रा उसके नाद, राग-ताल आदि अंगों का प्रयोग कविता में अधिक होने लगा। इसमें परम्परागत छन्दों के लयों को मिलाकर एक नये लय का निर्माण किया, उर्दू-फारसी- अंग्रेजी आदि दूसरे विदेशी भाषा के लयों का भी कविता में प्रयोग किया गया, साथ ही साथ लोकगीतों के लयों के सहारे भी कविता में लयों का निर्माण किया गया।

§2§ अर्थ लय - नये कवियों ने आधुनिक हिन्दी कविता में अर्थलय के प्रयोग की भी बात की। इन कवियों ने असंगति, तनाव आदि के सहारे कविता में अर्थ लय का भी प्रयोग किया। इन कवियों का मानना है कि काव्य में लय केवल शब्द तक सीमित नहीं होती। पाठक पर इस शब्दलय का प्रभाव अर्थ-लय के कारण पड़ता है। क्योंकि लय शब्द कह की ही नहीं अर्थ की भी होती है।

1- पारम्परित लय :- कविता के प्राचीन रूप में लय का समावेश छन्दों के द्वारा ही किया जाता रहा है। वहाँ इस छन्द योजना के लिए वर्ण, मात्राएँ तथा गतियाँ नियमबद्ध थीं। आधुनिक हिन्दी कविता के साथ नियमों का यह बन्धन टूटना शुरू हुआ और भावों के उन्मुक्त प्रवाह और गति को चित्रण करने की प्रवृत्ति पनपी लेकिन इसके बावजूद आधुनिक हिन्दी कविता में छन्दों का परम्परागत रूप पारम्परित लय के रूप में दिखाई पड़ता है -

§क§ शास्त्रीय लय :- पारम्परित लय के शास्त्रीय रूप में हमें आधुनिक हिन्दी कविता में परम्परागत छन्दों के रूप दिखाई पड़ते हैं जो वर्ण, मात्रा तथा गति द्वारा नियंत्रित हैं। आधुनिक हिन्दी कविता में शास्त्रीय लय तीन रूपों में दिखा पड़ते हैं -

§अ§ प्राचीन छन्दों का प्रयोग -
------------------------ आधुनिक हिन्दी कवियों ने अपनी कविताओं में लयों के रूप में प्राचीन छन्दों का उपयोग भी किया है। छायावादी कविता में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। प्रसाद ने छन्दों को नियम, गति, विराम आदि के साथ अपनी कविताओं में स्थान दिया है। कामायनी का प्रत्येक सर्ग किसी न किसी छन्द के ही आधार पर लिखा गया है। इनको ताटंक छन्द अत्यन्त प्रिय है जो तीस मात्राओं का सममात्रिक छन्द है और यति का विधान सोलह मात्राओं के बाद किया जाता है -

जिसके अरुण कपोलों की,
मतवाली सुन्दर छाया में
अनुरागिनी उषा लेती थी
निज सुहाग मधुमाया में
उसकी स्मृति पाथेय बनी है,
थके पथिक की पंथा की
सीवन को उधेड़ कर देखोगे,
क्यों मेरी कन्था की ?[1]

प्रसाद के बाद परम्परागत मात्रिक छन्दों का सबसे अधिक प्रयोग पंत ने किया है। उन्होंने अपनी कविताओं में पीयूषवर्ष, रोला, सारस, सरसी, रस, लीला, श्रृंगार, मनोरमा, गोपी, चौपाई, सार, रूपमाला, सखी, पद्धरिका आदि छन्दों का प्रयोग किया है। अपने बाल-वर्णन के सन्दर्भ में चौपाई छन्द का प्रयोग पंत ने अधिक किया है। इस सन्दर्भ में पंत का कहना है कि, "इसकी ध्वनि में बच्चों की साँसें, बच्चों का कण्ठ रव मिलता है, बच्चों ही की तरह यह चलने में इधर- उधर देखता हुआ अपने को भूल जाता है"[2] चौपाई ।5 मात्राओं के चौपाई के ही सदृश सममात्रिक प्रवाह से युक्त छन्द है। इसमें 5 । वरणान्त होता है -

---

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1, लहर, पृ0-337
2- पल्लव §प्रवेश§ : पंत ग्रन्थावली, भाग-1, पृ0-171·

स्वर्ण- स्वप्न सी कर अभिसार
जल के पलकों में सुकुमार,
फूट आप ही आप अजान,
मधुर वेणु की सी झंकार[1]।

निराला में परम्परागत मात्रिक छन्दों की संख्या बहुत कम है। उन्होंने मुख्य रूप से वीर, ताटंक, तमाल, रोला आदि छन्दों का ही प्रयोग किया है। ये छन्द अधिकतर टुकड़ों के रूप में गीतों एवं मुक्तक छन्दों के बीच- बीच में मिलते हैं। म महादेवी में परम्परागत मात्रिक छन्द बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं। जो छन्द प्रयुक्त हैं उनमें चौपाई, रोला, हरिगीतिका, सखी, पीयूषवर्ष प्रमुख हैं। करुण रस हेतु के लिए विशेष उपयुक्त होने के कारण महादेवी को सखी छन्द विशेष प्रिय है। इसमें चरणान्त तीन गुरु अथवा एक लघु दो गुरु का विधान है तथा इसके प्रत्येक चरण में चौदह मात्राएँ होती हैं -

कन-कन में जब छाई थी
वह नव यौवन की लाली
मैं निर्धन तक आई ले
सपनों से भरकर डाली[2]।

छायावाद के बाद के कवियों में पुराने छन्दों को प्रयोग करने की प्रवृत्ति अज्ञेय में अधिक दिखाई पड़ती है। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रमुख छन्दों में रोला, हरिगीतिका, वीर, मालिनी, ताटंक, बरवै आदि मुख्य हैं -

बरवै -

मधु मंजरि अलिपिक रव सुमन समीर
नव बसंत क्या जाने मेरी पीर
प्रियतम क्यों आते हैं मधु को फूल
तब तेरे बिन मेरा जीवन धूल[3]।

1- पल्लव {वीचिविलास} : पंत ग्रन्थावली, भाग-1, पृ0-189.
2- नीहार : महादेवी, पृ0-12.
3- चिंता : अज्ञेय, पृ0- 115.

अज्ञेय के बाद के कवियों में लय के लिए प्राचीन छन्दों को रखने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती।

छायावाद तथा छायावादोत्तर के कवियों में परम्परागत मात्रिक छन्दों को मिलाकर एक नये छन्द के निर्माण एवं प्रयोग की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। प्राय: सभी छायावादी कवियों ने इस तरह के छन्दों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। पन्त ने गुंजन की कुछ कविताओं में सोलह मात्राओं के ही दो विभिन्न छन्दों - पद्धरि और चौपाई का मिश्रण किया है -

वन के विटपों की डाल- डाल
कोमल कलियों से लाल - लाल - पद्धरि
फैली नव मधु की रूप- ज्वाल

जल- जल प्राणों के अलि उन्मन,
करते स्पन्दन भरते गुंजन । [1] - चौपाई

निराला तथा महादेवी में भी यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। निराला ने तमाल एवं चौपाई का मिश्रण करके एक नवीन छन्द बनाने की कोशिश की है -

प्रथम चकित चुंबन- सी सिहर समीर = (19 मात्राएँ = तमाल)
कँपा त्रस्त अम्बर के छोर = (15 मात्राएँ = चौपई)
उठा लाज की सरस हिलोर
ऊषा के अधरों में अरुण अधीर । [2]

महादेवी में चौपाई के तीन चरण तथा ताटंक के एक चरण को मिलाकर एक नवीन छन्द निर्माण की प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है -

मृग मरीचिका के चिर पथ पर
सुख आता प्यासों के पग धर

1- पन्त ग्रन्थावली, भाग- 1 (गुंजन), पृ0- 239.
2- परिमल : निराला, पृ0- 83.

रूद्ध हृदय के पट लेता कर । - {16 मात्राएँ }

गर्वित कहता मैं मधु हूँ मुझसे क्या पतझर का नाता । - {30 मात्राएँ}

छायावाद के बाद के कवियों में अज्ञेय में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिए दिण्डी तथा पीयूषवर्ष - दोनों ही छन्द 19 मात्राओं के होते हैं, दिण्डी में 9-10 पर यति होती है और अन्त में दो गुरू होते हैं तथा पीयूषवर्ष में 10, 9 पर यति होती है और अन्त में एक लघु, एक गुरू रहते हैं। यहाँ पर यतियाँ तो दिण्डी की हैं पर लघु- गुरू की योजना पीयूषवर्ष की है -

> बह चुकी बहकी, हवाएँ चैत की
> कट चुकी पूलें , हमारे खेत की
> कोठरी में लौ, बढ़ाकर दीप की
> गिन रहा होगा, महाजन सेंत की।[2]

अज्ञेय के बाद के कवियों में भी यह प्रवृत्ति कहीं- कहीं दिखाई पड़ती है -

> पूँछ उठाये, चली आ रही
> क्षितिज जंगलों से टोली,
> दिखा रहे पथ, इस भूमी का[3]
> सारस सुना- सुना बोली ।

इसमें प्रथम तथा तृतीय चरण में सोलह- सोलह मात्राएँ हैं तथा द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में चौदह- चौदह। प्रथम- तृतीय चरण मत्तसमक छन्द है जबकि द्वितीय-चतुर्थ सखी छन्द है।

इस तरह परम्परागत छन्दों की दृष्टि से छायावादी कवियों ने मात्रिक छन्दों का उनके मात्रा विधान एवं यति-गति के साथ उपयोग किया है साथ ही दो पुराने छन्दों को मिलाकर एक नये प्रकार के छन्द निर्माण की प्रवृत्ति भी दिखाई पड़ती है। जबकि छायावाद के बाद के कवियों में अज्ञेय ने ही पुराने छन्दों का प्रयोग किया है लेकिन दो पुराने छन्दों को मिलाकर नवीन छन्द बनाने की प्रवृत्ति अज्ञेय के अतिरिक्त अन्य कवियों में भी दिखाई पड़ती है।

1- रश्मि : महादेवी, पृ0-
2- बावरा अहेरी : अज्ञेय, पृ0- 21.
3- दूसरा स ५

(ब) नये छन्दों का निर्माण – आधुनिक हिन्दी कविता में कई कवियों द्वारा नये छन्दों के निर्माण की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से छायावादी कविता महत्त्वपूर्ण है। छायावादी कवियों में निराला में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। निराला की कविताओं में दो नये छन्द मुख्य रूप से प्रयुक्त हुए हैं। "राम की शक्तिपूजा" में उन्होंने 24 मात्राओं के नवीन छन्द की योजना की है –

दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार[1]।

इस सममात्रिक छन्द के प्रत्येक चरण में चौबीस मात्राएँ हैं। इसी तरह तुलसीदास में भी उन्होंने 16–22 मात्राओं के दो छन्दों के योग से एक नये प्रकार के छन्द का निर्माण किया है –

बिखरी छूटी शफरी– अलकें
निष्पात नयन– नीरज पलकें
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता
नि: संबल केवल ध्यानमग्न
जागी योगिनी अरूप लग्न
वह खड़ी शीर्ण प्रिय भाव मग्न निरूपमिता[2]।

छायावाद के बाद के कवियों में अज्ञेय ने इस दृष्टि से कुछ नये प्रकार के छन्दों का निर्माण किया है। चालीस मात्राओं का 6–6 जिसके अन्त में तीन गुरू का विधान है –

1– निराला रचनावली, भाग – 1 (राम की शक्तिपूजा), पृ0– 311.
2– वही, (तुलसीदास), पृ0– 285.

गली में मचा है कुहराम भारी,
मुफ्त का पैसा किसी ने पाया था।
मानों उठती है आवाज क्रन्दन की,
निश्चय ही बहू कोई लाया था[1]।

इस तरह नये छन्दों के निर्माण की प्रवृत्ति छायावादी कवियों में अपेक्षाकृत अधिक है।

(स) विदेशी भाषा के छन्दों का अनुसरण -

आधुनिक कवियों ने विदेशी उर्दू- फारसी, चीनी, जापानी भाषाओं के छन्दों को उसकी लयात्मक प्रकृति के अनुसार अपनी कविताओं में प्रयोग किया है। छायावादी कवियों ने केवल निराला ने अपनी प्रवक प्रकृति के अनुसार उर्दू-फारसी के छन्दों का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। उनमें गजल तथा रुबाई छन्दों की प्रचुरता है -

गजल - गई निशा वह हँसी दिशाएँ
खुले सरोरूह जगे सवेरन,
वही समीरण जुड़ा नयन- मन[2]
उड़ा तुम्हारा प्रकाश के तन

रुबाई - मदभरे ये नलिन नयन मलीन हैं,
अल्प जल में या विकल लघुमीन हैं।
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी,
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं[3]।

गजल एवं रुबाई अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, शमशेर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि कवियों ने भी गजल तथा रुबाई का मौलिक प्रयोग किया है। गिरिजाकुमार माथुर की रुबाई का एक नमूना द्रष्टव्य है -

1- इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये : अज्ञेय, पृ0- 56.
2- गीतिका : निराला, पृ0- 51.
3- परिमल : निराला, पृ0- 78.

दौड़ो मत, जिन्दगी न केवल बहाव है,
निराधार तिनका नहीं, गति का जमाव है ।
ठहरो तूफानों को मन में रच जाने दो
रचना तूफान नहीं रचना ठहराव है[1]।

इसमें रुबाई की फारसी परम्परा का पूर्ण पालन नहीं हुआ है, जनजीवन की संवेदना को स्पष्ट करने के लिए छायावाद के बाद के कवियों ने चीनी- टंका, एवं जापानी- हाइकू छन्दों का प्रयोग भी किया है। ये छन्द अधिकतर व्यंग्य एवं मनोरंजन आदि के लिए ही कविता में प्रयुक्त हुए हैं। चीनी टंका का उदाहरण -

हमारा अंतर
एक बहुत बड़ी विजय का
आलोक- चिन्ह[2]
हो ।

इसी तरह जापानी- हाइकू का उदाहरण अज्ञेय की कविताओं में दिखाई पड़ता है-

चाँद चितेरा
झाँक रहा है शारद नभ में[3]
एक चीड़ का खाका ।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य विदेशी छन्दों की भी योजना (दृष्टव्य) है ।

सानेट - नये कवियों ने सानेट के नियमों का पूरा- पूरा पालन किया है और कई कवियों द्वारा यह प्रयुक्त है, इसमें चौदह पंक्तियाँ होती हैं ।

मैंने जितना नारी, तुमको याद किया है, प्यार दिया है,
तुमने भी क्या कभी भूल से सोचा था कैसा है यह मन ?
मैंने क्या अपराध किया, जो तुमने यों इसरार किया है
जाने कैसे विद्युत्कम्प से परसित है तन- मन अणु- अणु ।

1- शिलापंख चमकीले : गिरिजाकुमार माथुर, पृ0- 67.
2- कुछ कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृ0- 6-
3- अरी ओ करुणाप्रभामय : अज्ञेय, पृ0- 120.

तुम मेरे मानस की संगिनि चपल बिहंगिनि नीड़ की शाखा ?
तुम मेरे मन की राका की एकमात्र नक्षत्र - विशाखा,
तुम हो मृगा या कि आर्द्रा हो नहीं रोहिणी तुम अनुराधा,
तुम छायापथ ज्योतिशिखा तुम, तुम उल्का आलोक - शलाका
संशय के सघनान्धकार में, विद्युन्माला अयि अवुम्बिते ।
तुम हरिणी, मालिनी, शिखरिणी, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बिते
तुम छन्दों की आदि प्रेरणा, प्रथम श्लोक की पृथुलवेदना
तुम स्रग्धरा या कि मन्दाक्रान्ता, ओ आर्या, गीति स्तम्भिते ।
मैं गतिहारा यति- सा ग्राह से शून्य प्रभाकर मैं वैनायक
तुम रागिनी और मैं गायक, तुम हो प्रत्यंचा मैं सायक ।[1]

हाइकु - यह छन्द अपनी चित्रात्मकता एवं संक्षिप्तता के कारण प्रसिद्ध है और आधुनिक हिन्दी कवियों का प्रिय रहा है -

> जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर
> सजग सा होकर पसरने लगा
> आप से आप - सुबह ।[2]

इस तरह विदेशी भाषा के छन्दों की लय को प्रयोग करने की दृष्टि से छायावादी कवियों ने जहाँ फारसी के छन्दों का उपयोग किया है वहाँ छायावाद के बाद के कवियों ने फारसी छन्दों के अतिरिक्त चीनी एवं जापानी छन्दों का उपयोग भी अपनी संवेदना को विस्तार देने के लिए किया है ।

(ख) मुक्त- लय- आधुनिक हिन्दी कविता में लय के उपयोग की प्राचीन छान्दिक-व्यवस्था से हटकर शब्दों एवं उच्चारणगत वैशिष्ट्य को आधार बनाकर अपनी अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने की कोशिश की है। मुक्त-लय को कविता में रखने के लिए इन कवियों ने कई सम्प्रेषण पद्धतियों का उपयोग किया है ।

1- तारसप्तक (प्रभाकर माचवे), पृ0- 192 : सं0 अज्ञेय
2- कुछ कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृ0- 36.

§अ§ संगीत -

छन्दों के रूढ़बद्ध नियम, व्यवस्था से छुटकारा पाने के प्रयास में आधुनिक कवियों ने संगीत का सर्वप्रथम सहारा लिया। इन कवियों ने संगीत की राग-रागनियों, नाद, ताल, आरोह- अवरोह आदि के प्रवाह के साथ कविता में शब्दों को संचालित करने की कोशिश की। लेकिन संगीत काव्य से पृथक् एक पूर्ण, दुरूह एवं समृद्धशाली परम्परा और कठिन साधना एवं अभ्यास के अभाव में ये आधुनिक कवि कविता में इसे साध सकने में सफल नहीं हुए। आधुनिक हिन्दी का यदि संगीतात्मक दृष्टि से मूल्यांकन किया जाय तो संगीत के मूल तत्वों की दृष्टि से छायावादी कवि निराला ही सफल हुए हैं अन्यथा अधिकांशत: अन्य आधुनिक कवि शब्दों की नादात्मकता एवं आरोह आदि प्रवृत्तियों को ही लेकर कविता में लयात्मकता रखने की कोशिश करते हैं। निराला ने न केवल राग ताल आदि की दृष्टि से कविता की है वरन् कविता में रागों की संवेदना को भी उभारने की कोशिश की है। सरोजस्मृति में -

> काँपा कोमलता पर सस्वर
> ज्यों मालकौश नव वीणा पर।[1]

निराला की कविताओं में गीतों की योजना अधिकांशत: रागों के ही आधार पर ही की गई है और उसकी लयात्मकता आरोह- अवरोह आदि पर ही आधारित है। निराला की कविताओं में प्रयुक्त हुए मुख्य रागों में - भैरवी, यमन, देसी, गौरी, आसावरी बहार आदि हैं। स्थूल श्रृंगार एवं शान्त रस की संवेदना को व्यक्त करने में सक्षम होने के कारण निराला ने आसावरी राग का अत्यधिक प्रयोग किया है -

> परिजात पुष्प के नीचे बैठ सुनोगे तुम,[2]
> कोमल कण्ठ कामिनी की सुधा भरी आसावरी।

1- निराला रचनावली, भाग- 1, पृ0- 301।
2- परिमल : निराला, पृ0- 223।

राग मेघ मल्हार निराला का अत्यन्त प्रिय राग है। इस राग की गायन पद्धति का उपयोग उन्होंने अपनी कविताओं में कई जगह किया है -

श्याम घटा घन घिर आयी ।
पुरवाई फिर-फिर आयी ।
बिजली कौंध रही है छन- छन,
काँप रहा है उपवन - उपवन,
चिड़ियाँ नीड़- नीड़ में निःस्वन,
हरित सजलता तिर आयी ।
गृहमुख बूँदों के दल टूटे,
नव- नव सौरभ के दव फूटे
श्री जग- तरू के सिर आयी ।[1]

रागों के अतिरिक्त निराला ने वर्णों की आवृत्ति, ध्वनिमूलक वर्णों की योजना एवं शब्दों का नादात्मक प्रकृति के अनुसार प्रयोग किया है। निराला, पन्त, प्रसाद तथा महादेवी आदि सभी छायावादी कवियों में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है -

नूपुरों में भी रून- झुन- रून- झुन - रून- झुन नहीं
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा चुप- चुप- चुप
है गूँज रहा सब कहीं ।[2]

छायावाद के बाद के सभी कवियों में चित्रात्मक प्रयोग करने के लिए नादात्मक चित्रण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यह योजना मुख्यरूप से कविता के लय-विधान को नियोजित करने के लिए हुई है -

---

1- निराला रचनावली, भाग-2 {मेघ मल्हार}, पृ0- 205.
2- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0- 65

जाड़े की रात में
डोला जब ठिठुरता पछियाव
काँप गई हड्डियाँ भी देह की,
छींकें आई कितनों को
खों- खों खाँसी के मारे बुरा हाल था।[1]

§2§ मुक्त छन्द -

मुक्त छन्द का प्रयोग आधुनिक हिन्दी कवियों ने सर्वप्रथम किया है। यह प्रयास हिन्दी काव्य- क्षेत्र में एक विद्रोह का प्रतीक रहा है। इसके प्रयोग की प्रमुख विशेषतायें चरणों की अनियमित असमान स्वच्छन्दगति और भावानुकूल यति- विधान हैं जो आधुनिक कविता की प्रकृति के अनुकूल है। इसीलिए निराला द्वारा इसका प्रचलन करने के बाद से भाव सम्प्रेषण के लिए कविता की यह पद्धति विशेष रूप से स्वीकृत हुई । छायावादी कवि निराला ने इस तरह की मुक्त लयात्मक पद्धति की योजना अपनी कविता "जुही की कली" के लिए की -

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी- स्नेह-स्वप्न-मग्न -
अमल- कोमल- तनु तरुणी- जुही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल- पत्रांक में,
वासन्ती निशा थी,
विरह- विधुर- प्रिया- संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल ।[2]

छायावाद के बाद के सभी कवियों ने अपनी- अपनी सूक्ष्म संवेदनाओं को अभि- व्यक्ति देने के लिए मुक्त छन्दों के ही लय को ग्रहण किया है। इससे इन कवियों

1- युग की गंगा : केदारनाथ अग्रवाल, पृ0- 27·
2- निराला रचनावली, भाग- 1, पृ0- 31·

की सम्प्रेषण के विस्तार के साथ ही साथ समाज एवं लोगों की यथार्थ कटु विसंगतियों को भी इसके मुक्त प्रवाह के चलते अभिव्यक्ति देने में सफल रहे हैं -

> और कब तक धमनियों के अंध में धारे रहूँ
> यह दर्द की देवापगा ?
> और कब तक मुक्ति-प्यासी अस्थियों की चीख
> भी सुनता रहूँ ?
> खोल दो मेरी शिराएँ खोल दो,
> तोड़ दो मेरी परिधियाँ तोड़ दो,
> बहो, बहो
> फूट कर बहो
> मेरे दर्द की देवापगा ।

लयात्मक प्रवाह ही मुक्त छन्द की प्रमुख विशेषता है, इसलिए छायावाद के बाद के कवियों ने अपनी अनुभूतियों को बिना तोड़े पाठक तक सम्प्रेषित करने के लिए मुक्त छन्दों का प्रयोग अधिक किया है, यद्यपि इन कवियों की लय कहीं-कहीं टूट भी गई है लेकिन फिर भी कविता की सम्प्रेषणीयता में वृद्धि हुई है। जबकि छायावादी कवियों में निराला को छोड़कर अधिकांश कवियों ने परम्परागत छन्द का ही प्रयोग किया है ।

§3§ लोकगीतों की लय -

आधुनिक हिन्दी कवियों ने अपनी संवेदना और सम्प्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए जन-जीवन में प्रचलित लोकगीतों के लय को ग्रहण किया है।छायावादी कविता में यह प्रवृत्ति मूल रूप से केवल निराला में ही दिखाई देती है।

रानी और कानी, खजोहरा, स्फटिकशिला तथा अनेक गीत लोकगीतों के लय के आधार पर ही निर्मित हैं -

मॉं उसको कहती है रानी
आदर से, जैसा है नाम,
लेकिन उसका उल्टा रूप
चेचक के दाग, काली, नक-चिपटी,
गंजा- सर एक आँख कानी
रानी अब हो गयी सयानी।[1]

छायावाद के बाद के कवियों ने नागार्जुन, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, भवानीप्रसाद मिश्र, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि कवियों ने अपनी संवेदना के अनुकूल शब्दों को कविता में रखने के लिए गाँवों की सामान्य शब्दावली को अपनाया और उसके साथ-साथ सम्प्रेषण के स्तर पर उसे और प्रभावशाली बनाने के लिए लोकगीतों के लय का भी उपयोग किया और इसमें वही कवि सफल हुए जिनका ग्राम्य-जीवन से भावनात्मक लगाव था। उदाहरण के रूप में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता रखी जा सकती है -

मेले में दूकान की
माचिस बीड़ी पान की,
कुछ तो खा गए हाकिम- उमरा
कुछ खा गए सिपाही
बाकी बचा टैक्स भर आयी
ऐसी हुई तबाही,
ब्याह की हँसुली गिरो धरी है
थी बस एक चदौआ।
चुपाई मारो दुलहिन
मारा जाई कौआ।[2]

1- निराला रचनावली, भाग-2, पृ0- 32.
2- काठ की घंटियाँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ0- 146.

छायावादी कवियों की अपेक्षा छायावादोत्तर कवियों ने अपनी अनु-भूतियों को अभिव्यक्ति देने के लिए लोकगीतों के लयों का अधिक सार्थक उपयोग किया है ।

§2§ अर्थलय -

छायावाद के बाद की कविता में विशेषकर प्रयोगवाद की कविता में आलोचकों ने अर्थ-लय की बात कही। इस समय की कविता में लय पर अत्यधिक जोर देने के कारण कुछ विद्वानों का मानना है कि लय में शब्द- लय ही एक मात्र प्रभावी तत्त्व नहीं है, शब्दों के रूप में प्रयुक्त कविता में उन शब्दों के अर्थ के कारण ही कविता में लय- तत्त्व प्रभावी होता है। यह अर्थ- लय लक्षणा, तथा विसंगति आदि के सहारे कविता में अर्थ- बोध के स्तर पर स्पष्ट होती है -

> आज तुम शब्द न दो, न दो कल भी मैं कहूँगा
> तुम पर्वत हो अभ्र भेदी शिलाखण्डों के गरिष्ठपुंज
> चाँपे इस निर्झर के रहो- रहो
> तुम्हारे रन्ध्र- रन्ध्र में तुम्हीं को रस देता हुआ
> फूटकर मैं बहूँगा।[1]

तीसरा सप्तक के कवि अर्थ-लय प्रयोग की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं ।

> इधर तीन दिनों से
> लेटते ही खाट पर
> तीव्र इच्छा होती है -
> शून्य को पकड़ कर
> मुट्ठियों में भींच लूँ ।
> नारंगी से चाँद को,
> रसभरी से तारों को
> केवड़े में बसी हुई किरनों को
> पंजों में पकड़कर
> कस कर निचोड़ूँ[2]
> सारा रस खींच लूँ ।

1- बावरा अहेरी : अज्ञेय, पृ0- 3.
2- तीसरा सप्तक §विजयदेव नारायण साही§, पृ0-188.

अहं से बड़ी हो तुम ।
क्योंकि मेरी शक्तियों की -
हर पराजय जीत की
अन्तिम कड़ी हो तुम ।
जहाँ रूक कर
फिर नयी मैं टेक गढ़ता हूँ
भूमि पैरों के तले मेरे न हो फिर भी
हर नये संकल्प के विष- शृंग चढ़ता हूँ ।[1]

इस प्रकार अर्थलय की दृष्टि से छायावाद के बाद की कविता अधिक महत्वपूर्ण हैं। इन नये कवियों ने वर्तमान जीवन के यथार्थ को सम्प्रेषित करने के लिए जटिल सम्प्रेषण पद्धतियों को अपनाने के बजाय अर्थ लय के सहारे अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है ।

लय की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता का विश्लेषण करने के पश्चात् निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित विशिष्टताएँ दिखाई पड़ती हैं -

1- लय के प्राचीन आधार छन्द, छायावादी कविता में भी महत्वपूर्ण है, निराला को छोड़कर सभी कवियों ने छन्दों के सहारे ही कविता में लयात्मकता लाने की कोशिश की है। जबकि छायावाद के बाद की कविता में यह प्रवृत्ति कम-जोर पड़ने लगी है ।

2- छायावादी कवियों ने दो भिन्न छन्दों के मात्राओं को लेकर एक नवीन छन्द का निर्माण कर लय में बदलाव लाने की कोशिश की है, छायावाद के बाद की कविता में भी यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है ।

1- तीसरा सप्तक (सर्वेश्वरदयाल सक्सेना), पृ0- 229.

3- छायावाद तथा छायावाद के बाद के कवियों ने प्राचीन छन्दों के मात्रा-विधान को छोड़कर छन्दों के लय- गति को लेकर अपने भावों को सम्प्रेषित किया है ।

4- छायावाद तथा छायावाद के बाद की कविता में दोनों जगह लय को प्रभावी बनाने के लिए संगीत के राग, ताल, नाद, आवृत्ति, आरोह- अवरोह आदि के सहारे भी कविता की ही इस दृष्टि से निराला की कविताएँ विशेष उल्लेखनीय हैं ।

5- छायावादी कवि निराला द्वारा मुक्त छन्द के विकास के साथ कविता में मुक्त छन्दों का प्रयोग होने लगा। छायावाद के बाद की कविता में अपनी मुक्त लयात्मक योजना के कारण यह पद्धति विशेष लोकप्रिय हुई ।

6- छायावादी कवि निराला तथा छायावाद के बाद के कवियों ने लोकगीतों के लयों के आधार पर भी अपनी कविताएँ की।

7- छायावाद के बाद की कविता में अर्थ-लय को भी लयात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा।

व्यंजना

आधुनिक हिन्दी कविता संकेतों की कविता है। संकेतिकता इसका प्रमुख गुण है । इसके लिए उन्होंने व्यंग्यार्थमूलक एवं लक्ष्यार्थमूलक प्रवृत्तियों का सहारा लिया है। छायावादी कविता जहाँ लक्ष्यार्थमूलक प्रवृत्तियों के अधिक निकट है वहीं छायावाद के बाद की कविता व्यंग्यार्थमूलक प्रवृत्तियों के अधिक निकट है। व्यंजना आन्तरिक संरचना का प्रमुख अवयव है। आधुनिक हिन्दी कविता में कथ्य एवं संवेद की यथावत अभिव्यक्ति के आग्रह के कारण व्यंग्यार्थ की सहायता से इन कवियों की अर्थक्षमता को और अधिक विस्तार मिला है।

शाब्दी व्यंजना :- शाब्दी व्यंजना के दोनों भेद अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना एवं लक्षणामूलक शाब्दी व्यंजना दोनों का प्रयोग इनकी कविताओं में मिलता है-

(क) अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना :- छायावादी कवियों प्रसाद- पंत, निराला, महादेवी आदि सभी ने अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना का प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया है -

> फिर तम प्रकाश झगड़े में
>
> नव ज्योति विजयिनी होती ।
>
> हँसता यह विश्व हमारा
>
> बरसाता मंजुल मोती ।।

इन पंक्तियों में तम, प्रकाश और नवज्योति शब्दों से पाठक को प्रथमत: एक सामान्य अर्थ की प्राप्ति होती है कि अन्धकार और प्रकाश का चक्र अनादि काल से चला आ रहा है, किन्तु अन्तत: अन्धकार को विदीर्ण करके सूर्य का नव-प्रकाश ही संसार के मार्ग को आलोकित करता है। इस तरह अभिधामूलक शाब्दी व्यंजना कामायनी में अधिक प्रयुक्त हुए हैं ।

छायावाद के बाद की कविता में भी कवियों ने अभिधामूला शाब्दी व्यंजना का बहुत कम उपयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोग अधिकतर प्रतीक पद्धति के सहारे जुड़कर कविता में आए हैं।

वासना डूबी
शिथिल पल में
स्नेह काजल में
लिये अद्भुत रूप कोमलता
अब गिरा अब गिरा वह अटका हुआ आँसू
सान्ध्य तारक सा
अतल में।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में स्पष्ट अभिधेयार्थ के पश्चात् मानव मन की दुःखपूर्ण स्थितियों का भी कवि वर्णन किया है।

(ख) लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना :- छायावादी कवियों ने लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना का अधिकउपयोग किया है, इसका प्रमुख कारण यह है कि छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति प्रणाली लक्षणा पर ही आधारित है। छायावादी कवियों में निराला में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पायी जाती है। उन्होंने लक्षणामूला व्यंजना के सहारे अनेक चित्रात्मक अभिव्यक्तियाँ रखने की कोशिश की है और इसमें वे सफल भी रहे हैं। चित्रात्मक अभिव्यक्ति के अन्त: स्फुरित भावों को शब्दबद्ध करने की भी कोशिश उनमें अधिक दिखाई पड़ती है -

खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगन्ध के
प्रथम वसंत में गुच्छ- गुच्छ
दृगों ब को रँग गई प्रथम प्रणय रश्मि -
पूर्ण हो विच्छुरित
विश्व- ऐश्वर्य को स्फुरित करती रही
बहुरंग भाव भर
शिशिर ज्यों पत्र पर कनक प्रभात के
किरण सम्पात से।[2]

1- कुछ कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृ0-2।
2- अनामिका : निराला, पृ0-1।

इसमें तारुण्य के मुख्य भाव की अत्यन्त अमूर्त एवं सांकेतिक व्यंजना की गई है। प्रथम वसंत, नवयौवन आगमन का, तथा प्रथम सुगन्ध के पुष्पों के गुच्छ- गुच्छ अर्थात् यौवन सुलभ मधुर मन्दिर एवं उल्लासपूर्ण भावनाओं के व्यंजक हैं। अतः इनके मूल में लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना है। अर्थात् प्रकृति के लाक्षणिक उपादानों के सहारे नवयौवन का चित्रण है। निराला के अतिरिक्त प्रसाद, महादेवी तथा पन्त में भी इस लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना के प्रचुर उदाहरण प्राप्त होते हैं।

तरु गिरा
जो
झुक गया था, गहन
छायाएँ लिये।
अब
हो उठा है मौन का डर
और भी मौन --------
दुःख छलक उठा है करुण सागर का हृदय।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि झुके हुए तरु के सहारे वृद्धावस्था को प्राप्त व्यक्ति की अन्तिम संवेदनाओं को उभारने की कोशिश की है। यह प्रयास कवि ने लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना की सहायता से किया है। इसी तरह नागार्जुन, भारतभूषण, सर्वेश्वर आदि की कविताओं में लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

इस तरह शाब्दीमूला व्यंजना की दृष्टि से छायावादी कविता तथा छायावाद के बाद की कविता को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो छायावाद में लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है जिसका प्रमुख कारण छायावादी कवियों की चमत्कारिक प्रवृत्ति है जबकि अभिधामूला शाब्दी व्यंजना का प्रयोग निराला में अधिक हुआ है जो उनके समाज एवं जीवनगत अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने में सफल रहा है। जबकि छायावाद के बाद की कविता में शाब्दीमूला

1- दूसरा सप्तक (शमशेर बहादुर सिंह), पृ०- 112.

व्यंजनाओं को उतनी प्रमुखता नहीं मिली है जिसका प्रमुख कारण इन कवियों द्वारा आधुनिक युग की समस्याओं को व्यक्त करने की कोशिश रही है। और इस कोशिश के चलते व्यंग्यार्थों का उपयोग अधिक हुआ है। फिर भी, सभी कवियों में इन दोनों भेदों के उदाहरण मिल जाते हैं।

§2§ आर्थी- व्यंजना :- जिस शब्द या अर्थ में व्यंजना पाई जाती है वह व्यंजक कहलाता है और अभिधा तथा लक्षणा से अर्थ बोधित करने की शक्ति केवल शब्द में होती है अर्थ में नहीं किन्तु व्यंग्यार्थ बोधित करने की शक्ति शब्द एवं अर्थ दोनों में होती है। आधुनिक हिन्दी कविता जनजीवन की विसंगतियों का चित्रण करने के कारण व्यंग्यार्थमूलक अधिक है। इस आर्थी व्यंजना के विद्वानों द्वारा तीन भेद किए गए हैं -

§क§ वाच्यसम्भवा आर्थी व्यंजना :- छायावादी कविता में मानवीय सौन्दर्य एवं मूल्यों की अभिव्यक्ति प्रमुख गुण होने के कारण वाच्यसम्भवा आर्थी व्यंजना का उपयोग काफी अधिक दिखाई पड़ता है। निराला, महादेवी एवं पन्त की कविताओं में इस तरह के उदाहरण विशेष रूप से दिखाई पड़ते हैं -

> गरजता सागर तम है घोर
> घटा घिर आई सूना तीर
> अँधेरी सी रजनी में पार
> बुलाते हो कैसे वे पीर ।

यहाँ प्रकृति के भयानक और बाधक रूप का अंकन किया गया है। किसी की गति रोकने के लिए उनमें से एक ही बाधा पर्याप्त है। यह धरती, आकाश और जल-प्रदेश सभी प्रतिकूल हो रहे हैं। वैसी दशा में इनके पार रहकर प्रिया को बुलाने वाला प्रिय कितना नासमझ और कठोर हृदय है। इसकी प्रतीत सहज में हो जाती है। चूँकि वाच्य की विशेषता के कारण व्यंग्य प्रकट होने के कारण यह वाच्यसम्भवा आर्थी व्यंजना का उदाहरण है, दिनकर की कविता -

---

1- यामा : महादेवी, पृ0- 49.

फेंकता हूँ मैं तोड़ मरोड़ अरी निष्ठुर वीणा के तार ।
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख फूँकता हूँ भैरव हुंकार ।।
नहीं जीते जी सकता देख विश्व में झुका तुम्हारा भाल ।
वेदना मधु का भी करपान आज उगलूँगा गरल कराल ।।[1]

यहाँ कवि स्वयं ही वक्ता है। वह क्रान्ति के युद्ध में शंख फूँक रहा है, यह वाच्यार्थ है। इसी वाच्यार्थ से देश तथा समाज की वर्तमान परिस्थिति से वह असन्तुष्ट है तथा इस स्थिति का विध्वंस कर देना चाहता है ।

छायावाद के बाद की कवियों ने भी वाच्यसम्भवा आर्थी व्यंजना के सहारे सामाजिक एवं व्यक्तिगत विसंगतियों को उभारने की कोशिश की है। आधुनिक हिन्दी कविता के नागार्जुन, मुक्तिबोध, अज्ञेय, सर्वेश्वर आदि सभी कवियों ने अपनी अनुभूतियों को इसकी सहायता से विस्तार दिया है -

दे पैसा ?
थी बीमार ?
अरे, यह रूप हुआ कैसा ।
मेले में दूकान की
माचिस बीड़ी पान की,
कुछ तो खा गए हाकिम- उमरा
कुछ खा गए सिपाही,
बाकी बचा टैक्स भर आयी
ऐसी हुई तबाही,
ब्याह की हँसुली गिरो धरी है
थी बस एक चढ़ौआ
डूब मरे गंगाजी में कुछ
आया राम बुलौआ[2]।

1- हुंकार : दिनकर, 7
2- काठ की घंटियाँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ0- 148.

वाच्यार्थ के साथ-साथ एक निम्नवर्गीय व्यक्ति की पैसे के अभाव में उपजती विवशता मेले में दुकान बेचने से लेकर गंगाजी में डूबकर उसे आत्महत्या तक के लिए विवश कर देता है और इस विवशता के मूल में शोषक वर्ग की शोषण वृत्ति भी है ।

§ख§ लक्ष्यसम्भवा आर्थी व्यंजना :- छायावादी कविता में कवियों ने लक्ष्यसम्भवा आर्थी व्यंजना के सहारे भी अपनी अनुभूतियों को सम्प्रेषित किया है। प्रसाद की कामायनी में इस तरह के अनेक उदाहरण मिलते हैं -

लहरें व्योम चूमतीं उठती चपलायें असंख्य नचतीं ।
गरल जलद की खड़ी झड़ी में बूंदे निज संसृति रचती ।।[1]

इस पद्य में लहरों के लिए "व्योम चूमने" का प्रयोग लाक्षणिक है। यहाँ चूमने का लक्ष्यार्थ "स्पर्श करना" है। इस प्रयोग से प्रलयकालीन सागर की उत्ताल तरंगों की ऊँचाई तथा भयंकरता व्यंजित होती है जो प्रयोग का प्रयोजन फल है।

छायावाद के बाद की कविता में भी लक्ष्यसम्भवा आर्थी व्यंजना का कलात्मक प्रयोग हुआ है। इन कवियों ने इसके सहारे यथार्थ एवं समाज की गलित विसंगतियों को अभिव्यक्ति दी है -

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास ,
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त ।।[2]

चूल्हा रोया, उदास चक्की, छिपकलियों की गश्त, चूहों की हालत का शिकस्त होना आदि लाक्षणिक व्यंग्यार्थों के सहारे निम्नवर्गीय स्थिति का मूल्यांकन किया है। अन्य कवियों की कविताओं में भी लक्ष्यसम्भवा आर्थी व्यंजना का उदाहरण दिखाई पड़ता है ।

1- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग- 1, पृ0-
2- सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ0- 30.

{ग} व्यंग्यसम्भवा आर्थी व्यंजना :-

छायावादी कविता में व्यंग्यसम्भवा आर्थी व्यंजना का प्रयोग बहुत कम दिखाई पड़ता है। निराला की कुछ कविताओं में इस तरह के उदाहरण दिखाई पड़ते हैं -

> लौटी रचना लेकर उदास
> ताकता हुआ मैं दिशाकाश
> बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
> व्यतीत करता था गुन गुनकर
> सम्पादक के गुण यथाभ्यास
> पास ही नोचता हुआ घास
> अज्ञात फेंकता इधर उधर
> भाव की चढ़ी पूजा उनपर[1]।

उपर्युक्त पंक्तियों में निराला कविजीवन के अवसादपूर्ण स्थितियों को स्पष्ट किया है ।

छायावाद के बाद की कविता में लगभग सभी कवियों की कविताओं में इस तरह के प्रयोग दिखाई पड़ते हैं क्योंकि उनकी सम्प्रेषण पद्धति ही व्यंग्यमूलक है। शमशेर बहादुर सिंह की कविता -

> एक पीली शाम
> पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता
> शान्त
> मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल
> कृशम्लान हारा सा[2]।

आर्थी व्यंजना की दृष्टि से छायावादी कविता {निराला को छोड़कर} प्रभावशाली नहीं है। इसके उदाहरण कहीं-कहीं ही दिखाई पड़ते हैं। निराला की कविताओं में बाद की (विशेषकर) उनके अन्तिम चरण की कविताओं में ही इस तरह के प्रयोग अधिक हैं। जबकि छायावाद के बाद की कविता जनजीवन की यथार्थ संवेदनाओं एवं विसंगतियों की अभिव्यक्ति होने के कारण आर्थी व्यंजना का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है। क्योंकि इन कवियों की सम्प्रेषण पद्धति ही व्यंग्यमूलक है।

1- निराला रचनावली, भाग-1, पृ0-299.
2- कुछ कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, पृ0-21.

व्यंजना के उपर्युक्त विश्लेषण के बाद काव्यभाषा संरचना की दृष्टि से निम्नलिखित निष्कर्ष उभरकर सामने आते हैं -

1- छायावादी कविता में लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है। जबकि निराला की कविताओं में अभिधामूला शाब्दी व्यंजना का भी कलात्मक प्रयोग दिखाई पड़ता है। इसके विपरीत छायावाद के बाद की कविता में अभिधामूला शाब्दी व्यंजना का प्रयोग अत्यन्त कम तथा लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना का भी अधिक प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता।

2- आर्थी व्यंजना की दृष्टि से छायावादी कवियों में वाच्यसम्भवा आर्थी व्यंजना और लक्ष्यसम्भवा आर्थी व्यंजना का प्रयोग कहीं- कहीं दिखाई पड़ता है जबकि व्यंग्यसम्भवा आर्थी व्यंजना का प्रयोग न के बराबर है।

3- छायावाद के बाद की कविता अपनी व्यंग्यमूलक अभिव्यक्ति प्रणाली के कारण आर्थी व्यंजना का प्रचुर प्रयोग दिखाई पड़ता है। ये व्यंग्यार्थ अधिकतर जनजीवन की विसंगतियों से ही जुड़कर आए हैं।

4- छायावादी कविता की शाब्दी व्यंजना अधिकतर प्रकृति के सहारे ही अभिव्यक्त हुई है।

विरोधाभास

आधुनिक हिन्दी कविता में विरोधाभास विसंगति एवं विरोधक का अर्थ लेकर आया है। कवियों द्वारा प्रयुक्त यह विरोधाभास वस्तुत: वक्रोक्ति का अर्थ देता है। अर्थात् इसके सहारे कवि वर्ण्य-वस्तु के साथ-साथ उसमें छिपे संकेतों एवं सन्दर्भों को भी व्यक्त कर देता है जो मूलत: विरोधी दृष्टिगत होते हैं। छायावादी कविता से यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई पड़ती है। जिसका प्रमुख कारण छायावादी की रहस्य- कल्पना मूलक प्रवृत्ति तथा जीवन के स्तर पर कटु सामाजिक यथार्थ का द्वन्द्व रहा है। प्रसाद, महादेवी तथा निराला में ही यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। प्रसाद तथा महादेवी की कविताओं में रहस्य कल्पनावादी प्रवृत्ति मुख्यरूप से दिखाई पड़ती है जबकि निराला की बाद की कविताओं में यह प्रवृत्ति गौण हो गई है और विरोध प्रभावी होकर कविताओं में स्थान पाया है। "राम की शक्तिपूजा", कुकुरमुत्ता आदि कविताएँ इस दृष्टि से देखी जा सकती हैं -

> करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल,
> लख महानाश शिव अचल हुए क्षण भर चंचल,
> श्यामा के पदतल भारधरण हर मन्द्रस्वर,
> बोले- सम्वरो देवि, निज तेज नहीं वानर ।[1]

गम्भीर अस्तित्व संकट के क्षण अचल का भी चंचल हो जाना जगत की कल्याणमयी भावना के लिए सर्वथा उचित है लेकिन यह रचनाकार के व्यक्तिगत संशय एवं संघर्ष से जुड़कर और भी प्रभावी हो उठा है। महादेवी एवं प्रसाद की कविताओं में यह विरोध-वक्रता काफी कुछ ब्रह्म की रहस्यमयी भावना की ओर संकेत करती है। महादेवी की कविता -

---

1- निराला रचनावली, भाग - 1 {राम की शक्तिपूजा}, पृ0- 313.

हँस उठे छूकर टूटे तार
प्राण में मँडराया उन्माद
व्यथा मीठी ले प्यारी प्यास
सो गया बेसुध अन्तर्नाद
घूँट में थी साकी की साध
सुना फिर फिर जाता है कौन ?

इस तरह की संकेतमयी वर्णनशैली छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता है जो विरोधाभास के माध्यम से ही कविता में आई है। प्रकृति के आश्चर्यमूलक कार्यों एवं परमसत्ता के संकेत के लिए इस तरह की योजना अधिक दिखाई पड़ती है।

छायावाद के बाद की कविताओं में विरोधाभासों का आधुनिक सामाजिक यथार्थ के द्वन्द्वों, मानव के आन्तरिक विरोधगत द्वन्द्वों को स्पष्ट करने के लिए विरोधाभास का उपयोग कवियों ने किया है। हिन्दी कविता में द्वन्द्वों की जटिलता के साथ इसका प्रभावशाली उपयोग कवियों द्वारा हुआ है। अज्ञेय की कविता -

1- भरी आँखों की करुणा- भीख, रिक्त हाथों से अंजलि-दान,
पूर्ण में सूने की अनुभूति- शून्य में स्वप्नों का निर्माण ।[1]

2- तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान
मृतक में भी डाल देगी जान
धूलि- धूसर तुम्हारे ये गात -----
छोड़कर तालाब मेरी झोपड़ी में खिल रहे जलजात
परस पाकर तुम्हारा ही प्राण
पिघल कर जल बन गया होगा कठिन पाषाण ।[2]

1- सदानीरा, भाग- 1, अज्ञेय, पृ0- 126.
2- सतरंगे पंखों वाली : नागार्जुन, पृ0- 49.

इसमें स्पष्ट है कि इन कवियों में मानव के आन्तरिक मानसिक द्वन्द्वों एवं भावों को स्पष्ट करने की कोशिश की जबकि इसके बाद यह प्रवृत्ति और अधिक यथार्थपरक होकर समाज के पूरे सन्दर्भ को स्पष्ट करने लगती है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता -

> छोड़ की मुझको जरूरत नहीं है रहने दो -
> इस बची राख को अब कोई क्या जलायेगा ।
> चूस डाली हो जमाने ने रोशनी जिसकी[1]
> वह बुझा दीप उजाले में कौन लायेगा ।

आज के समाज में किसी व्यक्ति के संघर्ष की क्या अन्ततः परिणति होती है इसका आभास कवि देने की कोशिश की है। क्रान्ति की अन्ततः परिणति समझौता में होकर समाप्त हो जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण के पश्चात् निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि -

1- छायावादी कविता में रहस्य एवं प्रकृति के वर्णन प्रसंग में विरोधाभासमूलक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है ।

2- छायावादी कविता में प्रसाद एवं महादेवी के विरोधाभास संस्कृत के विरोधाभास अलंकार के अधिक निकट है जबकि निराला के विरोधाभास वक्रोक्ति के निकट है ।

3- छायावाद के बाद की हिन्दी कविता में विरोधाभास पूर्णतः अंग्रेजी "पैराडाक्स" के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह विरोधाभास जहाँ लोगों के आंतरिक संघर्षों को स्पष्ट करता है वहीं समाज के यथार्थ- को भी सम्प्रेषित करने में भी सफल है ।

1 काठ की घंटियाँ, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ 17

विडम्बना

कवि कविता में विडम्बना का उपयोग जीवन के जटिल भावबोधों को स्पष्ट करने के लिए करता है। ये भावबोध लोगों के अन्त:सम्बन्धों, यथार्थ एवं गलाकाट स्वार्थ से उपजी विक्षिप्तता, कुण्ठा, जनजीवन के सामान्य वर्ग में व्याप्त निराशा, जीवन के प्रति टूटता हुआ विश्वास, और उपजता अविश्वास, पराजय और घुटन का संकेत करते हैं। सृजन के स्तर पर सर्जक इन अनुभव सन्दर्भों को अभिव्यक्ति देने के लिए विडम्बना का सहारा लेता है। विडम्बना के उपयोग के समय कवि रचना में गम्भीर भी रहता है। कवि द्वारा प्रयुक्त शब्द एवं सन्दर्भ का शरारतपूर्ण संयोजन सन्दर्भ की गम्भीरता में हलकापन ला देता है। कवि विडम्बना में जीवन की सम्पूर्ण अति- यथार्थ स्थितियों को नाटक के रूप में स्वीकार करके फिर उसे नाटकीय सम्प्रेषण पद्धति के सहारे अभिव्यक्ति देता देता है। कविता में क्रीड़ाभाव से उत्पन्न होने वाली विडम्बना अभी तक हिंदी कविता में उचित स्थान नहीं मिला है। विडम्बना में सामान्यत: व्यंग्य, विनोद, हास्य एवं कटूक्ति को समाहित किया जाता है और इसी के सहारे कविता में प्रयुक्त होता है।

आधुनिक हिन्दी कविता की दृष्टि से विडम्बना, छायावाद में निराला की कुछ कविताओं को छोड़कर अन्य किसी भी कवि द्वारा प्रयुक्त नहीं हुआ है। इसका प्रमुख कारण छायावादी कविता का वर्ण्य- विषय है। छायावादी कवियों की कविताओं में भावुकता, कल्पना- विलास, रहस्य- मयता और यथार्थ से अलगाव ही प्रमुख प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। केवल निराला ने ही व्यंग्य एवं हास्य के सहारे विडम्बना का कुछ प्रयोग किया है। उनकी ये कविताएं तत्कालीन परिवेश पर कटु कटु- व्यंग्य हैं। इन कविताओं में जनसामान्य की उपेक्षा, उसके शोषण, उसके अपमान, उसकी निराशा, उसकी सहनशीलता और घोर विपत्तियों में भी जीवन के प्रति उसकी भोली- भाली

बेलाग निष्ठा तथा सहज विनम्रता भरा आत्मविश्वास - जनसाधारण के चरित्र की इस सच्चाई को निराला ने बड़ी गहराई से और सम्पूर्णत: पहचाना है। उनकी कुकुरमुत्ता कविता -

> चीन में मेरी नकल छाता बना
> छत्र भारत का वही कैसा तना ।
> सब जगह तू देख ले
> आज का फिर रूप पैराशूट ले
> उलट दे मैं ही जसोदा की मथानी
> और भी लम्बी कहानी -
> सामने ला मुझे कर बेंड़ा
> देख बेंड़ा
> तीर से खींचा धनुष मैं राम का
> काम का
> पड़ा कन्धे पर हूँ हल बलराम का
> सरलता मैं फ्राड
> "कैपीटल" में जैसे लेनिनग्राड
> सब समझ जैसे रकीब
> लेखकों में लण्ठ जैसे खुशनसीब[1] ।

इसमें निराला विनोदवृत्ति के सहारे हर छन्द में एक कटु व्यंग्य की योजना की है लेकिन उस व्यंग्य का सीधा संक्रमण कविता के मूल व्यंग्य में सहसा नहीं होता दीखता। "सरलता मैं फ्राड" कहकर कवि अगली पंक्ति का गम्भीर व्यंग्य सार्थक करना चाहता है और ऐसा ही व्यंग्य "लेखकों में लण्ठ जैसे खुशनसीब" में भी है। हास्य एवं विनोद वृत्ति के सहारे कटु यथार्थ एवं उससे उपजा व्यंग्य को सम्प्रेषित करने की उनकी विडम्बना पद्धति अन्य किसी छायावादी कवि में नहीं दिखाई पड़ती। इस दृष्टि से कुकुरमुत्ता के अतिरिक्त रानी और कानी, गर्म पकौड़ी, मास्को डायेलाग्स, बादलराग तथा अन्य गीतों में इसके उदाहरण मिलते हैं ।

1- निराला रचनावली, भाग- 2, पृ0- 47.

छायावाद के बाद की कविता में विडम्बना का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। जिसका प्रमुख कारण कवियों द्वारा समाज तथा जीवन के यथार्थ को चित्रण करने का प्रयास है। इस प्रयास में कवियों ने जटिल भावबोधों को स्पष्ट करने के लिए इस नाटकीय सम्प्रेषण पद्धति का सहारा लिया है। डॉ० नामवर सिंह का आधुनिक कविता में इसके प्रयोग के सम्बन्ध में कहना है कि, "सम्पूर्ण स्थिति को एक नाटक के रूप में स्वीकार करना और फिर नाटकीय बुनावट के साथ उसे काव्यबद्ध करना तथाकथित"सिनिसिज्म" का रचनात्मक उपयोग है। फिर यह नाटकीय प्रस्तुति त्रासदी भी हो सकता है, कामदी भी, और दोनों के बीच स्थित कोई अन्य रूप तथा दोनों के मिश्रण का कोई नया प्रयोग भी । ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मीकान्त वर्मा के "शरारतपूर्ण सह संयोजन" में नाटकीयता के विभिन्न रूपों के लिए पूरी गुंजाइश नहीं। इसी प्रकार यदि प्रभाकर माचवे, रघुवीरसहाय और श्रीकान्त वर्मा की क्रीड़ापरक कविताओं की तुलना की जाय तो उनमें भी परस्पर पर्याप्त अन्तर दिखाई पड़ेगा और यह अन्तर काव्य संरचना से लेकर भावबोध और मूल्यबोध तक में प्रतिबिम्बित मिलेगा। माचवे में जहाँ कौतुक मात्र की प्रधानता है, रघुवीरसहाय और श्रीकान्त वर्मा में क्रीड़ायुक्त गंभीरता है। इन दोनों ही कवि कविता के नाटकीय विन्यास में त्रासदीय और कामदीय तत्त्वों की बुनावट द्वारा उपलब्ध करते हैं --------- कुँवर नारायण ने "तीसरा सप्तक" के अन्तर्गत् अपने वक्तव्य में इस नाटकीय विशेषता को रेखांकित करते हुए कहा है कि, "जीवन के इस बहुत बड़े कार्निवाल में कवि उस बहुरूपिए की तरह है जो हजारों रूपों में लोगों के सामने आता है, जिसका हर मनोरंजन रूप किसी-न-किसी सतह पर जीवन की एक अद्भुत व्याख्या है और जिसके हर रूप के पीछे उनका एक अपना गम्भीर और असली व्यक्तित्व होता है जो इस विविधता के बुनियादी खेल को समझता है। नि:सन्देह इस कथन में कुँवर नारायण का अभिप्राय किसी एक कविता के नाटकीय विन्यास से नहीं बल्कि कवि व्यक्तित्व के बहुरूपियापन से है और हजारों रूपों

से भी तात्पर्य सम्भवत: अलग- अलग कविताओं में पाये जाने वाले बहुरंगी चित्रों से है।" इन आधुनिक कवियों ने यथार्थ चित्रण में विडम्बना के सभी पक्षों हास्य, व्यंग्य, विनोद, कटूक्तियों आदि का उपयोग किया है। इस दृष्टि से रघुबीर सहाय, नागार्जुन, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, मुक्तिबोध आदि महत्वपूर्ण हैं। व्यंग्य की दृष्टि से रघुबीर सहाय की कविता -

> मेरे प्राणों के पहिये भूमि बहुत नाप चुके
> सिनेमा की रीलों सा कस के लिपटा है सभी कुछ
> मेरे अन्दर
> कमानी खुलने को भरती है उमास
> लो सुनो, हल्ला हो, कहना है सुनो
> तुमसे मुझे
> किन्तु ठहरो तो, शायद
> इससे भी अच्छी कोई बात याद आ जाये।[2]

इसमें कवि लोगों के विचारों के रूढ़िबद्ध होने की बात की है जो अपनी जकड़न को तोड़ना चाहती है, लेकिन वह कई प्रकार के संकोच एवं संस्कार के चलते विवश है। इन कवियों ने कटूक्तियों का भी सहारा लिया है -

> दिन के बुखार
> रात्रि की मृत्यु
> के बाद हृदय पुंसत्वहीन,
> अन्तर्मनुष्य
> कि रिक्त - सा गेह
> दो लालटेन से नयन दीन
> निष्प्राण स्तम्भ
> दो खड़े पाँव
> लकड़ी का खोखा वक्ष रिक्त,
> मष्तिष्क तेल
> की है मशीन
> संसार- क्षेत्र है तेलसिक्त।[3]

1- कविता के नये प्रतिमान : डॉ० नामवर सिंह, पृ०- 155.
2- दूसरा सप्तक : (रघुवीर सहाय) : सं० अज्ञेय, पृ०- 165.
3- तारसप्तक (मुक्तिबोध) : अज्ञेय, पृ०- 59- 60.

इसमें कई कटूक्तियों द्वारा यथार्थ जगत में उपजते विसंगतियों को उभारने की चेष्टा की है ।

आधुनिक यथार्थ विसंगतियों को हास्य एवं विनोद वृत्ति के सहारे हल्के-फुल्के ढंग से उभारने में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और नागार्जुन सिद्धहस्त हैं। सर्वेश्वर की कविता -

दे रोटी ?
गई कहाँ थी बड़े सबेरे
कर चोटी ?
लाला के बाजार में
मिली दुअन्नी
पर वह भी निकली खोटी,
दिन भर सोयी,
बीच बाज़ार में बैठ के रोयी
साँझ को लौटी
ले खाली झोआ ।

चुपाई मारौ दुलहिन
मारा जाई कौआ ।

उपर्युक्त पंक्तियों में रोटी के लिए चोटी करके बड़े सबेरे लाला के बाजार में जाने में छिपे सन्दर्भों एवं संकेतों को कवि ने विनोदवृत्ति के सहारे स्पष्ट करने की कोशिश की है ।

उपर्युक्त विवेचन के बाद निष्कर्ष रूप में निम्नलिखित तत्त्व प्राप्त होते हैं -

1- छायावादी कविता में उसकी काव्य-प्रकृति के कारण विडम्बना, का प्रयोग निराला को छोड़कर अन्य किसी कवि में नहीं प्राप्त होता है।

1- काठ की घंटियाँ : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ0- 144.

2- निराला ने कविताओं में यथार्थ जीवन की कटु विसंगतियों को स्पष्ट करने के लिए हास्य एवं विनोद के द्वारा विडम्बना का उपयोग किया है ।

3- छायावाद के बाद की कविता में विडम्बना का अत्यन्त कलात्मक एवं प्रभावशाली उपयोग मुक्तिबोध , सर्वेश्वर एवं रघुबीर सहाय की कविताओं में विशेष रूप से दिखाई पड़ता है ।

4- कविता के विकास के साथ-साथ जटिल होते सम्बन्धों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति देने के लिए आधुनिक कवियों में विडम्बना का उपयोग बढ़ता गया है। व्यंग्य एवं वक्रोक्ति यद्यपि इसमें कवियों के रुचिकर साधन हैं लेकिन अधिक जटिल भावबोध को हास्य एवं विनोद का सहारा लेकर प्रस्तुत किया गया है ।

=========

षष्ठम् अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

काव्यभाषा की संरचना से तात्पर्य उसकी अन्तः एवं बाह्य रचना प्रक्रिया से है। सृजन के क्षणों में कवि रचना प्रक्रिया से जुड़कर संरचना के विभिन्न अवयवों यथा- संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण, लिङ्ग, अलंकार, प्रतीक, बिम्ब आदि के सहयोग से ही कविता का निर्माण करता है। कवि संरचना के स्तर पर युगानुरूप परिवर्तन करके कविता एवं भाषा में जीवन्तता बनाये रखता है। कविता के भाषिक, शैल्पिक एवं लयात्मक अंगीभूत घटकों का क्रमविन्यास और उसकी पारस्परिक संगति ही काव्यभाषा संरचना कही जाती है। आलोचकों का मानना है कि आधुनिक कविता में आए बदलाव के कारण प्राचीन रस सिद्धान्त का आस्वाद जरूरी न होकर कविता की समझ जरूरी हो गई है। ऐसी स्थिति में कविता की संरचना को समझना बेहद जरूरी है। जो साधारण भाषा से भिन्न एक विशिष्ट भाषिक संरचना है जिसमें तीन तत्वों- वैदग्ध, विरोधाभास और वक्रता की उपस्थिति आवश्यक मानी गई है। कविता के निर्माण में काव्यभाषा संरचना के व्याकरणिक अवयवों एवं बिम्ब, प्रतीक आदि की प्रमुख भूमिका रहती है। अतः कविता के अध्ययन का मुख्य आधार इन्हीं अवयवों को बनाया जाता है। इन अवयवों के कविता में प्रयुक्त होने के बीच अनेक प्रकार की जटिलताएँ भी आती हैं जिसका निराकरण एवं उचित सामंजस्यपूर्ण संतुलन कवि को स्थापित करना पड़ता है।

आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा के पूर्व हिन्दी काव्यभाषा संरचना का विकास दो स्थितियों से होकर गुजरा जिसे हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु-युग और द्विवेदी- युग कहते हैं। भारतेन्दुयुगीन काव्यभाषा संरचना शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है इसमें तत्सम, तद्भव, देशज तथा विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ है। क्रिया एवं मुहावरों का भी कलात्मक प्रयोग दृष्टिगत होता है।

शैल्पिक संरचना में अलंकार प्रधान रहे हैं जबकि आन्तरिक संरचना में परम्परागत छन्दों एवं लोकधुनों का महत्व है। द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा संरचना व्याकरणिक दृष्टि से संस्कृत से प्रभावित है। तथा शब्दों एवं अन्य रूपों का भी पारम्परिक ढंग से प्रयोग हुआ है। शैल्पिक संरचना में अलंकारों का महत्व बना हुआ है, साथ ही साथ प्रतीक आदि की भी महत्ता मान्य होने लगी है, आन्तरिक संरचना का रूप संस्कृत के छान्दिक रूपों पर भी आधारित है।

आधुनिक हिन्दी काव्यभाषा संरचना में व्याकरणिक संरचना का महत्व क्रमशः बढ़ता गया है। वर्ण विन्यास परम्परागत ही है और इसका प्रयोग सामान्यतः नाद सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए किया गया है। शब्द की दृष्टि से काव्यभाषा को समृद्ध करने के लिए छायावादी कवियों ने संस्कृत को आधार बनाया है। जबकि छायावादोत्तर कवियों ने जनसामान्य बोलचाल की भाषा को आधार बनाया है। इसके अतिरिक्त पूरे विवेच्यकाल में विदेशी भाषा के शब्दों विशेषकर अंग्रेजी, अरबी- फारसी का भी काफी प्रयोग दिखाई पड़ता है। वाक्यविन्यास में परम्परागत छन्दमूलक वाक्ययोजना को छोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है तथा सहायक क्रियाओं के प्रचुर प्रयोग से वाक्यविन्यास में प्रायः सहजता आ गई है। छायावादी कविताओं में संज्ञा की दृष्टि से भाववाचक संज्ञापदों का प्रयोग अधिक है जो अधिकांशतः विशेषण की सहायता से निर्मित हैं। कविता में अर्थ एवं भाव के विस्तार के लिए व्यक्तिवाचक संज्ञा के साभिप्राय पर्याय रूप शब्दों का कलात्मक प्रयोग हुआ है। छायावाद काव्य में प्रकृति एवं रहस्य सम्बन्धी कविताओं का अधिक वर्णन होने के कारण पुरुषवाचक सर्वनामों का अधिक प्रयोग हुआ है। रहस्यमूलक शक्तियों से अधिक निकट का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए इन कवियों ने मूल सर्वनामों के विकारी रूपों का अधिक प्रयोग किया है। "मैं" सर्वनाम का अध्ययन करने से ही छायावादी कवियों की अहं वादी प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है। क्रियाओं की दृष्टि से छायावाद की कविताओं में भूतकालिक क्रियाओं के माध्यम से कवियों ने मानसिक कार्य-व्यापार के सूक्ष्म एवं अछूते पहलुओं

को उभारने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त इन कवियों ने भावों एवं सन्दर्भों पर बल देने के लिए क्रियाओं का द्वित्व प्रयोग भी किया है। नये कवियों ने काव्य में अधिक सम्प्रेषणीयता लाने के लिए देशज एवं ग्राम्य क्रियाओं का प्राय: सन्निवेश किया है। छायावादी कवियों में कारक चिह्नों को छोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। विशेषकर सम्प्रदान, अपादान एवं सम्बोधन कारक चिह्नों को। कविता में कलात्मकता लाने के लिए कारक विपर्यय का प्रयोग भी कहीं- कहीं दिखाई पड़ता है। विवेच्यकाल में विशेषणों का प्रयोग वर्ण्य एवं सन्दर्भ के साथ-साथ अभिप्रेत अर्थ को स्पष्ट करने के लिए किया गया है। ये विशेषण अधिकतर भाव सादृश्य को ध्यान में रखकर प्रयुक्त हुए हैं। लिङ्ग प्रयोग की दृष्टि से विवेच्यकाल के कवि सामान्यत: लिङ्ग- विपर्यय का ही प्रयोग कर कविता में कलात्मकता उत्पन्न करते हैं। इसी तरह की प्रवृत्ति वचन के प्रयोग में भी दिखाई पड़ती है। काल की दृष्टि से विवेच्य-कालीन कवियों ने भूतकाल एवं भविष्यकाल के द्वारा वर्तमान जीवन सन्दर्भों को भी उभारने का प्रयास किया है। प्रत्यय की दृष्टि से विवेच्यकाल में आवश्यकतानुरूप देशी- विदेशी सभी प्रकार के प्रत्ययों का उपयोग हुआ है। छायावादी काव्य में अधिक-तर संस्कृत के उपसर्गों का सहारा लिया गया है जबकि छायावादोत्तर काव्य में देशज, संस्कृत एवं विदेशी सभी जगह से उपसर्गों का ग्रहण है। छायावाद की कवि-ताओं में कहीं- कहीं जटिल सामासिक प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है जबकि छायावादो-त्तर कवियों में रूढ़ सामासिक प्रवृत्ति का पूरी तरह से त्याग दिखाई पड़ता है।

हिन्दी काव्यभाषा की व्याकरणिक संरचना का रूप कविता में यथावत् रहता है लेकिन काव्यभाषा की शैल्पिक संरचना में नये रूपों के जुड़ने की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। इस दृष्टि से काव्य का सबसे पुराना रूप अलंकार है। पुराने काव्य में अलंकार कविता का मुख्य शोभाकारक धर्म था जबकि आधुनिक कविताओं में इसका महत्व क्रमश: क्षीण होता गया है। आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकारों का मुख्य प्रयोग सादृश्यविधान के लिए हुआ है। सादृश्य अलंकार की अनिवार्यता है क्योंकि इसके प्रयोग से वर्ण्य को अर्थज्ञापन के साथ-साथ सौन्दर्यबोध के सम्पूर्ण सन्दर्भों एवं

मानसिक संवेदे संवेदना में भी काफी बदलाव आ जाता है। छायावादी कवियों ने इन सादृश्यमूलक अलंकारों की सहायता से कविता में अपनी वर्ण्यवस्तु, विस्तार, कल्पना एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति के सहारे चमत्कृति, भावोत्कर्ष, जिज्ञासा, कौतूहल आदि की योजना की है। छायावादी कवियों ने परम्परित उपमानों की योजना की है जबकि नये कवियों ने परम्परा से हटकर नवीन उपमानों को कविता में स्थान दिया है।

विवेच्यकाल में भाव एवं अर्थ सम्प्रेषण के लिए प्रतीकों का उपयोग हुआ है। छायावादी कवियों ने प्रतीकों का चयन अधिकतर प्रकृति, संस्कृति एवं इतिहास से किया है। इनके अधिकांश प्रतीक बिम्बमूलक प्रतीक हैं जो अधिकतर प्रभावसाम्य पर आधारित हैं। छायावाद के बाद की कविताओं में प्रतीक कविता के आधार-भूत अंग के रूप में उभरे हैं। इन कवियों द्वारा प्रयुक्त ये प्रतीक मानव जीवन के प्राकृतिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों से ग्रहण किए गए हैं। इन कवियों ने घिसे- पिटे पुराने प्रतीकों को छोड़कर आधुनिक उपभोक्तावादी जटिल जीवनबोध की संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने के लिए नये प्रतीकों का चयन किया है। छायावाद के कवियों ने अमूर्त प्रतीकों का उपयोग अधिक किया है जबकि छायावादोत्तर कवियों ने अपने वर्ण्य विषय की माँग के अनुसार मूर्त्त प्रतीकों को अधिक प्रयुक्त किया है।

बिम्ब की सहायता से विवेच्यकाल में सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावछवियों को उभारने की कोशिश दिखाई पड़ती है। छायावादी काव्य में यदि एक ओर धर्मबिम्बों की सहायता से पुराने सन्दर्भों को उभारने एवं प्राचीन सांस्कृतिक बोध को स्पष्ट करने की चेष्टा है तो दूसरी ओर लोकबिम्ब प्रकृति एवं संस्कृति से जुड़कर श्रृंगारिक अनु-भूतियों और मनोगत भावों को उजागर करते हैं। ऐन्द्रिय दृश्यव्यापार के द्वारा रहस्य एवं कल्पना भी स्पष्ट की गयी है। छायावाद के बाद की कविता में लोक-बिम्बों का उपयोग अधिक हुआ है जिसके सहारे जीवन के समस्त पक्षों की विसंग-तियों को उभारने की कोशिश है। भावबिम्बों के सहारे ये कवि अपनी स्वयं की

भोगी हुई अथवा जनसामान्य वर्ग की विषमताओं और संघर्षों को अभिव्यक्ति दी है। अनुभवबिम्बों के द्वारा जीवन के सामाजिक यथार्थपरक अनुभवों को व्यक्त किया गया है। ये कवि सैद्धान्तिक रूप से किसी न किसी विचारधारा से जुड़े हुए हैं अतः कविता में अपने वैचारिक दृष्टिकोण को रखने के लिए इन्होंने विचार बिम्बों का सहारा लिया है।

मिथक प्रयोग की दृष्टि से छायावादी कवियों में निराला एवं दिनकर ने ही मिथकों का उपयोग अपनी कविता को प्रभावी बनाने के लिए किया है और वे भी मिथक अत्यन्त साधारण कोटि के ही हैं। ये मूलतः देश सम्बन्धी या इतिहास धर्मी मिथक हैं जबकि बाद के कवियों ने सभी प्रकार के मिथकों का सर्जनात्मक प्रयोग किया है। इन मिथकों के द्वारा समाज एवं व्यक्ति के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विद्रूपताओं को स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त छायावादी कविता में मिथक मात्र भारतीय सन्दर्भ से ही गृहीत हैं जबकि उसके बाद के कवियों ने सभी धर्मों एवं राष्ट्रों से मिथकों को ग्रहण किया है। छायावाद में फैंटसी का प्रयोग नहीं के बराबर मिलता है। छायावाद के बाद की कविताओं में भी यह सीमित रूप में दिखाई पड़ता है जिसके सहारे कवियों ने जीवन के आन्तरिक अनुभवों और भावी स्थितियों को रखने की कोशिश की है। आधुनिक कवियों में मुक्तिबोध ने इसे महत्व प्रदान किया और कविता में जीवन के अनेक सन्दर्भों को उभारने के लिए इसका प्रयोग किया है।

आन्तरिक संरचना में लय की सर्वाधिकमहत्वपूर्ण भूमिका है। इसकी सहायता से सामान्य पाठक भी कवि की अनुभूतियों को सहजतापूर्वक ग्रहण करता है। कविता में लय को रखने के लिए वर्ण एवं मात्राओं के समानुपातिक संतुलन, तुक- व्यवस्था, विराम तथा लघु- गुरू योजना का कलात्मक उपयोग करना पड़ता है। विवेच्यकाल की कविताओं में लयों की योजना कई तरह से की गई है। परम्परागत शास्त्रीय लय का विधान दो प्रकार से किया गया है, प्रथम प्रचलित पुराने छन्दों को उनके मात्रा, विराम आदि नियमों के साथ कविता में स्थान देकर दूसरे इन प्राचीन संस्कृत के छन्दों के केवल लय को ही ग्रहण करके। इसके अतिरिक्त दो या अधिक

छन्दों की मात्राओं को जोड़कर एक नये छन्द की भी योजना इनकी कविताओं में दिखाई पड़ती है। साथ ही नये कवियों ने उर्दू, फारसी, चीनी, जापानी आदि भाषाओं के छन्दों को उनकी लयात्मक प्रवृत्ति के अनुसार अपनी कविताओं में प्रयोग किया है। परम्परागत शास्त्रीय लयों के अतिरिक्त मुक्तलय का प्रयोग भी विवेच्य कविताओं में कई रूपों में दिखाई पड़ता है। इन कवियों ने संगीत की राग- रागनियों, नाद, ताल, आरोह- अवरोह आदि के प्रवाह के साथ कविता में शब्दों को संचालित करने की कोशिश की है। इनकी कविताओं में मुक्त छन्द के भी प्रयोग हुए हैं, इनमें भावानुकूल असमान स्वच्छन्द गति एवं यतिविधान की योजना की गई है। इसके अतिरिक्त इन कवियों ने लोकगीतों के लयों को भी ग्रहण करके उसके आधार पर काव्य-रचना की है। छायावाद के बाद के कवियों ने अपनी कविताओं में अर्थलय के प्रयोग की भी बात की है। व्यंजना की दृष्टि से विवेच्यकाल की कविताओं में सांकेतिकता लाने की कोशिश दिखाई पड़ती है। छायावाद की कविता जहाँ लक्ष्यार्थमूलक प्रवृत्तियों के निकट है वहीं छायावादोत्तर कविता व्यंग्यार्थमूलक प्रवृत्तियों के अधिक निकट है। विरोधाभास की दृष्टि से विवेच्यकाल में छायावादी कवियों ने प्रकृति एवं ईश्वर के रहस्य की ओर अधिक संकेत किया है। जबकि छायावादोत्तर कवियों ने इसके सहारे समाज के यथार्थ को सम्प्रेषित करने की कोशिश की है। कविता के विकास के साथ-साथ जटिल होते सम्बन्धों को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति देने के लिए आधुनिक कवियों ने विडंबना का प्रयोग किया है। व्यंग्य इन कवियों का प्रियव साधन है साथ ही अधिक जटिल भावबोध को हास्य एवं विनोद का सहारा लेकर प्रस्तुत किया है।जबकि छायावाद में ये माध्यम बहुत कम प्रयुक्त हुए हैं ।

परिशिष्ट

सन्दर्भ - ग्रन्थ - सूची

संस्कृत ग्रन्थ -

1- काव्यालंकार - आचार्य भामह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, सम्वत् 2019.

2- काव्यादर्श - आचार्य दण्डी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1984, तृतीय संस्करण

3- ध्वन्यालोक - आचार्य आनन्दवर्धन, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, सं0- 2035.

4- साहित्यदर्पण - आचार्य विश्वनाथ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली नवम् संस्करण- 1977.

5- औचित्य विचार चर्चा : आचार्य क्षेमेन्द्र, चौखम्बा ओरियण्टालिया, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 1982.

6- वक्रोक्तिजीवित : आचार्य कुन्तक, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी।

7- काव्यप्रकाश : आचार्य मम्मट, साहित्य भण्डार, मेरठ, प्र0 सं0, सन् 1960 ई0.

अंग्रेजी ग्रन्थ -

1- ऑन पोयट्री ऐण्ड पोयट्स : टी0 एस0 इलियट, फेबर ऐंड फेबर लिमिटेड, लन्दन, पंचम संस्करण, 1969.

2- प्रिंसिपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म : आई0 ए0 रिचर्ड्स

3- द वेल रॉट अर्न : क्लीँथ ब्रुक्स, संस्करण 1968, डेनिस डाबसन, लि0 लंदन

4- द वर्ल्ड्स बॉडी : जॉन क्रो रैंसम, न्यूयार्क ऐण्ड लंदन, संस्करण 1937.

5- साहित्य सिद्धान्त : रेने वेलेक एवं आस्टिन वारेन, अनु0 बी0 एस0 पालीवाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

हिन्दी ग्रन्थ

काव्यसंग्रह

1- भारतेन्दु समग्र : सम्पादक हेमन्त शर्मा, हिन्दी प्रचारक संस्थान, तृतीय संस्करण, 1989 ई0

2- भारतेन्दु ग्रन्थावली : सं0 ब्रजरत्नदास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सम्वत् 2010•

3- प्रियप्रवास : अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, खड्गविलास प्रेस पटना, प्र0 सं0 1913 ई0

4- प्रसाद ग्रन्थावली, भाग-1, सम्पादक- रत्नशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 1989•

5- निराला रचनावली, भाग-1 एवं 2, सम्पादक नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र0 सं0, सन् 1983•

6- पन्त ग्रन्थावली, भाग 1 एवं 2 सम्पादक शान्ति जोशी, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, प्र0 सं0 1989•

7- तारसप्तक : सं0 अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं0 1943•

8- दूसरासप्तक: सं0 अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं0 1951

9- तीसरा सप्तक :सं0अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0सं01959

10- सदानीरा, भाग 1 और 2 : अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, प्र0 सं0 1986•

प्रताप लहरी : प्रताप नारायण मिश्र, भीष्म ऐण्ड ब्रदर्स, कानपुर, सन् 1949•

प्रेमघन सर्वस्व : सं0 प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, प्र0 सं0, सम्वत् 2007•

प्रियप्रवास :: हरिऔध, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी, प्र0सं0 2008•

वैदेही वनवास : हरिऔध, हिन्दी साहित्य कुटीर, वारा0, प्र0 सं01996•

साकेत : मैथिलीशरण गुप्त, साकेत प्रकाशन झाँसी, सम्वत् 1986•

हिडिम्बा : मैथिलीशरण गुप्त, साकेत प्रकाशन, झाँसी, सम्वत् 2026·
यशोधरा : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव झाँसी, सम्वत् 2028;
यामा रश्मि: महादेवी वर्मा, साहित्य सदन, प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद सन् 1983·
नीरजा, दीपशिखा : महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र०सं० 1942·
हुंकार : रामधारी सिंह दिनकर, अजन्त प्रेस, पटना, सन् 1952 (प्रथम संस्करण)
रश्मिरथी: रामधारी सिंह दिनकर, अजंता प्रेस, पटना, सन् 1952 (प्रथम संस्करण)
रसवन्ती : रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल पटना, सन् 1946 (प्रथम संस्करण)
मधुशाला : हरिवंशराय बच्चन, प्रयाग सेण्ट्रल बुक, इलाहाबाद सन् 1949 (प्र०सं०)
मधुकलश : हरिवंशराय बच्चन, सेण्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, सन् 1947 (प्र०सं०)
निशानिमंत्रण : हरिवंशराय बच्चन, भारती भण्डार, प्रयाग, सन् 1944 (प्र०सं०)
मिलनयामिनी: भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् 1950 (प्र०सं०)
अनुपस्थित लोग : भारतभूषण अग्रवाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1965
ओ अप्रस्तुत मन : भारतभूषण अग्रवाल, लोकभारती भोपाल, प्र०सं० 1958 ई०
नाश और निर्माण : गिरिजा कुमार माथुर, मेहता ऐण्ड संस, लाहौर, प्र०सं० 1946ई०
धूप के धान : गिरिजा कुमार माथुर, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र०सं० 1955ई०
शिलापंख चमकीले : गिरिजाकुमार माथुर, साहित्य भवन प्राइवेट लिमि०, प्र०सं० 196
सतरंगे पंखों वाली: नागार्जुन, यात्री प्रकाशन, कलकत्ता, प्र० सं० 1959·
युग की गंगा : केदारनाथ अग्रवाल, हिन्दी ज्ञानमन्दिर लिमि०, बम्बई, प्र०सं० 1947
नींद के बादल, लोक और आलोक : केदारनाथ अग्रवाल, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद प्र० सं०, 1957·
कुछ कविताएँ : शमशेर बहादुर सिंह, जगत शंखधर प्रकाशन, वाराणसी, प्र०सं० 1959·
काठ की घंटियाँ : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
गीत फरोश : भवानी प्रसाद मिश्र, नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद, प्र०सं०सन् 1956·
अभी बिलकुल अभी : केदारनाथ सिंह, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं० सन् 1960·

आलोचनात्मक ग्रन्थ -

1- अद्यतन : अज्ञेय, सरस्वती विहार नयी दिल्ली, द्वि0 सं0 1978.
2- सर्जना के क्षण : अज्ञेय, भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ, प्र0सं0 1984.
3- आत्मपरक : अज्ञेय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1983.
4- रसमीमांसा : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र0 सं0 सम्वत् 2011.
5- चिन्तामणि : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र0 सं0, सम्वत् 2041.
6- हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्र0 सं0 सम्वत् 2041.
7- सूरदास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी0 प्र0 सं0 सम्वत् 2030.
8- भारतीय दर्शन : डॉ0 राधाकृष्णन् : राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1986.
9- हिन्दी साहित्यकोश, भाग-1, सम्पादक डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमि0 वाराणसी, द्वि0 सं0 1986.
10- कवि कर्म और काव्यभाषा : डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1975.
11- नयी कविता का परिप्रेक्ष्य : डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1968.
12- समकालीन कविता का व्याकरण : डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव
13- मिथक और साहित्य : डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
14- नयी समीक्षा : नये सन्दर्भ, डॉ0 नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र0 सं0 1974.
15- काव्यकला और अन्य निबन्ध : जयशंकर प्रसाद

16- नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1971।

17- हिन्दी साहित्य : सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग, प्र० सं० 1962.

18- कविता के नये प्रतिमान : डॉ० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृ० सं० 1982.

19- आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन- डॉ० निर्मला जैन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1980.

20- हिन्दी भाषा की संरचना : डॉ० भोलानाथ तिवारी, वाणी प्रकाशन दिल्ली, द्वि० सं० 1988.

21- अभिव्यक्ति विज्ञान : डॉ० भोलानाथ तिवारी, लिपि प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1974.

22- काव्यभाषा : डॉ० सियाराम तिवारी, मैकमिलन कं० ऑफ इण्डिया लिमिटेड, कलकत्ता, प्र० सं० 1976.

23- साहित्यशास्त्र और काव्यभाषा : डॉ० सियाराम तिवारी

24- अलंकार रचना और काव्यभाषा की समस्यायें : डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह, साहित्य सहयोग मुद्रण लिमि०, प्र० सं० 1987.

25- भारतीय काव्यशास्त्र : डॉ० योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती इलाहाबाद प्र० सं० 1985.

26- संरचनात्मक शैलीविज्ञान : डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, आलेख प्रकाशन दिल्ली

27- आलोचना : प्रक्रिया और स्वरूप - डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 1976.

28- सर्जन और भाषिक संरचना : डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र०सं० 1980.

29- भाषा और संवेदना : डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि0 सं0 सन् 1981.

30- कामायनी का पुनर्मूल्यांकन : डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि0 सं0 1978.

31- हिन्दी साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियाँ : डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, प्र0 सं0 1969.

32- हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0 सं0 1986.

33- नयी कविताएँ : एक साक्ष्य - डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976.

34- आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान : केदारनाथ सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली 1971.

35- निराला : आत्महन्ता आस्था : श्री दूधनाथ सिंह, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0 सं0 1972.

36- छायावाद की प्रबंध प्रसंगिकता : डॉ0 रमेशचन्द्र शाह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र0 सं0 1973.

37- मिथक और स्वप्न : कामायनी की मनस्सौन्दर्य सामाजिक भूमिका, डॉ0 रमेशकुंतल मेघ, ग्रन्थम् रामबाग, कानपुर, 1967.

38- नये प्रतिमान पुराने निकष : श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, प्र0 सं0 1966.

39- आधुनिक हिन्दी काव्यशिल्प : मोहन अवस्थी, भारतीय परिषद् प्रकाशन, प्रयाग।

40- नया काव्य : नये मूल्य : डॉ0 ललित शुक्ल, द मैकमिलन ऑफ इण्डिया लिमिटेड, प्र0 सं0 1975.

41- सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व : कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सन् 1967.

42- काव्यभाषा पर तीन निबन्ध : सं0 डॉ0 सत्यप्रकाश मिश्र - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0 सं0 1989·

43- हिन्दी भाषा का विकास : डॉ0 रामकिशोर शर्मा, विद्यासागर प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0 सं0 1982·

44- हिन्दी नवस्वच्छन्दतावाद : डॉ0 नरेन्द्र देव वर्मा, रचनाप्रकाशन, इलाहाबाद, प्र0 सं0 1979·

45- छायावाद की भाषा : डॉ0 रमेशचन्द्र गुप्त, प्रवीण प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1984·

46- कला सृजन प्रक्रिया और निराला, डॉ0 राजकरण सिंह, संजय बुक सेण्टर, वाराणसी, सन् 1978·

47- मिथकीय कल्पना और आधुनिक काव्य : डॉ0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र0 सं0 1985·

48- प्रयोगवादी काव्य : डॉ0 पवन कुमार मिश्र : म0 प्र0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, प्र0 सं0 1977·

49- हिन्दी व्याकरण : पं0 कामताप्रसाद गुरू, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सप्तम संस्करण, सम्वत् 2019·

50- निराला की कविताएँ और काव्यभाषा : डॉ0 रेखा खरे, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद , प्र0 सं0 1976·

51- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आलोचना कोश : डॉ0 रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, 1986·

==========